मेरा मार्गः सफेद बादलों सा सहज (10 से 24 मई 1974 तक श्री रजनीश आश्रम, पूना में सदगुरु ओशो द्वारा
दी गई
मूल अंग्रेजी प्रवचनमाला "माई वे: दि वे ऑफ व्हाइट क्लाउड्स" का हिंदी रूपांतर)
(Translated from English- "My Way : The Way of White Clouds".)

प्रवचन-क्रम

1. मेरा मार्गः शुभ्र मेघों का मार्ग...3

2. मन के पार का रहस्य...14

3. प्रसन्नचित्त रहो..26

4. सभी आशाएं झूठी हैं..39

5. अहंकार को इसी क्षण छोड़ देना है..52

6. दमन या रूपांतरण?...66

7. संबंधों का रहस्य...79

8. केवल पका फल ही गिरता है..92

9. समर्पण संपूर्ण ही हो सकता है...104

10..न कोई लक्ष्य, न कोई प्रयास
.... 115

11...जीवन का मृत्यु के संग मिलन
.... 127

12..समग्र बनो
.... 141

13..ईश्वर भी तुम्हें खोज रहा है!
.... 153

14...पितृत्व अर्थात बच्चे को संपूर्णता देना
.... 166

15..वर्तमान में जीना ही संन्यास है
.... 183

अनुक्रम-
1 मेरा मार्गः शुभ्र मेघों का मार्ग
2 मन के पार का रहस्य
3 प्रसन्नचित्त रहो
4 सभी आशाएं झूठी हैं
5 अहंकार को इसी क्षण छोड़ देना है 6 दमन या रूपांतरण?
7 संबंधों का रहस्य
8 केवल पका फल ही गिरता है
9 समर्पण संपूर्ण ही हो सकता है 10 न कोई लक्ष्य, न कोई प्रयास

1

11 जीवन का मृत्यु के संग मिलन
12 समग्र बनो
13 ईश्वर भी तुम्हें खोज रहा है!
14 पितृत्व अर्थात बच्चे को संपूर्णता देना 15 वर्तमान में जीना ही संन्यास है

सफेद बादलों का मार्ग
पहला प्रवचन

मेरा मार्गः शुभ्र मेघों का मार्ग

पहला प्रश्नः
प्यारे सदगुरु ओशो, आपका मार्ग सफेद बादलों का मार्ग क्यों कहलाता है?

देह त्यागने के ठीक पूर्व गौतम बुद्ध से किसी ने पूछा: "जब एक संबुद्ध व्यक्ति शरीर छोड़ता है तो वह कहां जाता है? क्या वह शेष बचता है या शून्य में विलीन हो जाता है"
यह सवाल जरा भी नया नहीं था। यह बड़ा प्राचीन प्रश्न है; जो बहुत बार पूछा जा चुका है। उस दिन भी जब बुद्ध से पूछा गया तो वे बोले: "जैसे कोई सफेद बादल देखते-देखते विलीन हो जाता है... !"
आज ही सुबह यहां आकाश में शुभ्र बादल घिरे थे। और अब वे नहीं हैं। वे
सब कहां से आए थे? वे कहां चले गए? वे बने कैसे और मिटे कैसे? वे क्यों प्रकट हुए और क्यों विलीन हो गए? उनका आना, उनका जाना, उनका होना; सब रहस्यमय है! यही पहला कारण है कि मैं अपने मार्ग कोश्वेत बादलों का मार्ग कहता हूं। परंतु कई अन्य कारण भी हैं और अच्छा होगा कि उन सब को समझा जाए, उन पर भी ध्यान दिया जाए।
पहली बात, बादल की जड़ें नहीं होतीं। वह निर्मूल है, "कहीं-नहीं" आधारित है, फिर भी "अभी-यहीं" में स्थापित है। (अंग्रेजी में इन दोनों शब्दों की स्पैलिंग समान है: "ग्राउन्डेड नो-व्हेअर ऑर ग्राउन्डेड इन नाऊ-हियर"।) निराधार होते हुए भी बादल का अस्तित्व तो है। ऐसे ही यह जीवन भी बादल की तरह है: जड़-हीन, कार्य-कारण सिद्धांत से परे, बिना किसी उद्देश्य के, फिर भी है! एक रहस्य की भांति मौजूद है!!
वस्तुतः बादल के पास अपना कोई मार्ग नहीं होता। वह हवा में उड़ता फिरता है, किसी मस्त-मौला घुमक्कड़ की तरह। कहीं पंहुचने की उसे जल्दी नहीं। कोई मंजिल नहीं, कोई नियति नहीं। वह कभी उदास या कुंठित नहीं होता क्योंकि वह जहां भी है वहीं उसकी मंजिल है। यदि तुम्हारा कोई लक्ष्य है तो तुम्हारा निराश होना सुनिश्चित है। जितना अधिक लक्ष्य-केन्द्रित चित्त होगा, उतना ही अधिक दुखी होगा, उद्विग्न और निराश होगा। जब तुम्हारे सम्मुख कोई लक्ष्य होता है तो तुम एक निश्चित मुकाम की ओर चलते हो। तुम इधर-उधर नहीं मुड़ सकते; जबकि अस्तित्व का कोई गंतव्य नहीं है। यह जीवन कहीं जा नहीं रहा। कोई लक्ष्य नहीं, कोई उद्देश्य नहीं है।
उद्देश्य के आते ही तुम अखंड अस्तित्व के विरोध में हो जाते हो और स्मरण रहे, तब कुंठा की खाई में गिरते हो। एक अंश मात्र होकर, तुम विराट के विरुद्ध कभी जीत नहीं सकते। इस ब्रह्मांड में तुम्हारा होना धूल-कण मात्र है, तुम लड़कर विजयी नहीं हो सकते। यह असंभव है कि बूंद सागर से जीते या अंश पूर्ण को परास्त करे... निश्चित ही केई व्यक्ति, समष्टि पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। जीवन है लक्ष्यहीन और तुम हो लक्ष्य से बंधे; तो निस्संदेह तुम ही हारोगे।
बादल तिरता रहता है, जहां भी हवाएं ले जाएं। कोई विरोध नहीं, कोई संघर्ष नहीं। वह कोई योद्धा नहीं है। बादल कोई विजेता नहीं है, फिर भी संपूर्ण धरा पर पूरी गरिमा से मंडराता फिरता है। कोई उसे हरा नहीं सकता, क्योंकि उसके मन में जीतने की आकांक्षा नहीं है।
एक बार मन ने कोई लक्ष्य, उद्देश्य, मंजिल निर्धारित कर ली तो तुम उस
तक पहुंचने के पागलपन में पड़ोगे और तत्क्षण समस्याएं खड़ी हो जाएंगी। तुम हारोगे, यह सुनिश्चित है। तुम्हारी पराजय अस्तित्व के होने के ढंग में ही निहित है।
बादल को कहीं भी नहीं जाना है। बस स्वच्छंद विचरण करता है, सर्वत्र घूमता है। सारे आयाम उसके हैं और समस्त दिशाएं उसकी हैं। उसे कुछ भी

अस्वीकृत नहीं है। हर चीज जहां है, जैसी है; उसे समग्र भाव से स्वीकृत है।
इसीलिए मैं अपने मार्ग को बादलों जैसा सहज मार्ग कहता हूं।
मेघों के पास, पहले से तय किया हुआ कोई रास्ता, कोई नक्शा नहीं होता।
वे निरुद्देश्य हवा में उड़ते फिरते हैं। रास्ते का अर्थ होता है कि तुमने चुन लिया कि तुम्हें कहीं पंहुचना है। बादलों को कहीं भी नहीं पंहुचना है इसलिए उनके रास्ते का अर्थ हुआ: "मार्गरहित मार्ग" या "पथविहीन पथ"। निर्धारित लक्ष्य के बगैर, मन के बगैर बादल में गति तो है, साथ ही अ-मन की स्थिति भी है। इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि हमारे लिए उद्देश्य और मन पर्यायवाची हैं। उद्देश्यहीन जीवन की कल्पना भी मुश्किल है। बगैर उद्देश्य के मन जीवित नहीं रह सकता।
बहुत लोग मेरे पास आकर हास्यास्पद प्रश्न करते हैं कि "ध्यान का प्रयोजन क्या है" ध्यान का कोई भी प्रयोजन हो नहीं सकता, क्योंकि मौलिक रूप से ध्यान अ-मन की अवस्था है। ऐसी स्थिति, जहां बस तुम हो, कहीं आना-जाना नहीं है। चाहो तो कह लो कि ध्यान का लक्ष्य "यहीं और अभी" मौजूद है: तुम्हारा अंतर्तम।
जैसे ही गंतव्य कहीं दूर होता है, मन उस ओर यात्रा शुरू कर देता है। मंजिल के बारे में सोच-विचार की प्रक्रिया में संलग्न हो जाता है। भविष्य के साथ ही चित्त गति कर सकता है। लक्ष्य के आते ही भविष्य आता है और भविष्य के साथ समय आता है।
श्वेत बादल समयातीत आकाश में मंडराता है, उसके पास न मन है और न भविष्य है। वह यहीं और अभी है, उसका हर क्षण पूर्ण शाश्वत है। चूंकि बिना लक्ष्य के मन बच नहीं सकता, इसलिए अपना वजूद बनाए रखने के लिए, मन नए-नए उद्देश्य पैदा किए चले जाता है। यदि लौकिक लक्ष्य पूरे हो गए, तो तथाकथित पारलौकिक लक्ष्यों की तरफ लालायित होता है। अगर धन व्यर्थ हो गया तो ध्यान उपयोगी हो जाता है। यदि सांसारिक प्रतियोगिता और राजनीति निरर्थक हो गई, तो तथाकथित स्वर्ग आदि की होड़ शुरु हो जाती है; धार्मिक उपलब्धियां सार्थक बन जाती हैं। मगर मन सदैव किसी न किसी प्रयोजन की कामना से ग्रस्त रहता है। जबकि मेरे अनुसार, केवल वही मन धार्मिक है, जो लक्ष्यहीन है। इसका मतलब है कि मन, वस्तुतः मन की तरह तब बचता ही नहीं। ऐसे मन-रहित बादल की तरह स्वयं को महसूस करो।
तिब्बत में एक सुंदर ध्यान विधि है; वहां भिक्षु पहाड़ियों पर नितांत अकेले में, आकाश में मंडराते हुए बादलों पर ध्यान लगाते हैं। क्रमश: वे खुद भी बादलों की भांति, रूप से अरूप में खोने लगते हैं। धीरे-धीरे वे बादल जैसे ही हो जाते हैं- निर्विचार, स्वयं के होने में प्रफुल्लित! कोई विरोध नहीं, कोई संघर्ष नहीं। कुछ पाना नहीं, कुछ खोना नहीं, केवल होना! वर्तमान क्षण के आनंद में मग्न, वे अपने होने का उत्सव मनाते हैं।
इसीलिए मैं अपने मार्ग को श्वेत मेघों का मार्ग कहता हूं और चाहता हूं कि तुम भी गगन में मंडराते इन बादलों के समान हो जाओ। मैं किसी गंतव्य की ओर निर्धारित दिशा में गति करना नहीं सिखा रहा हूं-सिर्फ तिरना है, जहां भी हवाएं तुम्हें ले जाएं; बस, उसी तरफ निर्विरोध बहते जाना है। जहां कहीं भी पंहुच जाओ, वही तुम्हारा लक्ष्य है। लक्ष्य किसी सीधी रेखा की भांति नहीं है जिसके आरंभ और अंत के बिंदु तय हैं। जीवन का कोई ओर-छोर नहीं है। प्रत्येक क्षण स्वयं में एक लक्ष्य है।
तुम सब सिद्ध हो, बुद्ध हो। तुम्हारे पास एक संपदा है। तुम अपनी समग्रता और परिपूर्णता में हो। तुम सक्षम हो, बिल्कुल बुद्ध, महावीर और कृष्ण की भांति। तुम क्या खोज रहे हो? ठीक अभी, इसी क्षण में, सब कुछ यहीं तो है; केवल तुम सतर्क नहीं हो। और तुम सजग इसलिए नहीं हो पाते क्योंकि तुम्हारा मन भविष्य में डोल रहा है। तुम वर्तमान में नहीं हो। तुम इसके प्रति बिल्कुल भी जागरूक नहीं हो कि वर्तमान के क्षण में कुछ महत्त्वपूर्ण घटित हो रहा है। और ऐसा सदा-सदा से हो रहा है। लाखों जन्मों से यह होता चला आ रहा है। हर क्षण तुम एक "बुद्ध" हो। एक पल के लिए भी तुम बुद्धत्व के अनुभव से अछूते नहीं रहे। और कभी चूक भी नहीं सकते, क्योंकि स्वाभाविक रूप से सत्य ऐसा है, चीज़ें ऐसी हैं।

बुद्धत्व से तुम कभी च्युत नहीं हो सकते। लेकिन तुम इस तथ्य के प्रति सजग नहीं हो पा रहे, क्योंकि कहीं-न-कहीं तुम्हारे मन में कोई दूरगामी लक्ष्य है जो तुम्हें प्राप्त करना है। इसी लक्ष्य-उन्मुखता की वजह से एक अवरोध उत्पन्न हो जाता है और अपने वास्तविक स्वरूप को तुम भूल जाते हो। एक बार वास्तविकता प्रकट हो जाए, एक दफा तुम आंतरिक सचाई को अनुभव कर लो, तो चेतना का महानतम और गहनतम रहस्य प्रकट हो जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में पूर्ण है, पूरी समष्टि को स्वयं में समेटे हुए है। जब कहा जाता है कि "सर्वम ब्रह्मम्" या "सब की आत्मा एक है" या "कण-कण में भगवान" या "सर्वत्र अखण्ड और असीम भगवत्ता है" तो इसका तात्पर्य उसी अंतर्निहित पूर्णता से है। यही भाव उपनिषद के महावाक्य "तत्वमसि" अर्थात "तुम वही हो" में समाहित है।
ऐसा नहीं कि तुम्हें "वह" बनना है, क्योंकि यदि तुम्हें "वह" बनना है
तो तुम "वह" हो नहीं। और यदि तुम वह नहीं हो, तो तुम "वह" कैसे बन सकते हो? एक बीज जब एक वृक्ष बनता है, तो बीज में पहले से ही वह वृक्ष छुपा होता है। कंकड़-पत्थर कभी वृक्ष नहीं बन सकते। बीज वृक्ष बन जाता है, क्योंकि बीज पहले से ही वह संभावना लिए हुए है। इसलिए प्रश्न कुछ विशिष्ट बनने का नहीं है। प्रश्न सृजन का नहीं, केवल प्रकटीकरण का है। बीज अभी बीज की भांति स्वयं को प्रकट कर रहा है, आगामी क्षण में वह वृक्ष की भांति प्रकट हो सकता है। इसलिए सवाल केवल प्रकट होने का है। यदि तुम बीज की गहराई में झांक सको तो पाओगे कि बीज वर्तमान क्षण में भी वस्तुतः वृक्ष ही है।
तिब्बती रहस्यदर्शियों, झेन सदगुरुओं और सूफी दरवेशों ने भी शुभ्र मेघों की उपमा देकर चर्चाएं की हैं। इन बादलों ने हमेशा से असंख्य लोगों के अंतस को आकर्षित किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि बादलों के साथ अनेक ऋषियों का संवाद हुआ और कहरा संबंध स्थापित हुआ है। तुम भी इसे एक ध्यान विधि बना लो और तब कई रहस्य तुम्हारे सामने उजागर होंगे।
जीवन को एक समस्या की भांति नहीं लेना चाहिए। जहां तुमने जीवन को समस्या माना वहीं तुम्हारा खत्मा हुआ! अगर तुम सोचते हो कि जीवन एक समस्या है, तो वह कभी भी हल नहीं हो सकती। दर्शनशास्त्र इसी तरह से काम करता है और वह हमेशा गलत दिशा में ले जाता है। कोई भी सिद्धांत ठीक नहीं हैं और वे हो भी नहीं सकते। सभी सिद्धांत गलत हैं। दार्शनिकता ही गलत है, क्योंकि दर्शनशास्त्र का सबसे पहला कदम ही तब गलत उठ जाता है जब वह जीवन को एक समस्या की भांति सोचता है। एक बार जीवन को समस्या समझा तो फिर कोई हल संभव नहीं। धर्म के सही मायनों में, जीवन एक पहेली नहीं बल्कि एक रहस्य है। श्वेत बादल सर्वाधिक रहस्यमय घटना है, अचानक प्रकट होता है और अनायास विलीन भी हो जाता है। क्या तुमने कभी सोचा कि बादलों के पास कोई नाम, रूप, पहचान या ठोस आकार क्यों नहीं होता? यहां तक कि एक क्षण के लिए भी बादल ठहरता नहीं, रुकता नहीं। वह चलता रहता है, सरिता की भांति सतत प्रवाहित होता रहता है। हाँ, तुम बादल में कोई रूप या आकृति देख सकते हो, लेकिन वह तुम्हारी अपनी ही कल्पना है, मन का आरोपण है। बादल के पास कोई रूप या आकार नहीं होता। वह अरूप होता है या कह सकते हैं कि निरंतर नई आकृतियां बनाता रहता है। वह निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया में है। यह जीवन भी ठीक इसी तरह है। यहां सभी रूप प्रक्षेपित हैं, आरोपित हैं, कल्पित हैं।
इसे थोड़ा समझो, अपने इस जीवन में तुम स्वयं को पुरुष कहते हो और ठीक पिछले जन्म में हो सकता है शायद तुम स्त्री रहे हो। इस जीवन में तुम गोरे रंग के हो और अगले जन्म में काले रंग के हो सकते हो। जन्मांतर की बात छोड़ो, अभी तुम बेहद बुद्धिमान हो और अगले ही क्षण शायद मूर्खतापूर्ण ढंग से व्यवहार करने लगो। यदि इस क्षण तुम शांत हो तो अगले क्षण क्रोधित और आक्रामक हो सकते हो। क्या तुमने कभी एक स्थिर आकृति पाई है? क्या तुम भी सदा बदलते हुए बादल नहीं हो? हाँ, तुम एक सतत परिवर्तन हो, एक श्वेत बादल हो। क्या तुम्हारा कोई स्थाई नाम अथवा पहचान है? क्या तुम दृढ़ता के साथ स्वयं को, किसी ठोस परिचय के रूप में परिभाषित कर सकते हो? जिस क्षण तुम कहते हो कि तुम "यह" हो, ठीक उसी क्षण तुम इसके प्रति भी सचेत हो जाते हो कि तुम उसके विपरीत "वह" भी हो।

तुम किसी से कहते हो, "मैं तुमसे प्रेम करता हूं" और उसी क्षण वहां घृणा भी मौजूद होती है। तुम कहते हो कि तुम किसी के मित्र हो परंतु उसी क्षण तुम्हारे अंदर बैठा हुआ शत्रु मुस्कुराता है, क्योंकि वह बाहर आने के लिए केवल ठीक समय की प्रतीक्षा कर रहा है। किसी पल तुम कहते हो कि तुम बहुत प्रसन्न हो किंतु अगले ही पल प्रफुल्लता खो जाती है और तुम उदास हो जाते हो। गौर से निरीक्षण करो: तुम्हारे पास कोई ठोस पहचान-पत्र नहीं है। जैसे ही अपने इस आंतरिक सच को अनुभव करते हो, तुम भी एक अरूप और अनाम बादल बन जाते हो और तब शुरू होता हैहवा में निश्चिंत बहना और आकाश में अकारण मंडराना।
शुभ्र मेघ की तरह ही एक संन्यासी का जीवन है। ऐसा व्यक्ति जिसने सब परित्याग कर दिया, वह सफेद बादल की तरह ही है। गृहस्थ का जीवन एक नियमित दिनचर्या से बंधा है। संसारी के जीवन का एक अलग ढांचा है, वहां एक मृत नियमावली है, वहां एक निश्चित नाम है, रूप है। वहां जिंदगी रेल की पटरियों के समान बंधे हुए सपाट रास्ते पर दौड़ती है। पटरी से अलग रेलगाड़ी चलने की कल्पना भी कठिन है। पटरी पर भागती गाड़ी के पास एक गंतव्य है, उसे किसी निश्चित स्थान पर पंहुचना है। परंतु एक संन्यासी आकाश में बहते हुए बादल के समान होता है। संन्यासी किसी पूर्व-निर्धारित, बंधी-बंधाई लोहे की पटरियों जैसी कृत्रिम राह पर यात्रा नहीं करता। उसके मार्ग की कोई पहचान नहीं होती है। संन्यासी का अपना कोई वजूद नहीं होता, वह तो "ना-कुछ" हो जाता है, वह ऐसे रहता है जैसे मानो है ही नहीं।
यदि तुम एक ऐसा जीवन जी सको, जैसे तुम हो ही नहीं, तो तुम मेरे मार्ग पर हो। अपने "कुछ विशिष्ट" होने की ओर तुम जितना ज्यादा ध्यान देते हो, उतना ही तुम्हारे चारों तरफ का परिवेश रुग्ण होने लगता है। तुम जितना "ना-कुछ" होते जाते हो, उतने ही अधिक स्वस्थ एवं निर्भार होते जाते हो; उतनी ही अधिक दिव्यता और धन्यता से भरते जाते हो।
जब मैं कहता हूं कि जीवन एक समस्या नहीं है, बल्कि एक रहस्य है तो मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि तुम उसे हल नहीं कर सकते, लेकिन उसे आनंदपूर्वक जी सकते हो। किसी समस्या का हल सदैव बुद्धिमत्ता से किया जाता है, और यदि तुम उसे हल कर भी लेते हो तो तुम्हें कुछ विशेष प्राप्त नहीं होता। हां, शायद इससे तुम्हारी बुद्धि का थोड़ा विकास हो जाता है, परंतु इससे तुम्हें कोई परमानंद नहीं मिल जाता। रहस्य के साथ मिलकर तुम स्वयं एक रहस्य हो सकते हो, तुम उसमें समाहित हो सकते हो, तुम उसके साथ एकात्म हो सकते हो। इस मिलन में परमानंद जन्मता है, परम सुख घटता है और तब मनुष्य अपनी सर्वोच्च संभावना तक पंहुच सकता है: चरम हर्षोन्माद तक।
धर्म, जीवन को एक रहस्य की भांति लेता है। तुम रहस्य के संग भला क्या
कर सकते हो? कुछ भी तो नहीं कर सकते। लेकिन तुम स्वयं के बारे में अवश्य कुछ कर सकते हो। तुम और अधिक रहस्यमयी हो सकते हो और तब समान गुण होने के कारण, एक रहस्य दूसरे रहस्य में समाहित हो जाता है। समान गुण वाली दो वस्तुएं एक-दूसरे में घुल-मिल सकती हैं। जीवन में छिपे रहस्यों को खोजो। तुम जहां भी देखो:श्वेत बादलों में, रात्रि में आकाश के सितारों में, फूलों में, बहती हुई नदी में, तुम जहां भी देखो... वहां रहस्य को खोजो। और जैसे ही तुम उस रहस्य को खोज लो, बस वहीं उस पर ध्यानमग्न हो जाओ।
ध्यान का अर्थ है कि उस रहस्य के सामने तुम स्वयं को लुप्त हो जाने दो,
उस रहस्य के सामने तुम अपने को पूर्णतया मिट जाने दो, स्वयं को जड़ से नष्ट कर डालो, उस रहस्य के सामने तुम अपने को तितर-बितर कर डालो। तुम बिल्कुल "ना-कुछ" हो जाओ ताकि वह रहस्य पूर्ण समग्रता से तुम्हें अपने आप में तल्लीन कर सके। इस तल्लीनता के घटते ही, अचानक एक नया द्वार खुलता है, एक नया बोध जन्मता है। अनायास ही विभाजन और अलगाव से भरा यह तुच्छ जगत विलुप्त हो जाता है और एक भिन्न, एक बिल्कुल ही नया आयाम, समग्र रूप से एकीकृत एक नया संसार तुम्हारे समक्ष प्रगट होता है। प्रत्येक वस्तु की सीमा विलुप्त हो जाती है; सबकुछ एक दूसरे में विलय हो जाता है; वहां कोई पृथकता नहीं होती बल्कि परम एकता होती है।
लेकिन, यह केवल तभी संभव हो सकता है यदि तुम अपने साथ प्रयोग करने के लिए तैयार हो। यदि तुम्हें केई समस्या हल करनी है तो तुम्हें समस्या के

साथ प्रयोग करने होंगे। तुम्हें कोई संकेत अथवा कोई चाबी खोजनी होगी। तुम्हें उस समस्या पर प्रत्यक्ष कार्य करना होगा। तुम्हें एक प्रकार से प्रयोगशाला ही निर्मित करनी होगी। तुम्हें कुछ प्रयास करना होगा। परंतु यदि तुम्हें किसी रहस्य का अचानक सामना करना पड़े तो तुम्हें रहस्य के साथ नहीं बल्कि स्वयं के साथ कुछ काम करना पड़ेगा, कुछ प्रयोग करना पड़ेगा क्योंकि एक रहस्य के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता है।
एक रहस्य के सामने हम शक्तिहीन हैं। इसी कारण हम जीवन के गूढ़ रहस्यों
को हमेशा समस्याओं में बदलते रहते हैं, क्योंकि समस्याओं के सामने हम शक्तिवान हैं और समस्याओं के बाबत हमें लगता है कि हम उन्हें हल कर सकते हैं, उन्हें नियंत्रित कर सकते हैं। किंतु जीवन के रहस्यों के सामने हम शक्तिहीन हो जाते हैं, वहां हम कुछ भी नहीं कर सकते। रहस्यों के साथ हम एक तरह की मृत्यु, मन की मृत्यु का साक्षात्कार करते हैं। रहस्यों के साथ हम किसी प्रकार की चालाकी नहीं कर सकते। मनुष्य की बुद्धि अधिकांशतः गणित व तर्क के ढंग से विकसित होती है तथा इसीलिए परमानंद के अनुभव की और काव्यानुभूति की संभावना प्रायः न्यूनतम हो जाती है। इसी कारण जीवन का रोमांच जैसे खो गया है और जीवन प्रतीकात्मक होने की बजाय तथ्यात्मक बनकर रह गया है।
अतः जब मैं कहता हूं कि मेरा मार्ग सफेद बादलों का मार्ग है, तो यह केवल एक प्रतीक है। यहां श्वेत मेघ का एक तथ्य की भांति प्रयोग नहीं किया गया है, उसका प्रयोग एक संकेत की तरह किया गया है, एक काव्यात्मक उपमा की भांति; जो रहस्यमय एवं चमत्कारिक अस्तित्व के संग गहन एकत्व की ओर इशारा करता है।

दूसरा प्रश्नः
ओशो! क्या आप हमें यह बताएंगे कि आपका श्वेत बादलों के साथ क्या संबंध है?

मैं स्वयं एक श्वेत बादल ही हूं। इसलिए कोई भी संबंध नहीं है और न हो सकता है। संबंध तभी संभव है जब तक दो हैं, द्वैत है, विभाजन है; इसलिए कोई संबंध वस्तुतः संबंध नहीं होता है। जहां कहीं भी संबंध होता है, वहां पृथकता भी होती है। मैं खुदश्वेत बादल हूं। तुम श्वेत बादल से संबंधित नहीं हो सकते। तुम उसके साथ एक अवश्य हो सकते हो और श्वेत बादल को अपने साथ एक होने की अनुमति दे सकते हो, लेकिन उसके साथ संबंध स्थापित करना असंभव है। संबंध में तुम पृथक बने रहते हो और कुछ न कुछ जोड़-तोड़ किए जाते हो। मनुष्य जीवन की एक बहुत बड़ी वेदना है कि हम प्रेम में भी संबंध निर्मित कर लेते हैं। तब प्रेम विफल हो जाता है। प्रेम को एक संबंध नहीं बनाना चाहिए। तुम्हें एक प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही होना चाहिए। तुम्हें दोनों किरदार इस तरह निभाने होंगे कि दोनों एक-दूसरे में विलीन हो जाएं, एक्य घट जाए, दूसरा बचे ही नहीं। केवल तभी प्रेम के नाम पर संघर्ष बंद हो सकता है, अन्यथा प्रेम सिर्फ संघर्ष और विवाद बन कर रह जाता है। यदि "तुम" हो, तब तुम अपने अनुसार दूसरे को नियंत्रित करने का प्रयास करोगे, तुम दूसरे को अपने अधिकार में रखना चाहोगे, तुम उसके स्वामी बनना चाहोगे और इस तरह शोषण का बीजारोपण हो जाता है। तब दूसरा एक साध्य की भांति नहीं बल्कि एक साधन की भांति प्रयुक्त किया जाता है।
शुभ्र मेघों के संग तुम ऐसा नहीं कर सकते। तुम उन्हें पति और पत्नी की तरह नहीं बना सकते। तुम उन्हें किसी संबंध में नहीं बांध सकते। किसी बंधन में बंधने के लिए उन्हें राजी नहीं कर सकते। वे इसकी अनुमति नहीं देंगे और न ही तुम्हारी बात सुनेंगे। वे संबंधों का यह खेल पर्याप्त मात्रा में देख चुके हैं, शायद इसी कारण अब वे श्वेत बादल बन गए हैं। तुम उनके साथ बस एक हो सकते हो और तब उनके हृदय के द्वार खुले हुए होंगे।
लेकिन मनुष्य का मन संबंधों से परे कुछ सोच ही नहीं सकता, क्योंकि हम स्वयं के "ना-कुछ" होने की कल्पना भी नहीं कर पाते। हालांकि किसी भी तरह से हम अपनी "मैं" को छिपाते हैं परंतु फिर भी कहीं गहराई में हमारा अहंकार मौजूद होता है और अपनी हर संभव चाल चलता है।

सफेद बादल के साथ यह संभव नहीं है। तुम अपने अहंकार के साथ भी श्वेत बादलों की ओर देख सकते हो, उनके बारे में सोच सकते हो, लेकिन ऐसा करने से गूढ़ रहस्य अनावृत्त नहीं होंगे। रहस्यों के उद्घाटन के समस्त द्वार बंद हो जाएंगे। तुम अपने अहंकार के साथ एक अंधेरी रात में कहीं खो जाओगे।
यदि तुम्हारा अहंकार विलुप्त हो जाता है, तो तुम श्वेत बादल बन जाओगे।
झेन परंपरा में चित्रकारी की एक बहुत पुरानी कला है। एक झेन सदगुरु
के पास एक शिष्य वह चित्रकला सीख रहा था और निश्चित ही इस कला के माध्यम से वह वास्तव में ध्यान ही सीख रहा था। वह शिष्य बांसों के प्रति बहुत आकर्षित था, लगभग पागलपन की हद तक। वह सदैव बांस का ही चित्र बनाकर उसमें रंग भरता रहता था। ऐसा कहा जाता है कि एक दिन झेन सदगुरु ने उस शिष्य से कहा:"जब तक तुम स्वयं एक बांस नहीं हो जाते, तब तक कुछ भी नहीं होगा।"
दस वर्षों तक वह शिष्य बांसों के ही चित्र बनाता रहा। वह इतना अधिक कुशल हो गया था कि वह आंखें बंद करके, अंधेरी रात में भी बांस का अद्भुत चित्र बना सकता था। उसके द्वारा बनाए गए बांस के चित्र आदर्श थे और जीवंत प्रतीत होते थे।
लेकिन उसके सदगुरु उन चित्रों को स्वीकार नहीं करते थे। वे सदैव उससे यही कहते:"जब तक तुम एक बांस ही न बन जाओ, तुम कैसे बांस का चित्र बना सकते हो? तुम पृथक बने रहते हो, तुम एक देखने वाले, दर्शक बने रहते हो। ऐसा इसलिए है कि तुमने अभी तक बांस को बाहर से जाना है, लेकिन वह तो केवल उसकी परिधि है, वह बांस की आत्मा नहीं है। जब तक तुम उसके साथ एक नहीं हो जाते, जब तक तुम खुद एक बांस ही नहीं बन जाते, तब तक तुम उसे अंदर से कैसे जान सकते हो"
शिष्य ने दस वर्षों तक संघर्ष किया, लेकिन सदगुरु ने उसके चित्रों कोमान्यता नहीं दी। तब वह शिष्य बांस के एक घने जंगल में कहीं लुप्त हो गया। तीन वर्षों तक उसके बारे में कोई भी खबर नहीं मिली परंतु धीरे-धीरे यह समाचार आने शुरू हो गए कि वह एक बांस ही बन गया है। अब वह बांस के चित्र नहीं बनाता अपितु बांस की तरह जीता है, वह बांसों के झुरमुट में उन्हीं की तरह खड़ा रहता है। जब हवा चलती है और बांस डोलते हैं, नाचते हैं, तब वह भी उनके साथ झूमता है।
तब उसके सदगुरु उसे खोजने निकले और उन्होंने देखा कि उनका शिष्य वाकईएक बांस ही बन गया था। सदगुरु ने उससे कहा:"अब अपने और बांस के बारे में सब कुछ भूल जाओ।"
शिष्य ने उसी क्षण कहा:"लेकिन आपने ही मुझे बांस बन जाने के लिए कहा
था और वह मैं बन गया हूं।"
सदगुरु ने कहा:"अब इसे भी भूल जाओ, क्योंकि अब केवल यही अवरोध है। कहीं भीतर, गहराई में तुम अभी भी पृथक हो और स्मरण कर रहे हो कि तुम एक बांस बन गए हो, इसलिए तुम अभी भी एक आदर्श बांस नहीं हो, क्योंकि एक बांस तो कुछ भी स्मरण नहीं रख सकता, इसलिए इसे भी भूल जाओ।"
अगले दस वर्षों तक बांसों की बिल्कुल भी चर्चा नहीं की गई। फिर एक दिन सदगुरु ने शिष्य को बुलाकर उससे कहा:"अब तुम चित्र बना सकते हो। पहले बांस बनो, फिर बांसों के बारे में भूल जाओ, ऐसा करने पर तुम आदर्श बांस बनोगे और तब तुम्हारा बनाया हुआ चित्र, केवल एक चित्र नहीं होगा बल्कि तुम्हारे अंतर्विकास का द्योतक होगा।

मैं किसी भी प्रकार से श्वेत बादलों से संबंधित नहीं हूं। मैं एक श्वेत बादल हूं और चाहता हूं कि तुम भी श्वेत बादल बनो, लेकिन संबंध स्थापित न करो। बहुत हो चुका संबंधों के जाल में फंसना, इसके कारण तुमने भरपूर यातनाएं भी सहन की हैं। अनेकानेक जन्मों में तुम कहीं न कहीं, किसी न किसी से संबंधित रहे हो। तुमने जरूरत से ज्यादा कष्ट उठाए हैं। तुमने अपनी क्षमता से भी ज्यादा तकलीफ सहन की है। इस प्रकार संबंधों की गलत अवधारणा पर समस्त दुख केंद्रित हो गए हैं। असम्यक धारणा यह है कि तुम अपने को बचाए रखो और तब संबंध बनाओ। तब वहां संबंध तो नहीं रहता परंतु तनाव,

मतभेद, संघर्ष, हिंसा और आक्रामकता ही बचती है, पूरा नरक निर्मित हो जाता है।
सार्त्र ने कहा है:"दूसरा व्यक्तिनर्क है।" लेकिन वास्तव में दूसरा व्यक्ति नर्क नहीं है, क्योंकि दूसरा, दूसरा इसलिए ही लगता है, क्योंकि तुम अपने अहंकार को बचाने में लगे हो। यदि तुम अपने "मैं-पन" को विदा कर देते हो तो उसी क्षण "दूसरा-पन" भी विदा हो जाता है। मनुष्य और वृक्ष के बीच, मनुष्य और बादल के बीच, पुरुष और स्त्री के बीच अथवा आदमी और चट्टान के बीच, जब कभी भी ऐसा होता है कि तुम्हारा अहंकार नहीं है तो नर्क विलुप्त हो जाता है। अनायास ही तुम रूपांतरित हो जाते और स्वर्ग में प्रविष्ट हो जाते हो।
पुरानी बाइबिल की एक कहानी बहुत सुंदर है कि आदम और ईव, ईडन-उद्यान से बाहर निकाल दिए गए, क्योंकि उन्होंने ज्ञान के वृक्ष का वह फल खा लिया था जिसके लिए उन्हें मना किया गया था। यह अब तक की कल्पित नीति कथाओं में सबसे अधिक आश्चर्यजनक कथा है। ज्ञान के वृक्ष का फल खाना क्यों मना था? क्योंकि जिस क्षण ज्ञान अंदर प्रविष्ट होता है, तत्क्षण अहंकार जन्म जाता है। जिस क्षण तुम जानते हो कि तुम कुछ हो, तुम्हारा पतन हो जाता है। यही एक मौलिक अपराध है।
वास्तव में आदम और ईव को किसी व्यक्ति ने स्वर्ग से नहीं निकाला था। जिस क्षण वे सचेत हुए कि वे "कुछ" हैं, और बस ईडन-उद्यान विलुप्त हो गया। ऐसी आंखों के लिए, जो अहंकार से भरी हुई हों, स्वर्ग का बगीचाबच ही नहीं सकता। ऐसा कदापि नहीं था कि वे बाग से निकाले गए, वह बाग तो सदैव मौजूद है, अभी और यहीं मौजूद है, ठीक तुम्हारी ही बगल में है। तुम जहां कहीं भी जाते हो, वह हमेशा तुम्हारा अनुसरण करता है, लेकिन तुम उसे देख नहीं पाते हो। यदि अहंकार नहीं है, तो तुम फिर से उस उद्यान में प्रविष्ट हो जाते हो, वह उद्यान पुनः उजागर हो जाता है। वास्तव में तुम इस उद्यान से कभी बाहर नहीं किए गए हो।
कभी यह अभ्यास करो कि एक वृक्ष के नीचे बैठकर स्वयं को पूरी तरह भूल जाओ। केवल वृक्ष कोरहने दो। ऐसा ही बोधि-वृक्ष के नीचे बैठे हुए गौतम बुद्ध को घटित हुआ था। बुद्ध तो वहां थे ही नहीं, और उसी क्षण में सबकुछ घट गया। केवल और केवल बोधि-वृक्ष ही वहां था।
तुम शायद इसके बारे में सजग नहीं हो कि बुद्ध के लगभग पांच सौ वर्ष बाद तक भी उनकी न तो मूर्ति बनाई गई और न ही उनका चित्र बनाया गया। निरंतर पांच सौ वर्षों तक, जब कभी बुद्ध का मंदिर निर्मित किया गया, वहां केवल बोधि-वृक्ष का ही चित्र होता था। यह अत्यंत सुंदर बात है क्योंकि जिस क्षण में गौतम सिद्धार्थ, भगवान बुद्ध बने, वह तो वहां थे ही नहीं। केवल वृक्ष ही था। उस एक अमूल्य क्षण में वे विलुप्त हो गए थे और वहां वृक्ष मात्र रह गया था। ऐसे क्षण खोजो, जब तुम नहीं बचते हो और असल में वे ही क्षण होंगे, जब वास्तव में पहली बार "तुम" होओगे।
अतः मैं एक श्वेत बादल हूं और मेरा पूरा प्रयास है कि तुम्हें भी उन आकाश में बहते हुए श्वेत बादलों की तरह बना सकूं। ऐसे सफेद बादल जिन्हें न कहीं जाना है, जो न कहीं से आ रहे हैं, जो बस हैं। जो समग्रता से, पूर्णता से बस इस क्षण में हैं। मैं तुम्हें कोई आदर्श नहीं सिखाता हूं, मैं तुम्हें कोई कर्त्तव्य का पाठ नहीं पढ़ाता। मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि ऐसे बनो या वैसे बनो। मेरी पूरी शिक्षा सरलतम रूप में यही है कि तुम जैसे भी हो, उसे पूरी समग्रता से स्वीकार करो। ऐसी पूर्ण स्वीकृति कि पाने के लिए कुछ भी शेष न बचे और तब तुम एक श्वेत बादल बन जाओगे।

तीसरा प्रश्नः
ओशो! क्या यह सच है कि समस्तमानसिक बाधाएं पार करकेपूर्णरूपेण वर्तमान में उपस्थित बने रहने के लिए, अर्थात एक श्वेत बादल बनने के लिए; हमें अपने सभी सपनों व कल्पनाओं से गुज़रकर जीना सीखना होगा? यहां पुणे में "हरे कृष्णा-हरे रामा" कीर्तन करते हुए कैसे यहघटना घट सकती है, जैसी कि प्रकृति के हृदय में, ईडन-उद्यान में थी?

प्रश्न यह नहीं है कि एक व्यक्ति को अपने सभी सपनों और कल्पनाओं से गुज़रते हुए जीना पड़ेगा अथवा नहीं। तुम पहले से ही उन में जी रहे हो। तुम पहले से ही उनमें हो औरसवाल चुनाव का नहीं है, तुम चुनाव नहीं कर सकते। क्या तुम चुनाव कर सकते हो? क्या तुम अपने सपनों को छोड़ सकते हो? क्या तुम अपनी कल्पनाओं को छोड़ सकते हो? यदि तुम अपने सपनों को छोड़ने का प्रयास करते हो तो तुम्हें दूसरे सपनों के साथ उनकी भरपाई करनी होगी। यदि तुम अपनी कल्पनाओं को हटाने का प्रयास करते हो तो वे दूसरी तरह की कल्पनाओं में बदल जाएंगी, परंतु फिर भी कल्पनाएं मौजूद रहेंगी।
इसलिए उपाय क्या है? उनको स्वीकार करो। उनके विरुद्ध क्यों चलना चाहते हो? एक वृक्ष के पास लाल फूल हैं, दूसरे वृक्ष के पास पीले फूल हैं, ऐसा होना बिल्कुल स्वभाविकहै और यह भिन्नता पूरी तरह ठीक भी है। तुम्हारे पास कुछ विशिष्ट सपने हैं:पीले सपने। किसी अन्य व्यक्ति के पास कुछ दूसरे सपने हैं:नीलेया लाल सपने।
ऐसा होना एकदम सहज है। सपनों के साथ क्यों लड़ा जाए? उन्हें बदलने की कोशिश क्यों की जाए? जब तुम उन्हें बदलने का प्रयत्न करते हो तो इसका अर्थ है कि तुम्हें स्वयं भी उनमें अत्याधिक विश्वास है। तुम यह नहीं सोचते हो कि वे मात्र स्वप्न हैं, तुम सोचते हो कि वे वास्तविक हैं और उनका बदल जाना सार्थक होगा। यदि स्वप्न मात्र स्वप्न ही हैं, तो क्यों न उन्हें स्वीकार कर लिया जाए?
जिस क्षण तुम उन्हें स्वीकार करते हो, वे विलुप्त हो जाते हैं। यही गहरा राज है। जिस क्षण तुम उन्हें पूर्णअंगीकार करते हो, उसी क्षण वे पूर्णतः गायब हो जाते हैं, क्योंकि विरोध के कारण ही सपने देखने वाले मन का अस्तित्वबना रहता है। स्वप्नदर्शी मन का मूल कारणवस्तुतः अस्वीकृति ही है।
तुम जीवन में अनेक वस्तुओं को अस्वीकार करते रहे हो, इसी कारण तुम्हारे सपनों में उनका विस्फोट होता है। तुम सड़क पर घूम रहे हो और एक सुंदर स्त्री अथवा पुरुष को देखते हो, तुम्हारे भीतर एक इच्छा उत्पन्न होती है परंतु अचानक तुम उसे दबा देते हो। उस इच्छा का दमन कर देते हो कि ऐसा सोचना गलत है। तुम उसे नामंजूर कर देते हो क्योंकि परंपरा, संस्कृति, समाज और नैतिकता के अनुसार ऐसा करना ठीक नहीं है।
तुम एक सुंदर फूल की ओर आसानी से देख सकते हो, इसमें कुछ भी बुरा नहीं है, लेकिन जब तुम एक सुंदर चेहरे को देखते हो तो तुरंत ही कुछ गलत हो जाता है, तुम अपनी उस इच्छा कोदबा देते हो। अब यही चेहरा एक स्वप्न बनेगा। अस्वीकृत कामनाएं ही स्वप्न बन जाती हैं। अब यह चेहरा तुम्हारे विचारों में मंडराता रहेगा, यह चेहरा तुम्हें बारंबार तंग करेगा, अब यह चेहरा रात में तुम्हारे आस-पास घूमेगा, अब यह चेहरा लगातार तुम्हारा पीछा करेगा। जिस कामना को तुमने अस्वीकार कर दिया था, वह एक स्वप्न बन जाएगी। जिन कामनाओं का तुमने दमन किया है वे कल्पनाओं में तबदील हो जाएंगी। इसलिए यह बात समझो कि स्वप्न कैसे निर्मित होता है? विरोध से, अस्वीकार से पैदा होता है।
तुम जितनी अधिक उपेक्षा करते हो, उतने ही अधिक स्वप्न निर्मित होते हैं। वे लोग जो पर्वतों पर भाग जाते हैं और जीवन को अस्वीकार करते हैं, वे बहुत अधिक स्वप्नों से भरे होते हैं। उनके सपने इतने अधिक वास्तविक बन जाते हैं कि उन्हें वास्तविकता का विभ्रम होने लगता है और वे स्वप्न तथा सचाई में अंतर नहीं कर पाते हैं। इसलिए उपेक्षा मत करो, अस्वीकार मत करो, अन्यथा तुम बहुत अधिक स्वप्नों को सृजित कर लोगे। स्वीकार करो, जो कुछ भी तुम्हारे भीतर हो रहा है, उसे स्वीकार करो, उसे अपने अस्तित्व का एक हिस्सा जानो। उसकी निंदा मत करो। जैसे-जैसे तुम अधिकाधिक स्वीकार भाव से भर जाते हो, वैसे-वैसे स्वप्न विलुप्त हो जाएंगे। एक व्यक्ति जो अपने जीवन को, उसकी समस्त घटनाओं को समग्रता से स्वीकार लेता है वह स्वप्नहीन नींद लेता है, क्योंकि आधारभूत कारण ही समाप्त हो गया। यह एक बात हुई।
दूसरी बात यह है कि अस्तित्व अखण्ड है। जब मैं कहता हूं-"अखण्ड अस्तित्व" तो केवल वृक्ष ही नहीं, केवल बादल ही नहीं, बल्कि पूरी समष्टि की बात कर रहा हूं। संसार में जो कुछ भी घट रहा है वह प्राकृतिक है, कोई भी

घटना अप्राकृतिक नहीं है और हो भी नहीं सकती। अन्यथा वह कभी होती ही नहीं। प्रत्येक वस्तु प्राकृतिक है, नैसर्गिक है। इसलिए कोई विभाजन मत निर्मित करो कि यह स्वभाविक है और वह स्वभाविक नहीं है। यहां जो कुछ भी विद्यमान है सब स्वभाविक है। परंतु मनुष्य का मन विशिष्टता औरविभेद पर निर्भर रहता है। इन विभाजनों को अपनी स्वीकृति, अपनी अनुमति मत दो। जो भी है, जैसा भी है; उसे अंगीकार करो और बिना किसी विश्लेषण के अंगीकार करो।
चाहे तुम बाजार में हो या पहाड़ी वादियों में, तुम उसी अखण्ड प्रकृति में हो। कहीं यह प्रकृति पहाड़ और वृक्ष बन गई है, कहीं यह प्रकृति बाजार और दुकानें बन गई है। एक बार यदि तुम स्वीकार करने का रहस्य जान लेते हो तो बाजार भी सुंदर बन जाता है। बाजार का भी अपना एक अलग सौंदर्य है:वहां जीवन है, सक्रियता है, एक आकर्षण है, चारों तरफ एक अल्हड़ सा उन्माद है। बाजार की अपनी एक सुंदरता है और ध्यान रखना कि यदि यह बाजार न होता तोशायद यह पर्वत भी इतने सुंदर नहीं लगते। पर्वत अत्याधिक सुंदर और अत्यंत शांत हैं क्योंकि उनकी पृष्ठभूमि में कहीं बाजार भी विद्यमान है। बाजार का अत्याधिकशोर ही पहाड़ों कोप्रगाढ़शांति देता है। इसलिए प्रत्येक स्थान पर, चाहे तुम बाजार में हो अथवा "हरे कृष्णा-हरे राम" का कीर्तन कर रहे होया एक वृक्ष के नीचे मौन बैठे हो-इन सभी को एक ही फैलाव के रूप में स्वीकार करो, इन्हें बांटो मत। जब तुम नृत्य करते हुए "हरे कृष्णा-हरे रामा" गा रहे हो तो उसका पूर्णता से आनंद लो। आनंदित होना ही एक ऐसा मात्रढंग है जिससे वर्तमान के क्षण में तुम्हारी भीतरी खिलावट होती है। अतः "हरे कृष्णा-हरे राम" का कीर्तन तुम्हारे भीतर खिलावट ला सकता है और अनेक लोगों के भीतर इससे खिलावट आई भी है, इसका प्रमाण मौजूद है। जब "महाप्रभु चैतन्य" बंगाल के गांवों में नाचते हुए "हरे कृष्णा-हरे रामा" का कीर्तन करते थे तो वह चेतना की अनूठी खिलावट ही थी।
अब तक घटने वाली समस्त घटनाओं में वह सर्वाधिक सुंदर घटना थी। केवल यही आकर्षक और सुंदर नहीं हो सकता कि बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं, बल्कि महाप्रभु चैतन्य का "हरे कृष्णा-हरे रामा" का कीर्तन करते हुए, सड़कों पर नृत्य करना भी उतना ही अधिक सुंदर और आकर्षक है, दोनों समान हैं, अपनी-अपनी उच्चतम खिलावट में हैं।
तुम वृक्ष के नीचे बैठ सकते हो और स्वयं को पूर्णतः भूल सकते हो कि जैसे तुम वहां हो ही नहीं। तुम सड़क पर नाचते हुए, कीर्तन करते हुए, अपने नाच और गाने में इतने अधिक रसमग्न हो सकते हो कि जैसे तुम मिट ही गए। तो राज का सूत्र यह है कि जो भी हो रहा है, जहां भी हो रहा है, उसमें पूर्ण रूप से, समग्रता से तल्लीन हो जाना और ऐसा कहीं भी घटित हो सकता है। ऐसा भिन्न-भिन्न लोगों के साथ विभिन्न मार्गों के द्वारा हुआ है। हम नृत्य करते हुए भगवान बुद्ध की कल्पना भी नहीं कर सकते, वे उस प्रवृत्ति के नहीं थे, नाचना उनका ढंग नहीं था। परंतु तुम्हारा ढंग, तुम्हारी रूचि, तुम्हारी खिलावट नृत्य में हो सकती है, तो स्वयं को बोधि-वृक्ष के नीचे बैठने के लिए विवश मत करो, इससे तुम कठिनाई में पड़ जाओगे। बलपूर्वक स्वयं कोशांत बैठने के लिए बाध्य करना, एक हिंसक प्रयास होगा। तब तुम्हारा चेहरा कभी भी बुद्ध के समान शांत नहीं होगा। वह आत्महिंसा से, यातना से पीड़ित होगा। संभवतः तुम चैतन्य महाप्रभु के समान या मीरा की भांति नाच सकते हो! परंतु अपना मार्ग खोजो, अपना ढंग खुद खोजो। वह जीवन-शैलीढूंढ़ोजिससे तुम्हारे भीतर का बादल गतिमान होता हो। खोजो कि वह बादल तुम्हें उड़ा कर कहां ले जाता है, और पूरी तरह उसके साथ जाओ, अपने को बांधो मत, खुला छोड़ दो। उस बादल को बहने की पूरी स्वतंत्रता दो, क्योंकि वह जहां कहीं भी ले जाए, अंततः दिव्यता तक ही पहुंच जाता है। इसलिए उससे संघर्ष मत करो, केवल बहो। नदी को धक्का मत दो, केवल उसके साथ बहो।
कीर्तन औ नर्तन बहुत सुंदर कला है, लेकिन तुम्हें उसमें समग्रता से डूबना आना चाहिए। बस, यही मुख्य बिंदु है। किसी भी वस्तु को अस्वीकार मत करो, उसकी उपेक्षा मत करो। अस्वीकृति एक तरह की अधार्मिकता है। समग्रता से स्वीकार करो, पूर्ण स्वीकार ही सच्ची प्रार्थना है।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
दूसरा प्रवचन

मन के पार का रहस्य

पहला प्रश्नः
प्यारे ओशो, आकाश में मँडराते हुये ये सुंदर, शुभ्र बादल और हमारा यह अद्भुत सौभाग्य कि आप हमारे बीच उपस्थित हो और हम आपके संग यहां हैं। किंतु ऐसा "क्यों" है?

ऐसे "क्यों" हमेशा ही उत्तररहित होते हैं। जब कभी आप ऐसा "क्यों" पूछते हो, मन हमेशा सोचता है कि उसका कोई उत्तर होगा। लेकिन यह एक बहुत ही भ्रामक कल्पना है। ऐसे किसी "क्यों" का कहीं कोई जबाब नहीं दिया गया है और न ही कभी दिये जाने की संभावना है। यह अस्तित्व बस "है" और इसके बारे में कोई "क्यों" संभव नहीं है। फिर भी यदि तुम पूछते हों और पूछने पर तुले ही हो तोशायद एक उत्तर निर्मित कर सकते हो लेकिन याद रहे कि वह एक निर्मित किया हुआ उत्तर होगा, वह कभी भी असली उत्तर नहीं होगा। ऐसा सवाल पूछना अपने आप में ही असंगत है।

यह इतने सारे वृक्ष हैं, आप नहीं पूछ सकते, "क्यों"?
यह आकाश बस "है", आप नहीं पूछ सकते कि "क्यों"?
अस्तित्व विद्यमान है, नदियां बहती चली जाती हैं, बादल आकाश में मँडराते हैं, आप नहीं पूछ सकते कि "क्यों"?
मैं यह भलीभांति जानता हूँ कि मन पूछता चला जाता हैं कि "क्यों"? मन हमेशा उत्सुक रहता है। वह हर चीज के "क्यों" के बारे में जानना चाहता है। यह मन की एक बीमारी है और वह कुछ इस तरह की है कि इसका कहीं कोई समाधान नहीं है, क्योंकि जैसे ही आप एक क्यों का उत्तर देते हो, तुरंत ही दूसरा क्यों पैदा हो जाता है। प्रत्येक उत्तर सिर्फ और अधिक नयें सवालों को पैदा करता है। और मन तब तक संतुष्ट नहीं होगा जब तक कि आपको आत्यंतिक उत्तर न मिल जाए। और ऐसे आत्यंतिक उत्तर की कोई संभावना नहीं है। आत्यंतिक से मेरा मतलब है, ऐसा उत्तर कि फिर आप आगे कभी कोई "क्यों" नहीं पूछ पाएंगे। लेकिन ऐसे परिस्थिति की कहीं कोई संभावना ही नहीं है। जो कुछ भी कहा जाता है, उससे यह "क्यों" फिर तर्कसंगत बन जाता है।
दर्शनशास्त्र का समस्त प्रयास इस "क्यों" को लेकर इसी मूढ़तापूर्ण दिशा में रहा है कि यह जगत क्यों है? इसपर उन्होंने खूब सोचा और फिर एक सिद्धान्त गढ़ा कि ईश्वर ने इसे बनाया, लेकिन फिर ईश्वर ने इसे क्यों बनाया? फिर इसके लिए कोई और सिद्धान्त बना और अंततः प्रश्न उठा कि ईश्वर ही क्यों है?
तो पहली बात तो मन के इस लक्षण को जानना होगा और निरंतर "क्यों" पूछने वाले मन के इस स्वभाव को समझना होगा। पेड़ों में जैसे पत्ते उग आते हैं वैसे ही मन में ये "क्यों" निकल आते हैं। एक को काटो, तो दूसरा निकल आएगा। तुम अनेक उत्तर एकत्रित कर सकते हो लेकिन फिर भी वहाँ कोई उत्तर नहीं होगा। और जब तक उत्तर प्राप्त नहीं होता है, मन बेचैन रहता है, मन खोजता ही चला जाता है। इसलिए पहली बात मैं तुमसे यही कहना चाहता हूँ कि इस "क्यों" पर इतना अधिक जोर मत दो।
हम इस "क्यों" पर इतना अधिक जोर क्यों देते हैं? हम क्यों चाहते हैं कि कारण को जान लें? हम क्यों चीजों की गहराई में जाकर उसके आत्यंतिक आधार को पकड़ना चाहते हैं? वह इसलिए कि अगर आपको प्रत्येक "क्यों" का जवाब मिल गया, अगर आपने हर चीज का उत्तर पा लिया तो आप उसके मालिक बन जाते हो। फिर आप उसे नियंत्रित कर सकते हो। फिर वह वस्तु या तथ्य एक रहस्य नहीं है, वहाँ विस्मय नहीं है, अब कहीं कोई आश्चर्यबोध शेष नहीं रहा। अब तुम उसके बारे में सब जान गए हो। तुमने उसकी रहस्यमयता को मार डाला।
मन हत्यारा है, खूनी है। जो भी रहस्यमयी है, मन उसे समाप्त करने के लिए उत्सुक रहता है। जो कुछ भी मृत है उसके साथ मन हमेशा एकदम विश्रामपूर्ण

होता है। किसी भी जीवंत चीज के साथ मन अपने आपको स्वस्थ अनुभव नहीं करता क्योंकि तब वह उसपर पूरी मालकियत नहीं कर पाता। जीवंत चीज हर पल ही नई है और उसके बाबत हम कोई भी भविष्यवाणी नहीं कर सकते, जीवतंता के साथ भविष्य स्थिर नहीं हो सकता। किसी भी जीवंत चीज के संदर्भ में आप अनुमान नहीं लगा सकते कि अगले पल वह कहाँ जाएगी, आपको किस दिशा में ले जाएगी। एक मुर्दा चीज के साथ सब कुछ तय है, पूर्व निर्धारित है। इसलिए आप एकदम विश्रामपूर्ण होते हो। आप उसके बाबत जरा भी चिन्तित नहीं होते। आप एकदम बेफिक्र होते हो।
मन की यह गहन प्रवृत्ति होती है कि वह सब कुछ पहले से ही निर्धारित कर
ले, सबकुछ निश्चित कर ले क्योंकि मन जीवन को लेकर बहुत भयभीत है। मन विज्ञान को इसलिए ही निर्मित करता करता है कि जीवन की हर संभावना को नष्ट किया जा सके। मन व्याख्याएं खोजने के प्रयास में लग जाता है और एक बार यदि उसने विश्लेषण कर लिया तो समस्त रहस्य खो जाता है। आप पूछते हो क्यों? जैसे ही उत्तर मिल गया कि बस, मन निश्चिंत हो गया। परंतु तुमने इस ज्ञान के द्वारा क्या पाया? पाया तो कुछ भी नहीं, बल्कि इसके विपरीत तुमने कुछ खोया है, रहस्य-बोध खो दिया है।
यह रहस्यमयता आपको बेचैन करती है क्योंकि यह आपसे कुछ बड़ी, कुछ श्रेष्ठ बात है, कुछ ऐसी जिस पर आपका कोई नियंत्रण नहीं है, जिसे एक विषयवस्तु की तरह आप उपयोग नहीं कर सकते। यह रहस्यमयता आपको वश में कर लेती है, यह आपसे अधिक शक्तिशाली है, इसके समक्ष आप एकदम नग्न और निर्बल हो जाते हो, यह कुछ ऐसी चीज है जिसके सामने आप पूर्णतः मिट जाते हैं।
यह रहस्यमयता आपको मृत्यु जैसा अनुभव देती है इसीलिए हम "क्यों" के बारे में इतनी जांच-पड़ताल करते हैं, यह क्यों और वह क्यों?
लेकिन यह मत सोचो कि मैं तुम्हारे सवाल को नजरअंदाज कर रहा हूँ। मैं इसे टाल नहीं रहा हूँ बल्कि मैं मन के स्वभाव के बारे में तुम्हें कुछ बता रहा हूँ कि मन प्रश्न क्यों पूछता चला जाता है। यदि तुम रहस्य के अनुभव को संभाल कर, उसके साथ बने रहते हो, तो मैं उत्तर देने जा रहा हूँ। यदि इस रहस्यमयता में तुम बने रह सको तो उत्तर देना खतरनाक नहीं होगा बल्कि उपयोगी होगा। फिर तो हर उत्तर तुम्हें एक गहन रहस्यमयता की ओर अग्रसर करेगा। फिर पूरी बात एक अलग ही गुणवत्ता में बदल जाती है। तब तुम इसलिए नहीं पूछते हो कि कोई स्पष्टीकरण मिले बल्कि इसलिए पूछते हो कि तुम उस रहस्यमयता में और गहरे उतर सको। तब यह उत्सुकता, यह खोज केवल मन तक ही सीमित नहीं रह जाती, वह बुद्धिगत नहीं होती। बल्कि वह एक मुमुक्षा बन जाती है, अपने ही अस्तित्व की आत्यंतिक गहराई की तलाश बन जाती है।
देखो, इस अंतर को देखो। यदि तुम केवल व्याख्या के पीछे ही पड़े हो तो यह पूरी तरह से गलत है और मैं आखिरी व्यक्ति होऊंगा जो आपकी इस मंशा को पूरी करूं। फिर तो मैं तुम्हारा दुश्मन बन गया और मैंने तुम्हारे आसपास एक नरक को निर्मित कर दिया। तथाकथित धर्मगुरुओं ने तो परमात्मा तक को मृत बना दिया है। उन्होंने परमात्मा की इतनी व्याख्या की, परमात्मा संबंधी इतने उत्तर उन्होंने दिये हैं कि इसकी वजह से परमात्मा मर गया है। मनुष्यता ने उसे नहीं मारा है, तथाकथित धर्मगुरुओं ने उसकी हत्या की है। उन्होंने उसे इतना परिभाषित कर दिया की कोई रहस्य बचा ही नहीं। उस परमात्मा का क्या मतलब जहां कोई रहस्य ही नहीं है। यदि वह केवल एक सिद्धान्त है तब उसकी चर्चा की जा सकती है, यदि वह कोई उपदेश है तब उसका विश्लेषण किया जा सकता है। यदि वह केवल एक विश्वास मात्र है तब आप उसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं, इन सब में स्पष्टतः आप ही निर्णायक सिद्ध हो रहे हैं, आप उससे बड़े दिखाई पड़ रहे हैं और परमात्मा... वह केवल आपके मन के एक छोटे से हिस्से की भांति हो जाता है, वह एक मृत वस्तु हो गया। जब भी मैं तुम से कोई बात कहता हूँ, तो इस बात का सदैव स्मरण रखना कि मैं तुम्हारी उत्सुकता को दबा नहीं रहा हूं और न ही कोई विश्लेषण या स्पष्टीकरण दे रहा हूँ। तुम्हें कोई बंधा बंधाया उत्तर देने में मुझे जरा भी रस नहीं है। वस्तुतः इसके विपरीत, तुम में अधिक उत्सुकता जगाने के लिए और रहस्यों में अधिक गहरे उतारने के लिए यह मेरा प्रयास है।

मेरा उत्तर तुम्हारे भीतर और अधिक गहरे प्रश्न उठाएगा और एक क्षण ऐसा आयेगा कि जब तुम्हारे सारे प्रश्न गिर जाएंगे। ऐसा नहीं है कि तब तुम्हें सारे उत्तर मिल चुके होंगे, बल्कि तब तुम हर सवाल की व्यर्थता को जान चुके होओगे। ऐसे में केवल रहस्य परिपूर्ण होगा, फिर वह सब तरफ होगा, बाहर भी, भीतर भी। अब तुम उसके एक हिस्से बन गए हो, अब तुम उसमें ही बह रहे हो और अब तुम खुद भी वही रहस्यमयी अस्तित्व हो गए हो, और तभी द्वार खुल जाते हैं। ठीक, अब मैं उत्तर दे सकता हूँ कि क्यों मैं यहाँ तुम्हारे साथ हूँ और क्यों इस क्षण तुम मेरे साथ हो?

पहली बात यह है कि ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि तुम यहाँ मेरे साथ हो, तुम पहले भी मेरे साथ रह चुके हो। जीवन के सभी आयाम परस्पर संबंधित हैं और जीवन एक बहती नदी की तरह है। हम इस जीवन को अतीत, वर्तमान और भविष्य में विभाजित कर देते हैं, लेकिन यह विभाजन केवल उपयोगितावादी है। वास्तव में जीवन कहीं भी विभाजित नहीं है। जीवन का यह प्रवाह अखंड है, शाश्वत है। गंगा नदी अपने उद्गम स्थल पर, उसके बाद हिमालय की चोटियों से उतरते हुए, फिर समतल मैदानों से बहते हुए और अंत में सागर में जाकर गिरती हुई गंगा एक ही है। वह समसामायिक है। वह उद्गम और अंत में, वह प्रारंभ और अंत में कहीं भी पृथक नहीं है, वह एक ही सतत प्रवाह है। वस्तुतः वहां कहीं भी अतीत और भविष्य नहीं है, वहां शाश्वत वर्तमान है। इसे खूब गहराई से समझ लें।
तुम मेरे साथ पहले भी रह चुके हो और तुम अभी भी मेरे साथ हो, यह कोई अतीत का सवाल नहीं है। यदि तुम मौन हो सको, अपने मन को थोड़ा अलग हटा सको, यदि तुम निर्विचार होकर स्वयं में स्थित हो सको, यदि तुम अपनी मौज में मँडराता हुआ एक सफेद बादल बन सको तो तुम जरूर इसे महसूस कर सकते हो कि तुम हमेशा मेरे साथ थे, मेरे साथ हो और मेरे साथ रहोगे। मेरे साथ बने रहने में समय का कोई सवाल ही नहीं है।
किसी ने जीसस से पूछा कि आप अब्राहम के बारे में बात करते हो, आपको उनके बारे में कैसे पता? क्योंकि अब्राहम और जीसस के बीच समय का लंबा फासला है, हजारों साल का फासला है। तब जीसस ने पूर्ण दृढ़ता से, अत्यंत रहस्यमयी जवाब दिया। इसके पहले शायद ही उन्होंने इतनी दृढ़तापूर्वक कोई बात कही हो। उन्होंने कहा, "अब्राहम से भी पहले-मैं था।" अब्राहम के पूर्व मैं मौजूद था। बस, समय समाप्त हो गया।
यह जीवन शाश्वत वर्तमान है। हम सदा से यहीं थे, यहीं हैं, और हमेशा रहेंगे। स्वभावतः भिन्न-भिन्न आकार लिए हुये, भिन्न-भिन्न रूपों में, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में, पर हम सदा-सदा से यहीं हैं।
एक व्यक्ति-विशेष होना भ्रम के सिवा कुछ नहीं है। यह जीवन विभाजित नहीं है। हम द्वीपों की तरह अलग थलग नहीं हैं, हम एक हैं। और एक बार इस एकता को तुम अनुभव कर सको, तो समय विलीन हो जाता है और स्थान अर्थहीन हो जाता है। अचानक तुम समय और स्थान से परे चले जाते हो। तब तुम्हारा अस्तित्व मात्र होता है, केवल और केवल शुद्धतम रूप में तुम ही बचते हो।
किसी ने भगवान बुद्ध से पूछा, "आप कौन हो"
बुद्ध ने कहा, "मैं किसी कोटि का नहीं हूँ, मैं बस हूँ। मैं हूँ... लेकिन किसी कोटि का नहीं।"
ठीक अभी तुम्हारे पास भी वह झलक हो सकती है। अगर आप सोच-विचार नहीं कर रहे हो तब आप कौन हो? अब समय कहां है? क्या वहाँ कोई अतीत है? तब क्या कहीं कोई भविष्य है? तब "यही" क्षण शाश्वत हो जाता है। समय की यह प्रक्रिया केवल इसी "क्षण" का-"अभी" का फैलाव है। यह पूरा आकाश इसी "स्थान" का-"यहीं" का फैलाव है।
तो जब तुम पूछते हो कि मैं यहाँ पर क्यों हूँ या तुम यहाँ पर क्यों हो
तो कारण इतना ही है कि होने का केवल यही एक ढंग है। मैं बस यहीं पर हो सकता हूँ, अन्य कहीं और हो ही नहीं सकता। आप भी और कहीं न होकर बस यहीं पर हो सकते हो। और इसी प्रकार हम यहाँ पर इकट्ठे हैं।
ठीक अभी तुम इसे देख पाने में सक्षम नहीं हो। यह जोड़ अभी तुम्हारे लिए इतना स्पष्ट नहीं है क्योंकि तुम्हारा अचेतन तुम्हें स्पष्ट नहीं है। अभी तुम स्वयं को समग्रता में नहीं जान पा रहे हो। अपने अस्तित्व का केवल

"एक बटा दस" भाग ही तुम्हारे लिए ज्ञात है और "नौ बटा दस" भाग अभी भी अंधकार में है।
तुम उस जंगल की तरह हो जिसका थोड़ा सा भाग साफ कर दिया गया है। जैसे थोड़े से वृक्ष काटकर, रहने के लिए छोटी-सी जगह बना दी गई हो। लेकिन उस छोटी- सी साफ-सुथरी जगह के पार अभी भी एक घना जंगल मौजूद है। तुम्हें उसकी सीमाओं का कोई अंदाज़ा नहीं है। और तुम अंधकार एवं जंगली जानवरों से इतने डरे हुये हो कि तुम अपनी उस छोटी-सी जगह से, उस स्पष्टता से कभी बाहर ही नहीं निकले हो। लेकिन तुम्हारी यह छोटी-सी स्पष्टता उस बड़े घने जंगल का एक हिस्सा मात्र है। तुम्हें पूरी तरह से अपने होने का कुछ पता नहीं है।
मैं तुम्हारे इस पूरे घने जंगल को और पूरे अंधेरे को देख पाता हूँ। और अगर एक व्यक्ति को भी मैं उसकी समग्रता में देख पाता हूँ तो उसमें सब व्यक्ति समाहित हैं क्योंकि यह जंगल अलग थलग नहीं है। उस अंधेरे में सीमाएं कहीं खो जाती हैं, एक दूसरे में विलीन हो जाती हैं और एक हो जाती हैं।
अभी आप यहाँ पर हो, अगर मैं एक ही व्यक्ति के प्रति पूरी तरह केन्द्रित हो जाता हूँ, तो मैं अपने ही प्रति एकाग्र हो रहा हूँ। लेकिन फिर भी इस एकाग्रता के बावजूद, मैं आप सब की सीमाओं को एक दूसरे में लय होते हुये निरंतर महसूस करता हूँ। तो एक विशिष्ट अभिप्राय लेकर मैं भले ही आपको एक अलग व्यक्ति की तरह देखूं, लेकिन ऐसा हरगिज नहीं है। जब मैं कहीं पर भी केंद्रित नहीं हूँ, तो मैं तुम पर केन्द्रित हुये बिना, बस केवल तुम्हें देख रहा हूँ, केवल देखना मात्र... तो आप कहीं पर भी होते ही नहीं हो। आपकी सब सीमाएं दूसरों में घुलमिल जाती हैं, केवल मनुष्य जाति में ही नहीं बल्कि पेड़ और पहाड़ और आकाश और हर चीज के साथ। सभी सीमाएं केवल एक भ्रम हैं इसलिए एक व्यक्ति भी भ्रम के सिवा कुछ भी नहीं है।
मैं यहाँ हूँ क्योंकि मैं कहीं और हो ही नहीं सकता। जीवन के होने का यही ढंग है। आप यहाँ हो, क्योंकि आप भी यहीं हो सकते हो, और कहीं नहीं। सबके साथ इसी ढंग से जीवन घटित हुआ है। लेकिन इसे स्वीकार करना कठिन है, क्यों कठिन है स्वीकार करना? क्योंकि फिर नियंत्रण आपके हाथ में नहीं रहता है। जीवन आप से ऊपर हो गया, बड़ा हो गया।
अगर मैं कहूँ कि तुम यहाँ इसलिए हो क्योंकि तुम सत्य के एक महान खोजी
हो तो तुम एकदम सुकून महसूस करोगे। अगर तुम यहाँ हो क्योंकि तुम महान खोजी हो तो तुम्हारे अहंकार की पुष्टि हो गयी। यदि चुनाव तुम्हारे हाथ में है तो फिर तुम जो चाहो वह होसकते हो। फिर चुनाव करनेवाले तुम ही हो। फिर तुम जीवन से नियंत्रित नहीं, अपितु जीवन के नियंत्रणकर्ता हो।
लेकिन मैं ऐसा नहीं कहता हूँ। मैं कहता हूँ कि आप यहाँ हो क्योंकि जीवन इसी ढंग से घटित हुआ है। आप इसे नहीं चुन सकते, यह आपका चुनाव नहीं है। फिर अगर आप इसे छोड़ते भी हो तो भी यह आपका चुनाव नहीं है। पुनः यह जीवन के ऐसे ही घटित होने का कोईढंग होगा। आप अगर यहाँ पर बने ही रहने का निर्णय लेते हो तब भी यह आपका चुनाव नहीं है। चुनाव संभव ही नहीं है। चुनाव केवल अहंकार के साथ ही संभव है। जब हमारे अहंकार को पोषण नहीं मिलता है तब हम चिन्तित और परेशान हो जाते है। तब सहज होने के दो मार्ग हैं:एक तो यह कि अहंकार को पुष्ट करते जाओ और दूसरा यह कि उसे छोड़ दो। और ख्याल रहे कि पहला तात्कालिक है, कामचलाऊ है, अस्थाई है। जितना आप आप अहंकार को भरते हो, वह और-और मांगता चला जाता है और उसका कहीं कोई अंत नहीं है।
इसीलिए मैं कहता हूँ कि जीवन बस इस ढंग से घटित हुआ है कि आप यहाँ हो
और मैं यहाँ हूँ। और ऐसा पहले भी कई बार घट चुका है और ऐसा ही निरंतर घटित होता रहेगा। अगर आप इसे ठीक से समझ सकते हो तो बहुत कुछ तत्काल ही संभव है। यदि आप इस बात कोसमझते हो तो आप और अधिक खुले, कम संकुचित, अधिक सहनशील औरअधिक ग्रहणशील हो जाते हो। फिर आप भयभीत नहीं हो और जीवन आप के माध्यम से और अधिक प्रवाहित होगा। तब बस ठंडी हवा का एक झोंका हो आप। आप एक खाली स्थान हो गए हो जिससे कि जीवन आ रहा है, जा रहा है और आप उसे सहजता से गुजर जाने देते हो। यह गुजर जाने देना ही असली कुंजी है, रहस्यों का रहस्य है। इसीलिए मेरा इस बात पर जोर है, आग्रह है कि आपका यहाँ पर होना, आपकी ओर
से कोई चुनाव की बात नहीं है। मैं यहां पर हूँ इसमें मेरे चुनाव की कोई बात

ही नहीं है। जहां तक मेरा संबंध है तो चुनाव का कोई सवाल ही नहीं उठता क्योंकि मैं तो हूँ ही नहीं। जहां तक आपका संबंध है आप इस भ्रम में हो सकते हो कि आप यहाँ अपने निर्णय से हो। पर ऐसा हरगिज नहीं है।
मैं तुम्हारे अहंकार को भरनेवाला नहीं हूँ क्योंकि उसे तो नष्ट करना है। यही तो सारा प्रयास है कि कैसे तुम्हारी सीमाएं नष्ट की जाएं क्योंकि जैसे ही यह सीमाएं खो जाएंगी तुम असीम हो जाओगे, तब तुम अनंत हो और यह ठीक इसी क्षण संभव है। उसमें कहीं कोई बाधा नहीं है, केवल तुम ही बाधा बने हुए हो, अपनी सीमाओं से चिपके हुए हो।
मेरे पास अनेक लोग आकर पूछते हैं कि क्या हम पहले भी आपके साथ रह चुके है? अगर मैं हाँ कहता हूँ तो उनको बहुत अच्छा लगता है। अगर मैं ना कह दूँ तो वे बहुत निराश, बहुत दुखी हो जाते है। क्यों? हम भ्रम में जीते हैं। तुम यहाँ पर, अभी मेरे साथ हो यह इतना महत्त्व पूर्ण नहीं है। तुम अतीत में मेरे साथ थे यह तुम्हें ज्यादा महत्त्वपूर्ण लगता है। और यह क्षण तुम गँवा रहे हो जबकि तुम सही अर्थों में, अभी इसी पल मेरे साथ जी सकते हो। क्योंकि मेरे साथ होना केवल एक शारीरिक घटना नहीं है। हो सकता है कि तुम मेरे बगल में मेरे साथ बैठे हो परंतु संभव है कि तुम उस समय मेरे साथ हो ही नहीं। आप सालों मेरे साथ होते हुए भी, हो सकता है कि एक क्षण के लिए भी मेरे साथ ना रहे हों क्योंकि मेरे साथ होने का मतलब है कि "आप हो ही नहीं"।
मैं नहीं हूँ और यदि एक क्षण के लिए तुम भी नहीं होते हो तो मिलन संभव है, वहां एक गहरा मिलन होगा-दोशून्यताएं मिलती हैं। याद रहे कि केवल दोशून्यताएं ही मिल सकती हैं। अन्य कोई मिलन संभव ही नहीं है। जब कभी मिलन होता है तब दोशून्यताएं ही एक दूसरे में घुल-मिल जाती हैं।
अहंकार बहुत ठोस है, सघन है और उसका विलय हो पाना सर्वाधिक कठिन है। इसलिए आप बहुत लड़ते हो, संघर्ष करते हो, पर फिर भी मिलन संभव नहीं हो पाता। आप ऐसा सोच सकते हो कि यह संघर्ष दो अहंकारों का ही मिलन है। यह भी एक तरह का मिलना है। आप एक दूसरे के करीब आ सकते हो लेकिन कभी करीब हो नहीं पाते।
आप मिलते हो फिर भी मिलन नहीं होता। आप एक दूसरे का स्पर्श भी करते हो फिर भी अस्पर्शित ही रह जाते हो। आपका अंतःस्तल, आंतरिक शून्यता कोरी की कोरी रह जाती है, उसके भीतर कुछ भी प्रवेश नहीं कर पाता है।
लेकिन जब अहंकार नहीं होता, आप अपने "मैं" को सघनता से अनुभव नहीं करते हो, जब आप अपने बारे में बिल्कुल ही नहीं सोचते हो, जब वहाँ आपकी अपनी कोई सत्ता ही नहीं होती, उसे ही भगवान बुद्ध "अनत्ता" कहते हैं:कोई सत्ता नहीं। लेकिन इस बात को बहुत गलत समझा गया। भारत में लोग "आत्मा" कि बात कर रहे थे, "स्व" की, परम तत्व की बात कर रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति उस परम तत्व की खोज में लगा था कि कैसे उस परम को पाया जा सके और फिर बुद्ध आते हैं और कहते हैं कि वहाँ पाने के लिए कोई"स्व" ही नहीं है, उल्टे आप बिना किसी "स्व" के हो रहो। उनके उपदेश को स्वीकार करना संभव ही नहीं था। भगवान बुद्ध को इस देश से बाहर कर दिया गया। उन्हें कहीं भी स्वीकार नहीं किया गया। एक बुद्ध पुरूष को हमेशा ही बाहर धकेल दिया जाता है। जहां कहीं भी वे जाएंगे, उनको बाहर धकेल दिया जाएगा क्योंकि वे आप पर इतनी गहरी चोट करते हैं कि उसे सह पाना आपके लिए संभव नहीं हो पाता। वे कहते हैं कि आप हो ही नहीं।
आप जब खाली हो, जब भीतर केवल एक रिक्तता विद्यमान हो, तब मिलन होता है। जोभी खाली होने की क्षमता रखता है केवल वही लीन हो सकता है। अस्तित्व के साथ एक होने का केवल यही एक मार्ग है। तुम इसे प्रेम कह सकते हो, तुम इसे प्रार्थना कह सकते है, ध्यान कह सकते हो या जो भी नामकरण तुम्हें अच्छा लगे, वह कर सकते हो।
तुम यहाँ हो क्योंकि जीवन ऐसा ही घटित हुआ है। मैं यहाँ पर हूँ क्योंकि मेरे साथ जीवन इसी ढंग से घटित हुआ है। तुम्हारा मेरे साथ होना उपयोगी हो सकता है या इसका दुरुपयोग भी संभव है या यह बिल्कुल ही निरर्थक हो सकता है और इससे पूर्णतया चूकना भी हो सकता है। यदि आप चूक रहे हो तो यह भी पहली बार नहीं घट रहा है। आप पहले भी मेरे साथ कई बार रह चुके हो। ऐसा नहीं है कि मेरे ही साथ, कई बार आप किसी अन्य बुद्ध पुरूषों के साथ रह चुके होंगे लेकिन वह भी मेरे साथ रहना ही है। कई बार आप किसी जिन अथवा महावीर के

साथ रह चुके होंगे, वह भी मेरे साथ होना ही है। कई बार आप जीसस या मोजे़स या लाओत्से के आसपास रहे होंगे, वह भी मेरे साथ होना ही है। लाओत्से या कोई भी बुद्ध पुरूष, इनको किसी भी तरह से परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि शून्यता का कोई भिन्न लक्षण नहीं होता, दोशून्यताओं में कोई अंतर, कोई अलग विशेषता नहीं होती।
यह हो सकता है कि तुम लाओत्से के साथ थे और मैं कहूँ कि तुम मेरे साथ
थे क्योंकि वहां कुछ भी तो अलग नहीं है। लाओत्सु केवल एक रिक्तता है। दोशून्यताएं बिल्कुल एक जैसी होती हैं। तुम उनमें लेशमात्र भी भेद नहीं कर सकते। लेकिन तुम चूक गए, तुम कई बार चूकते रहे हो, तुम इस बार फिर से चूक सकते हो।
और याद रहे, तुम होशियार हो, चालाक हो, हिसाब-किताब खूब बेहतर जानते हो। यदि तुम चूक भी जाते हो तो अपनी चालाकी से, अपनी बुद्धिमानी से ही चूकोगे। तुम अपने चूकने को भी तर्कसंगत बनाने की चेष्टा करोगे, प्रमाण सहित उसे सिद्ध करोगे, कहोगे कि वहाँ पाने को कुछ था ही नहीं या फिर कोई ऐसा तर्क खोज लोगे जो वास्तविकता कोढांक लेगा। अगर तुम इस चूक जाने की संभावना के प्रति जाग जाते हो तो मिलन तत्क्षण संभव है। और मैं कहता हूँः तुरंत... तत्क्षण... तत्काल! अतः इसे भविष्य पर टालने की या स्थगित करने की कोई जरूरत ही नहीं है। और यह सूचक है कि जीवन इस तरह घटित हुआ है कि आप यहाँ पर हो। करोड़ो लोग हैं यहां, पर उनका जीवन इस ढंग से नहीं घटा है। आप भाग्यशाली हो पर इसे अपने अहंकार का भोजन मत बनाना क्योंकि अगर आपके अहंकार ने स्वयं को पुष्ट किया और वह मजबूत हो गया तो आप इस सौभाग्य से चूक जाओगे। आप सौभाग्यशाली हो, पर यह एक खुली संभावना है। इसमें आप आगे बढ़ सकते हो या इसे आप छोड़ भी सकते हो पर यह दुर्लभ है और कई कारणों से यह दुर्लभ है।
पहली बात कि किसी ऐसे व्यक्ति की ओर आकर्षित होना बहुत ही कठिन मामला
है जोशून्य हो, क्योंकि शून्यता में कोई चुम्बकीय शक्ति नहीं होती है। तुम ऐसे व्यक्तियों से प्रभावित होते हो जिनके पास कुछ है, जिनसे कुछ लिया जा सकता है। हम ऐसे व्यक्ति से क्यों आकर्षित होते हैं जिनसे कुछ मिल सके? क्योंकि हमारी भी अपनी कामनाएँ हैं। हम भी चाहते हैं कि हमें कुछ मिल जाए। तुम राजनीतिज्ञों से प्रभावित होते हो क्योंकि उनके पास सत्ता है, शक्ति है। तुम भी बहुत गहरे में वह सत्ता, वह शक्ति चाहते हो, तुम भी उसी दिशा की ओर उन्मुख हो। इसी कारण, जिसके पास ऐसी ताकत होती है वह तुम्हारा आदर्श बन जाता है, नायक बन जाता है। तुम किसी बहुत ही समृद्ध और संपन्न व्यक्ति की ओर आकर्षित होते हो क्योंकि बहुत गहरे में तुम भी धन और समृद्धि की लालसा रखते हो। इसी कारण, समृद्धिशाली एवं संपन्न लोग तुम्हारा आदर्श बन जाते हैं। लेकिन किसी ऐसे व्यक्ति की ओर कोई कैसे और क्यों आकर्षित होगा जिसके पास कुछ भी नहीं है?
ऐसे शून्य व्यक्तित्व की तरफ आकर्षित होना एक दुर्लभ संभावना है, संयोग है, और वास्तव में यही है असली सौभाग्यशाली होना। कभी-कभी जीवन इस ढंग से भी घटता है कि आप एक ऐसे व्यक्ति की और आकर्षित होते हो जिसके पास कुछ भी नहीं है, जोशून्य है। उससे आपको कुछ भी मिलने वाला नहीं है इसके विपरीत आपके पास जो है वह सब भी छिन जाने की संभावना है। यह एक जुआ है और तुम सब जुआरी हो और इसीलिए यहाँ पर हो। और जब तक पूरे कुशल जुआरी नहीं हो जाते, चूक जाओगे क्योंकि यह दांव टुकड़ों में नहीं खेला जा सकता, इस विराट खेल में आधा-अधूरा और पक्षपात से भरा दांव स्वीकार नहीं किया जा सकता। अस्तित्व के खेल का ऐसा ही नियम है। इसलिए कुछ भी पकड़ के मत बैठो, जो कुछ भी है तुम्हारे पास, सब दे डालो, प्रत्येक वस्तु दांव पर लगा दो। यह खेल खतरनाक और जोखिम भरा है। इसीलिए मैंने कहा है कि किसी भी बुद्ध या जीसस से प्रभावित होना दुर्लभ घटना है। बहुत ही कम लोग इनसे आकर्षित होते हैं। आपको जीसस के बारे में पता है। बहुत थोड़े से... केवल बारह शिष्य और वह
भी बहुत ही सामान्य लोग-मछुआरे, लकड़हारे, कुछ किसान, किसी भी अर्थों में कोईप्रसिद्ध व्यक्ति नहीं थे, बहुत ही सामान्य लोग थे। क्यों ऐसे सीधे- सादे लोग, सामान्य लोग बुद्ध या जीसस की ओर आकर्षित हुये? सामान्य होना एक

असामान्य गुणवत्ता है। क्योंकि जो लोग सामान्य नहीं हैं वे संपत्ति, शक्ति या प्रतिष्ठा के लिए किसी अहंकार की यात्रा पर गतिमान होते हैं। एक किसान, एक मछुआरा, एक लकड़हारा-ये लोग बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं हैं, बिल्कुल ही सामान्य लोग, जो कुछ भी पाना नहीं चाहते थे, ऐसे लोग जीसस की ओर आकर्षित हो गए। सामान्य होना बहुत ही दुर्लभ है। बिल्कुल सामान्य हो जाना वास्तव में असामान्य घटना है।
लोगों ने झेन सदगुरुओं को हमेशा ही ऐसा कहते हुए सुना है:"सामान्य बने रहो, साधारण बने रहो और तब तुम असाधारण हो जाते हो"। हर सामान्य व्यक्ति असामान्य होने की कोशिश में लगा हुआ है। यह बहुत सामान्य सी बात है। सरल-साधारण बने रहना ही असामान्य घटना है। इसका मतलब है कि किसी भी चीज की कोई खोज नहीं, कुछ पाने की कोई इच्छा नहीं। जीवन किसी लक्ष्य से प्रेरित नहीं है... बस क्षण-क्षण जीते हुये, बस बहे जा रहे हो। वही जो मैं आपसे कह रहा हूं, सफेद बादलों की तरह बस मंडरा रहे हो।
आपका यहाँ पर होना एक दूसरे अर्थ में भी दुर्लभ है क्योंकि मनुष्य का
मन हमेशा मृत्यु से भयभीत रहता है। वह जीवन से चिपका रहना चाहता है, जीवन के लिए लालायित रहता है। कितना भी दुख हो वह जीवन से जकड़ा हुआ रहता है, मृत्यु के प्रति एक गहरा भय होता है। परंतु जब कोई व्यक्ति मेरे पास आता है तो वास्तव में वह मिट जाने के लिए आता है, खोने के लिए ही आता है। मैं उसके लिए एक गहरी खाई, एक अतल घाटी हूँ जिसमें वह गिर जाएगा... गिरता जाएगा... और फिर भी कहीं पहुंचेगा नहीं।
यदि तुम मेरे अंदर झाँकते हो तो तुम संभ्रमित हो जाओगे, एक भंवर से आक्रांत हो जाओगे, तुम्हें चक्कर आने लगेंगे। अगर तुम मेरी आँखों में लगातार देखोगे तो वह अतल खाई दिखेगी और एक डर आपको पकड़ लेगा और वह गिरना... बस गिरते ही जाना... ! जरा सोचो कि एक पत्ता गहरी खाई में गिरता ही जा रहा है, और वह खाई अनंत है और अतल है और वह पत्ता कहीं नहीं पहुँच रहा है, वह केवल लुप्त हो रहा है। गिरना... गिरते ही जाना... और फिर अंततः वह पत्ता बस खो जाएगा।
आध्यात्मिक यात्रा की शुरुआत तो होती है लेकिन उसका अंत कभी नहीं होता। तुम मेरे पास आओ, मेरे भीतर गिर जाओ, मुझमें समा जाओ, बस मुझमें खो जाओ। ऐसे में तुम मिट जाते हो, पर कहीं पहुँचते नहीं हो। लेकिन यह मिट जाना ही आनंदपूर्ण है। ऐसा आनंद जो इससे पहले कभी अनुभव नहीं किया गया। और वास्तव में कुछ भी इतना आनंदपूर्ण नहींहै जितना कि यह पूर्ण रूप से खो जाने का आनंद! जैसे सुबह की ओस की बूंद सूरज निकलते ही विलुप्त हो जाती है या फिर जैसे रात्रि में दीपक की ज्योति जल रही है और हवा का झोंका आता है, वह ज्योति बुझकर अंधेरे में ही खो जाती है और आप उसे ढूंढ नहीं पाते कि वह कहां लुप्त हो गयी। बस, इसी तरह तुम भी खो जाते हो।
ऐसा आत्मघात मुश्किल से ही कहीं खोज पाओगे। यह आत्मघात है, सही मायने में आत्मघात ही है। तुम अपने शरीर को कहीं भी, कैसे भी समाप्त कर सकते हो पर अपने "स्व" को, अपने "होने" को, ऐसे ही नहीं मिटा सकते। यहाँ तुम अंतिम आत्मघात के लिए, अपनी निजता को मारने के लिए तैयार हो जाते हो, अपने "स्व" को ही समाप्त कर देते हो।
लेकिन इसकी व्याख्या करने का कोई प्रयास मत करना। यह सब विश्लेषण करने या व्याख्या करने की कोटि में समाता ही नहीं है। मैं हमेशा ही व्याख्या करने के विरोध में रहा हूँ। यह रहस्य यदि तुम्हें और अधिक रहस्यमयी बना देता है, ज्यादा अनिश्चित और ज्यादा अस्थिर बना देता है तो यही बेहतर होगा। यदि तुम्हारा मन धुंए में खो जाता है और तुम समझ ही नहीं पाते कि कौन क्या है? सीमाएं खत्म हो जाती हैं तो यही सर्वश्रेष्ठ स्थिति है।

दूसरा प्रश्नः
ओशो! जैसा कि सभी बादलों के साथ होता है, श्वेत बादल भी हवा के द्वारा निर्देशित होते हैं। आज की वर्तमान परिस्थितियों में हवा की दिशा क्या है? क्या इस जीवन-अवधि में कोई विशिष्ट संभावनाएं हैं?

श्वेत बादल हवा के द्वारा निर्देशित नहीं होते हैं। दिशा निर्देश देने की घटना केवल तभी घटती है जब कहीं कोई अवरोध उत्पन्न होता है। यदि श्वेत बादल पूरब की ओर जाना चाहते हैं और हवा पश्चिम की ओर बहती है, तब वहां निर्देशन होता है:क्योंकि वहां अवरोध है। लेकिन यदि बादल कहीं भी नहीं जा रहा है, उसके लिए पूरब और पश्चिम समान है, उसके लिए कोई भी अवरोध नहीं है। यदि बादल की ओर से अपनी कोई चाह नहीं है तो हवा उसे निर्देशित कर ही नहीं सकती।
तुम केवल तभी निर्देश दे सकते हो, जब कोई व्यक्ति बहने को तैयार न हो, विश्राम करने और तथाता में जाने को तैयार न हो। परंतु बादल की प्रवृत्ति तो पूर्णतः स्वयं को मुक्त कर देने की होती है। यदि हवा पूरब की ओर बहती है तो बादल तैयार है, वह पूरब की ओर गतिशील होने कोही तैयार है। वहां "न" करने जैसा विचार ही नहीं है, वहां अस्वीकार का ख्याल ही नहीं है। यदि बादल पश्चिम की ओर जा रहा था और हवा पूरब की ओर बहना शुरू हो गई हो तो बादल अत्यंत सहजता से और प्रसन्नता से पूरब की ओर बहने लगता है। हवा उसे बिल्कुल भी निर्देशित नहीं कर रही है। निर्देशन केवल तभी आवश्यक होता है जब कोई व्यक्ति किसी तरह के विरोध में हो।
लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं:"हमें कोई निर्देश दीजिए।" मैं जानता हूं कि वे क्या कह रहे हैं, उनका आशय होता है:"हमें मार्गदर्शन दीजिए।" मैं यह भलीभांति जानता हूं कि वे क्या कह रहे हैं। दरअसल वे तैयार नहीं हैं अन्यथा निर्देशित किए जाने और मार्गदर्शन देने की आवश्यकता ही क्या है?
यह पर्याप्त है कि तुम यहां मेरे साथ हो और प्रत्येक चीज़ स्वभाविक रूप से घटेगी।
हवा पूरब की ओर चल रही है और तुम भी पूरब की ओर बहना शुरू कर देते हो, लेकिन फिर भी तुम कहते हो-"मार्गदर्शन दीजिए", फिर भी तुम कहते हो-"निर्देश दीजिए"। जब तुम जानते हो कि मुझे बस बहना ही है... बावजूद इसके यदि तुम पूछते हो तो इसका अर्थ है कि तुम स्वयं ही यह कह रहे हो कि तुम विरोध में हो, तुम्हारे पास इंकार है, तुम्हारे पास अस्वीकृति है और तुम संघर्ष करोगे। यदि बादल की ओर से अपनी कोई भी चाह नहीं है तो तुम यह अंतर करोगे कैसे कि कौन बादल है और कौन हवा है? जब चाह ही नहीं होती है तो सीमा का वजूद भी नहीं होता है।
इसे स्मरण रखो, इसे तुम्हारी बुनियादी समझ बन जाना चाहिए कि तुम्हारे
और मेरे बीच जो भी फासला है, जो भी सीमा है, वह तुम्हारी कामना के कारण है। तुम अपनी किसी चाहत के द्वारा चारों ओर से घिरे हुए हो और जब मैं आता हूं तब एक संघर्ष आरंभ होता है। एक बादल के पास कोई भी कामना नहीं होती, इसलिए सीमा का सवाल ही कहां है? बादल का अंत कहां है और कहां से हवा शुरू हो रही है? बादल और हवा एक ही हैं। बादल, हवा का एक भाग है और हवा, बादल का एक भाग है। मूलभूत सत्ता अविभाजित है, एक ही है।
हवा सभी दिशाओं में बहती रहती है, इसलिए दिशा को चुनने की कोई समस्या
ही नहीं है। समस्या यह है कि बादल कैसे बना जाए? हवा सभी ओर बहती चली जाती है, वह सर्वत्र गतिशील होते हुए दिशाएं बदलती है। वह हमेशा एक छोर से दूसरे छोर की ओर दौड़ती ही रहती है। वास्तव में हवा की कोई दिशा नहीं है, वहां कोई भी नक्शा नहीं है और सबकुछ दिशाहीन है। कोई भी हवा को निर्देश देने वाला नहीं है, हवा से कोई यह नहीं कहता कि पूरब की ओर बहो या पश्चिम की ओर बहो। हवा को संपूर्ण अस्तित्व तरंगित करता है। हवा एक स्पंदित, एक तरंगायित अस्तित्व है और सभी दिशाएं, समस्त निर्देश उसमें समाहित हैं। और जब मैं कहता हूं कि सभी दिशाएं तो मेरा मतलब ठीक और गलत दोनों दिशाओं से है, मेरा मतलब नैतिक और अनैतिक दोनों ही दिशाओं से है। जब मैं कहता हूं कि सभी दिशाएं तो मतलब-सभी; यहां मेरा आशय सभी दिशाओं से है। हवा सभी दिशाओं में उन्मुक्त होकर बहती है। हमेशा से ही ऐसा हो रहा है।
इसलिए स्मरण रहे, कभी भी विशेष रूप से कोई धार्मिक युग या कोई अधार्मिक युग नहीं रहा है और वह हो भी नहीं सकता। लोग ऐसा सोचते हैं, क्योंकि वह भी उन्हें अहंकार की यात्रा पर ले जाता है। भारत में लोग सोचते हैं कि प्राचीन दिनों में, प्रारंभ के दिनों में, पृथ्वी पर एक बड़ा ही

धार्मिक युग था और अब इस युग में प्रत्येक वस्तु विकृत हो गई है और यह सर्वाधिक अंधकारमय युग है। यह सभी मूर्खतापूर्ण और व्यर्थ की बातें हैं। कोई युग, कोई समय धार्मिक या अधार्मिक नहीं होता है। धार्मिकता का समय के चक्र के साथ कोई संबंध नहीं होता, धार्मिकता का संबंध तो मन की गुणवत्ता के साथ होता है।
इसलिए प्रश्न यह नहीं है कि यदि बादल पूरब की ओर जा रहा है, तब वह धार्मिक होगा और यदि वह पश्चिम की ओर जा रहा है तो वह अधार्मिक होगा। नहीं, यदि बादल के पास कोई चाह शेष नहीं है तो बादल धार्मिक ही है, चाहे वह कहीं भी, किसी भी ओर जाता है और यदि बादल के पास कोई चाह है, कोई कामना है, तब वह जहां कहीं भी जाता है वह अधार्मिक होगा।
वैसे दोनों तरह के बादल मौजूद हैं:ऐसे बादल बहुत कम संख्या में हैं
जो कामनारहित हैं, अन्यथा लाखों की संख्या में तो वे ही बादल हैं जिनके पास इच्छाएं, कामनाएं, धारणाएं और विचार प्रचुरता में हैं। वे हवा के साथ संघर्ष करते हैं। वे जितना अधिक संघर्ष करते हैं, उतना ही अधिक दुख उत्पन्न हो जाता है। यह संघर्ष उन्हें कहीं भी नहीं ले जाता, कोई मंज़िल नहीं मिलती, क्योंकि इस बारे में कुछ किया ही नहीं जा सकता। तुम संघर्ष करो अथवा न करो, किसी भी स्थिति में यदि हवा तुम्हें पूरब की ओर ले जाती है तो तुम्हें पूरब की ओर ही जाना ही होगा। तुम केवल एक धारणा बनाकर अपने को आश्वासन मात्र दे सकते हो कि अब तक तुम ही संघर्ष करते रहे हो और तुम एक महान योद्धा हो। बस सारा मामला यही है।
जो भी यह सारा मामला समझ जाता है, वह लड़ना बंद कर देता है। वह अपने को बचाने के लिए तैरने का प्रयास भी नहीं करता, बस वह सहजता और सरलता से धारा के साथ बहता चला जाता है। इस बहती धारा का प्रयोग वह एक वाहन की भांति करता है, वह उसके साथ तालमेल बिठाना जान जाता है और बहाव के साथ एक हो कर, उसके साथ ही गतिशील हो जाता है। इसे ही मैं समर्पण कहता हूं और इसे ही प्राचीन धर्मग्रंथों ने एक भक्त की भावदशा कहा है। जब तुम समर्पण कर देते हो तो तुम बचते ही नहीं हो, तुम होते ही नहीं हो। तब हवा तुम्हें जहां कहीं भी ले जाए, तुम वहीं जाओगे। तुम्हारी अपनी कोई भी इच्छा बाकी नहीं रहती है। सदा से ऐसा ही होता रहा है।
अतीत में जो बुद्ध हुए, वे विलुप्त होते और बहते हुए श्वेत बादलों की भांति थे। वर्तमान में भी जो बुद्ध मौजूद हैं वे इन बहते हुए श्वेत बादलों जैसे हैं। अतीत में कुछ विक्षिप्त काले बादल थे जो इच्छा, कामना और वासना से भरे थे, वे भविष्योन्मुखी थे। वे आज भी हैं। इच्छा और कामना के साथ तुम भी एक काले बादल ही हो-दारूण और बोझिल। परंतु बिना इच्छा और बिना किसी कामना के तुम एक श्वेत बादल हो-भारहीन श्वेत बादल। इन दोनों ही तरह के बादल होने के लिए संभावना हमेशा खुली रहती है। यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम सहज-स्वभाविक स्थिति में स्वयं को लुप्त होने की अनुमति देते हो या नहीं।
समय और युग के बारे में मत सोचो। समय और युग अपने आप में उदासीन होते हैं, वे निष्पक्ष होते हैं। वे किसी को भी एक बुद्ध बनने के लिए विवश नहीं करते और न ही वे किसी को बुद्ध बनने से रोकते हैं। समय और युग वस्तुतः तटस्थ होते हैं। यदि तुम स्वयं को खाली होने देते हो तो वह स्वर्ण-युग है। यदि तुम स्वयं कोअत्याधिक कामनाओं से भर लेते हो तो वह संभवतः अंधकार भरा युग अर्थात कलियुग है। तुम अपने चारों ओर अपना एक समय और अपना एक युग सृजित कर लेते हो। तुम अपने ही बनाए हुए इस युग और समय में रहते हो।
स्मरण रहे, इस तरह से हम सब समकालीन नहीं हैं। जीसस जैसा व्यक्ति प्राचीन है, वह ठीक यहां भी हो सकता है लेकिन वह अति प्राचीन है। वह इतनी समग्रता से उस शाश्वतता के साथ जिया है कि तुम उन्हें आधुनिक नहीं कह सकते। वह इतनी समग्रता से उपस्थित हैं कि तुम उन्हें किसी कालखण्ड का हिस्सा नहीं कह सकते। वह इस लौकिक संसार की सज-धज और निरंतर बदलने वाले प्रचलनों का हिस्सा कदापि नहीं हैं। असीम, अखण्ड और परम तत्व के साथ रहते हुए तुम भी असीम, अखण्ड और पूर्ण हो जाते हो। शाश्वत के साथ रहते हुए तुम भी शाश्वत हो जाते हो। समयातीत के साथ रहते हुए तुम भी समयातीत हो जाते हो।

लेकिन एक दूसरे अर्थ में यह प्रश्न प्रासंगिक है। पूरे संसार-भर के लोग यही सोचते हैं कि एक विशिष्ट युग, एक विशिष्ट समय, एक विशिष्ट चरम अवस्था और एक प्रगतिशाली युग, एक उत्तरोत्तर युग निकट आ रहा है, जैसे किसी चीज का विस्फोट होने जा रहा है, जैसे मानो मनुष्य के विकास के क्रम में मानव-जाति एक विशिष्ट बिंदु पर पहुंचने वाली है। लेकिन मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि इस युग के लिए यह पुनः अहंकार की ही एक यात्रा है। प्रत्येक युग इसी ढंग से सोचता है कि हमारे साथ कुछ विशिष्ट घटने वाला है, एक चरम अवस्था प्राप्त होने वाली है और पृथ्वी पर कुछ विशेष और महत्त्वपूर्ण होने वाला है। हमेशा से ऐसा ही होता आ रहा है।
ऐसा कहा जाता है कि जब आदम और ईव, ईडन-उद्यान के बाहर निकाले गए तो उद्यान के मुख्य द्वार से बाहर जाते समय आदम ने ईव से कहा:"हम लोग एक महानतम रूपांतरण से होकर गुज़र रहे हैं, जो इतिहास में हमेशा जाना जाएगा।" दुनिया का पहला मनुष्य, पहला आदमी यह सोच रहा है और कह रहा है:एक महानतम रूपांतरण...
प्रत्येक युग यही सोचता है कि हम अपनी चरम अवस्था की ओर, सर्वोच्च बिंदु की तरफ और अंतिम स्थिति पर पहुंचने की प्रक्रिया में हैं, जहां सब कुछ खण्डित हो जाएगा और एक नूतन अस्तित्व का जन्म होगा। लेकिन ये उम्मीदें मात्र हैं, अहंकार की यात्राएं हैं जो बहुत अधिक अर्थपूर्ण नहीं हैं। तुम यहां कुछ और वर्षों तक जीवित रहोगे, तब तुम्हारे बाद दूसरे लोग यहां आएंगे और वे भी इसी तरह सोचेंगे। बिल्कुल, वह चरम अवस्था आ पंहुची है, परंतु युग अथवा समय के संदर्भ में नहीं, बल्कि वैयक्तिक संदर्भ में। चरम सीमा तक पहुंचा जाता है, लेकिन हमेशा एक चेतना ही उस उत्कर्ष तक पहुंचती है और सामूहिक अचेतन के साथ ऐसा संभव नहीं हो पाता है। तुम और केवल तुम एक धार्मिक व्यक्ति हो सकते हो। इसलिए आज का यह समय, आज का यह युग बहुत अच्छा है, समय तो सदैव ही अच्छा रहा है।
दूसरों के बारे में बहुत अधिक मत सोचो, क्योंकि यह स्वयं से पलायन की
एक तरकीब भी हो सकती है। युग और मनुष्यता के बारे में भी मत सोचोक्योंकि मन बहुत चालाक और बेईमान है। मनुष्य का मन चालाकियों में बहुत माहिर है, वह अत्यंत कुशल है।
मैं अपने एक पुराने मित्र का पत्र पढ़ रहा था और वह लिखता है कि वह अपने सभी प्रेम-संबंधों से अत्याधिक निराश हो गया है। जब कभी भी उसने किसी के साथ प्रेम किया है तो उसने दुख ही पाया है और इतनी यातना पाई कि उसने किसी अन्य मनुष्य से प्रेम करना ही बंद कर दिया है और अब उसने संपूर्ण मनुष्यता को प्रेम करना प्रारंभ कर दिया है। मनुष्यता से प्रेम करना आसान है और जो लोग किसी व्यक्ति से प्रेम नहीं कर पाते, वे हमेशा ही पूरी मनुष्यता से प्रेम करेंगे, क्योंकि इस बारे में कोई समस्या ही नहीं है। एक व्यक्ति से प्रेम करना बहुत कठिन है, वह कभी कभी लगभग नरक जैसा हो जाता है। हालांकि यदि वह नरक बन सकता है तो निश्चित ही वहां स्वर्ग बनने की भी संभावना है, वह स्वर्ग भी बन सकता है।
परंतु हम इस संभावना को टालते चले जाते हैं। लोग ज्यादातर दूसरों के बारे में सोचते रहते हैं, वे दूसरों का विश्लेषण करते रहते हैं, वे दूसरों के प्रति एक आलोचना पूर्ण दृष्टि रखते हैं ताकि कहीं बहुत गहरे में वे खुद की बुराईयों को टाल सकें, खुद की गलतियों से बच सकें। बस इसी भय से, स्वयं का सामना न कर पाने के भय से ही वे दूसरों के बारे में सोचना शुरू कर देते हैं। अपने ही जीवन की, अपने ही मन की मौलिक समस्याओं का हल न ढूंढ पाने के कारण, उससे बचने के लिए ही लोग युग, समय, ग्रह-नक्षत्र, मानव-चेतना और उसके भविष्य आदि के बारे में सोचना शुरू कर देते हैं। वे यह कभी भी नहीं सोचते कि उनकी स्वयं की चेतना के साथ क्या हो रहा है या क्या होगा?
तुम्हारा मुख्य लक्ष्य तो तुम्हारी अपनी चेतना ही होना चाहिए।
और प्रत्येक समय अच्छा होता है... चेतना के विकास के लिए सभी युग और सभी समय ठीक हैं, बेहतर हैं और अच्छे हैं।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
तीसरा प्रवचन

प्रसन्नचित्त रहो

पहला प्रश्नः
ओशो! आपने हमें एक बार एक सौ वर्ष से भी अधिक आयु वाले एक वृद्ध व्यक्ति के बारे में एक कहानी सुनाते हुए यह बताया था कि एक दिन उसकी वर्षगांठ पर उससे यह पूछा गया था कि वह हमेशा इतना अधिक प्रसन्न क्यों रहता है? उसने उत्तर दिया-"प्रत्येक सुबह जब मैं जागता हूं तो मेरे पास यह चुनाव होता है कि मैं प्रसन्न रहूं अथवा अप्रसन्न, और मैं हमेशा प्रसन्न बने रहने का चुनाव करता हूं।"
ऐसा क्यों है कि हम प्रायः अप्रसन्न बने रहने का ही चुनाव करते हैं? ऐसा क्यों है कि हम प्रायः चुनाव के प्रति जागरूकता का अनुभव नहीं करते?

यह मनुष्य की सबसे अधिक जटिलतम समस्याओं में से एक है। इस पर बहुत गहनता से विचार करना होगा और यह सैद्धांतिक नहीं है, यह तुमसे संबंधित है। प्रत्येक व्यक्ति ऐसा ही आचरण कर रहा है, वह हमेशा गलत का ही चुनाव कर रहा है और हमेशा उदासी, निराशा और दुखी बने रहने का ही चुनाव कर रहा है। इसके पीछे निश्चित ही कोई गहरा कारण होगा और सच में इसके पीछे कई कारण हैं। पहला कारण यह है कि जिस तरह से मनुष्यों का पालन-पोषण किया जाता है, जिस तरह से उनकी परवरिश की जाती है, वह लालन-पालन एक मुख्य भूमिका अदा करता है। यदि तुम अप्रसन्न अथवा दुखी हो तो तुम बहुत कुछ प्राप्त करते हो और यदि तुम प्रसन्न रहते हो तो तुम अक्सर बहुत कुछ खो देते हो।
बचपन से ही, प्रारंभ से ही एक सजग बच्चा इस अंतर का अनुभव करना शुरू कर देता है कि जब कभी वह दुखी होता है तो उसे प्रत्येक व्यक्ति की सहानुभूति मिलती है और वह लाड़-प्यार प्राप्त करता है। प्रत्येक व्यक्ति उसके साथ प्रेमपूर्ण होने का प्रयास करता है। इतना ही नहीं, बल्कि इससे भी कहीं अधिक आश्चर्यजनक व्यवहार वह अनुभव करता है। जब वह दुखी होता है तोप्रत्येक व्यक्ति उसकी ओर आकर्षित होता है, और वह आकर्षण का एक केंद्र बन जाता है। यह आकर्षण उसके अहंकार के लिए भोजन का काम करता है। यह आकर्षण एक मादक उत्प्रेरक बन जाता है। यह तुम्हें ऊर्जा देता है और तुम अनुभव करते हो कि तुम कुछ विशिष्ट हो। इसलिए दूसरों का ध्यान खींचने कीतीव्र कामना उठती है, इस आकर्षण की आत्यंतिक चाह उठती है।
यदि तुम्हारे आसपास का प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारी ही ओर देख रहा है
तो तुम महत्त्वपूर्ण बन जाते हो। यदि तुम्हारी ओर कोई भी नहीं देखता है तो तुम अनुभव करते हो कि जैसे मानो तुम वहां उपस्थित ही नहीं हो, जैसे तुम्हारा कोई वजूद ही नहीं है, जैसे तुम कोई जड़ पदार्थ हो। लोगों का तुम्हारी ओर देखना, लोगों का तुम्हारी ओर ध्यान देना और लोगों द्वारा तुम्हारा ख्याल रखा जाना... यह सब तुम्हारे अहंकार को उर्जावान करता है। इस प्रकार के संबंधों में ही अहंकार का अस्तित्व होता है। जितने अधिक लोग तुम्हारी ओर ध्यान देते हैं, तुम उतना ही अधिक अपने अहंकार को पोषित करते हो। यदि तुम्हारी ओर कोई भी ध्यान नहीं देता है तो तुम्हारा अहंकार मिटने लगता है।
यदि तुम्हारे आसपास के सब लोग तुम्हें बिल्कुल ही भूल जाएं, तो तुम्हारा अहंकार कैसे बच सकता है? उस एकाकीपन में तुम कैसे यह अनुभव कर सकते हो कि तुम कुछ खास हो? इसलिए समाज में संगठनों और क्लबों की आवश्यकता होती है। पूरे विश्व में ऐसे लाखों संगठन और क्लब मौजूद हैं:रोटरी क्लब, लायंस क्लब, मेसोनिक लॉज इत्यादि। इन संगठनों और क्लबों का कुल कार्य केवल लोगों पर ध्यान देने का है, इनका लक्ष्य उन लोगों को आकर्षण का केंद्र बनाना है जो किन्हीं कारणों से समाज में अलग नहीं दिख पाए हैं और किसी भी उपाय से विशिष्ट तथा खास नहीं बन पाए हैं।
एक देश का राष्ट्रपति बनना बहुत कठिन है। एक कॉरपोरेशन का मेयर बनना बहुत कठिन है। परंतु लायंस क्लब का सभापति बनना सरल है और इससे एक विशिष्ट

समूह तुम्हारी ओर ध्यान देने लगता है। बिना कुछ विशेष बलिदान दिए, बिना कोई विशेष कार्य किए, तुम खास हो जाते हो, अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हो। लायंस क्लब, रोटरी क्लब कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं कर रहे हैं, लेकिन फिर भी वे अनुभव करते हैं कि वे महत्त्वपूर्ण हैं। हर वर्ष नए चुनाव होते हैं, सभापति बदलते चले जाते हैं, इस तरह से सभी सदस्य परस्पर एक दूसरे का ध्यान आकर्षित करते हैं। यह उनका आपसी समझौता है और इससे प्रत्येक व्यक्ति कुछ खास होने का अनुभव करता है।
अतः बच्चा बहुत प्रारंभ से ही यह राजनीति सीख जाता है। यह राजनीति उसे सिखाती है किदुखी दिखाई दो और तब तुम सहानुभूति पाओगे, दुखी होने पर प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान तुम्हारी ओर ही होगा। बीमार दिखाई दो और तुम सबके लिए महत्त्वपूर्ण बन जाओगे। एक बीमार बच्चा घर में तानाशाह जैसा व्यवहार करने लगता है, वह पूरे परिवार को अपनी बात मानने के लिए बाध्य कर देता है। वह जो भी इच्छा प्रकट करता है वह घर में नियम की तरह लागू होती है। इसके विपरीत जब वह प्रसन्न होता है तो कोई उसकी बात भी नहीं सुनता है। जब वह स्वस्थ है तो उसकी कोई फिक्र ही नहीं करता है। जब वह पूर्ण रूप से ठीक है तब किसी भी व्यक्ति का उसकी ओर ध्यान आकर्षित ही नहीं होता। इसीलिए बचपन से, बहुत प्रारंभ से ही, मनुष्य ने दुख, उदासी, निराशा और जीवन के अंधकारमय पक्ष का चयन करना प्रारंभ कर दिया।
दूसरी बात यह भी है कि जब तुम प्रसन्न होते हो, जब तुम सुखी होते हो और
जब तुम आंतरिक उल्लास और परम आनंद का अनुभव करते हो तब प्रत्येक व्यक्ति को तुमसे ईर्ष्या होने लगती है। ईर्ष्या होने का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारा शत्रु, तुम्हारा विरोधी होने लगता है, तब कोई भी व्यक्ति तुम्हारा मित्र नहीं रहता। इसीलिए तुमने उदास रहना सीख लिया, तुमने सीख लिया कि बहुत अधिक आनंदित नहीं रहना है ताकि प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे प्रति द्वेषपूर्ण न हो जाए। तुमने अपने आनंद कोप्रदर्शित नहीं किया, तुमने अपनी हंसी कोफैलने नहीं दिया।
जब भी तुम हंसते हो तो बहुत नाप-तौल कर, बहुत हिसाब लगाकर, लोगों की आंखो से बचकर हंसते हो। तुम्हारी हंसी भीतर से नहीं आती, तुम्हारी हंसी नाभि से नहीं उठती, तुम ठहाका लगाकर नहीं हंस पाते। तुम्हारी हंसी तुम्हारे अस्तित्व की वास्तविक गहराई से नहीं आती है। जब लोग हंसते हैं तो पहले वे आस-पास देखते हैं, दूसरों का व्यक्तित्व उनपर प्रभावी हो जाता है, वे बहुत सोच विचार कर निर्णय लेने के बाद हंसते हैं। इस हंसी की भी एक विशिष्ट सीमा है; जिस सीमा तक दूसरे लोग सहन कर लें, तुम उतना ही हंसते हो। तुम उतना ही हंसते हो जिससे कि कोई गड़बड़ न हो जाए। तुम उस सीमा तक ही हंसते हो जहां तक कोई भ्रमित न हो, व्याकुल न हो, ईर्ष्या से न भर जाए।
हमारी सभी मुस्कानें लगभग राजनीतिक होती हैं। उन्मुक्त हास्य, सच्ची हंसी कहीं विलुप्त हो गई है। परम आनंद आज के मनुष्य के लिए अनजाना रह गया है। आनंद के शिखर तक पहुंचना लगभग असंभव हो गया है, क्योंकि उसकी अनुमति नहीं है। यदि तुम दुखी हो, अवसाद में हो तो कोई भी व्यक्ति यह नहीं सोचेगा कि तुम पागल हो। परंतु यदि तुम परम आनंदित होकर नृत्य कर रहे हो तोप्रत्येक व्यक्ति यही सोचेगा कि तुम पागल हो। आनंद को, नृत्य को, गीत को अस्वीकृत कर दिया गया। एक परम आनंदित व्यक्ति... और हम सोचते हैं कि उसके साथ कहीं कुछ गलत हो गया है।

यह किस तरह का समाज है? यदि कोई व्यक्तिदुखी है तो सब कुछ ठीक है, तब
वह दुखी व्यक्ति उस समाज के अनुरूप है, क्योंकि कहीं न कहीं थोड़ा या ज्यादा, यह पूरा समाज ही दुखी है। इसलिए दुख से संबंधित होने के कारण वह भी इसी समाज का एक सम्मानीय सदस्य है। यदि कोई व्यक्ति परम आनंदित हो जाता है तो हम सोचते हैं कि वह पागल हो गया है, सुध-बुध खो बैठा है। उसका आनंद हमारे दुख से मेल नहीं खाता, इसीलिए वह इस समाज के अनुरूप नहीं लगता है। हमें उसके आनंद से ईर्ष्या का अनुभव होता है और इसी कारण हम उसका तिरस्कार करते हैं। इसी ईर्ष्या भाव के कारण हम हर संभव प्रयास करते हैं कि कैसे उस आनंदित व्यक्ति को पुनः उसकी पुरानी स्थिति में, दुख की स्थिति में वापस लाया जाए? हम उस पुरानी दुखद स्थिति को सामान्य स्थिति या स्वस्थ स्थिति

मानते हैं। मनोविश्लेषक और मनोचिकित्सक व्यक्ति को तथाकथित सामान्य स्थिति अर्थातदुख की स्थिति में ले जाने में सहायता करते हैं।
पश्चिमी देशों में लोग धीरे-धीरे नशीली रासायनिक दवाओं के विरुद्ध होते जा रहे हैं। कानून, राज्य, सरकार, कानूनी विशेषज्ञ, उच्च न्यायालय, विधायक, धर्माचार्य और प्रत्येक व्यक्ति इसके विरोध में है। वे वास्तव में नशीली दवाओं के विरोधी नहीं हैं, वे दरअसल उस अवस्था के विरोध में हैं जो लोगों को उन दवाओं को लेने के बाद मिलती है। इन दवाओं से व्यक्ति एक उन्माद का अनुभव करता है। दरअसल समाज के यह लोग शराब या अन्य नशीली वस्तुओं के विरोधी नहीं हैं, लेकिन वह उस अवस्था के विरोधी हैं जिसमें व्यक्ति अपने ही भीतर विविध रंगों और ध्वनियों का एक अद्भुत संसार सृजित करने लगता है। इन दवाओं से शरीर के भीतर एक अद्भुत रासायनिक परिवर्तन होने लगता है। समाज ने सदा सदा से तुम्हें दुख में कैदरहने की आदत डाल दी है। समाज ने दुख की जो पुरानी परत सृजित की है, वह टूट सकती है, वह बाधाओं को पार कर सकती है और कुछ क्षणों के लिए परम आनंदित होकर तुम उस परत के बाहर आ सकते हो।
परंतु समाज, परमानंद में होने की अनुमति कभी नहीं दे सकता। आनंद मग्नता की स्थिति में होना एक असाधारण क्रांति है।
मैं फिर इसे दोहराता हूं-परमानंद में होना सबसे बड़ी क्रांति है। यदि लोग आनंदमग्न हो गए तो पूरा समाज बदलेगा, क्योंकि यह समाज दुख पर ही आधारित है। यदि लोग आनंद में डूब गए तो तुम उन्हें युद्धों में जाने के लिए विवश नहीं कर सकते, तुम उनका मार्गदर्शन करके उन्हें वियतनाम, मिस्र अथवा इजरायल नहीं भेज सकते। नहीं, उनमें से कोई भी, जो आनंदमग्न है, वह युद्ध के लिए राजी नहीं होगा। वह इस बात पर हंसेगा और कहेगा-"यह व्यर्थ की बात है, यह असंगत और अनर्गल है।"
यदि लोग आनंदित हैं, तब तुम उन्हें धन के पीछे पागल नहीं बना सकते। वे केवल धन एकत्रित करने के लिए ही अपना पूरा जीवन व्यर्थ नष्ट नहीं करेंगे। उन्हें यह पागलपन जैसा दिखाई देगा कि एक व्यक्ति अपने पूरे जीवन को केवल मृत धन के लिए नष्ट कर रहा है और धन संग्रह करने के पीछे भाग रहा है। निश्चित ही कोई धन एकत्र कर लेगा पर स्वयं एक मृतक जैसा हो जाएगा। यह पूर्ण रूप से पागलपन है लेकिन यह पागलपन तब तक नहीं दिखाई दे सकता, जब तक कि तुम परम आनंदित न हो।
यदि लोग आनंदमग्न हैं, तब इस समाज का पूरा ढांचा बदलना होगा। समाज का अस्तित्व दुख पर आधारित है। इस समाज के लिए दुख एक बहुत बड़ी पूंजी है, इसलिए जैसे ही हम बच्चों का पालन-पोषण करते हैं, वास्तव में प्रारंभ ही से हम दुख की ओर उनकी प्रवृत्ति कोझुकाने का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि वे हमेशा दुख का चुनाव करते हैं।
हर सुबह प्रत्येक व्यक्ति के पास चुनाव का एक अवसर होता है। हर सुबह उसे दुख या सुख में रहने का चुनाव करना होता है और वास्तव में न केवल प्रत्येक सुबह, बल्कि प्रत्येक क्षण यह चुनाव करना होता है कि दुखी रहा जाए अथवा प्रसन्न रहा जाए। परंतु तुम हमेशा दुखी बनने का चुनाव करते हो क्योंकि उसके लिए तुमने बहुत मेहनत की है, उसके लिए तुमने उदासी का वरण किया, उसके लिए तुमने बीमारी का वरण किया, उसमें तुम्हारी पूंजी लगी हुई है। तुम सदा दुखी बने रहने का ही चयन करते हो, क्योंकि यह एक आदत बन गई है, एक ढांचा बन गया है और हमेशा से ही तुमने वही किया है। तुम दुख का चुनाव करने में कुशल हो गए हो और यह चुनाव एक परंपरा बन गई है। जिस क्षण भी तुम्हारे मन को चुनाव करना होता है, वह तुरंत दुख की ओर ही प्रवाहित होता है।
ऐसा प्रतीत होता है कि दुख अधोगामी है अर्थात किसी ढलान जैसा सरल है
और परमानंद उर्ध्वगामी है अर्थात पहाड़ के शिखर पर चढ़ने जैसा कठिन है। इसी कारण परमानंद को अनुभव कर पाना बहुत कठिन लगता है, लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं। वास्तविकता बिल्कुल इसके विपरीत है, सच तो यह है कि परमानंद की यात्रा बिल्कुल पहाड़ की ढलान जैसी सरल है और दुखी होना पहाड़ की चोटी पर चढ़ने जैसा है। दुख कोप्राप्त करना एक बहुत कठिन कार्य है, लेकिन तुमने उसे किया है और असंभव काम कर दिखाया है। दुख इतना अधिक प्रकृति-विरोधी है, यह

मनुष्य के स्वभाव के विरूद्ध है, कोई भी व्यक्ति दुखी नहीं होना चाहता परंतु फिर भी प्रत्येक व्यक्ति दुखी है।

समाज ने एक बहुत बड़ा कार्य किया है। शिक्षा और संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पंहुचाने वाले माध्यमोंजैसे माता-पिता, शिक्षक, विद्यालय, परिवार और संचार प्रणाली आदि ने एक बहुत बड़ा कार्य किया है। इन सब ने ईश्वर की सबसे सुंदर कृति यानि मनुष्य को, आनंद के सृष्टा को एक दुखी प्राणी बना दिया है। प्रत्येक बच्चा परम आनंदित अवस्था में जन्म लेता है। प्रत्येक बच्चा जन्म के समय परमात्मा स्वरूप होता है परंतु जीवन के अंत में वह एक पागल की भांति मरता है।
जब तक तुम अपने बचपन को पुनः प्राप्त नहीं करते, जब तक तुम अपने बचपन
का पुनः निर्माण नहीं करते, तब तक तुम श्वेत बादल बनने में असमर्थ रहोगे, जिनके बारे में मैं बात कर रहा हूं। तुम्हारे लिए महत्त्वपूर्ण कार्य यही है और संपूर्ण साधना यही हैकि कैसे बचपन को पुनः प्राप्त किया जाए और कैसे पुनः उसे स्थापित किया जाए? यदि तुम फिर से एक छोटे बच्चे बन सको, वैसे ही निर्मल बन सको, तब कोई भी दुख नहीं है। मेरे कहने का यह अर्थ बिल्कुल भी नहीं है कि बच्चे के लिए कभी कोई दुख का क्षण होता ही नहीं, होता है पर वहां फिर भी दुख नहीं होता है। इसे समझने का प्रयास करो।
एक बच्चा कभी दुखी हो सकता है, वह किसी क्षण में अत्याधिक अप्रसन्न हो सकता है, लेकिन वह उस अप्रसन्नता में भी इतना अधिक पूर्ण होगा, समग्र होगा, वह उस अप्रसन्नता के साथ इतना अधिक एक होगा कि वहां कोई विभाजन ही शेष नहीं बचता। बच्चा अपनी अप्रसन्नता से पृथक नहीं होता है। बच्चा अपनी अप्रसन्नता को किसी विभाजन की तरह नहीं देख रहा है। यदि बच्चा अप्रसन्न या दुखी है, तब वह उस दुख से पूर्णतः संयुक्त है। जब तुम भी दुख के साथ एक हो जाते हो तो दुख, दुख नहीं रह जाता है। यदि तुम दुख के साथ समग्रता से लय हो जाते हो, एक हो जाते हो, तब उस दुख का भी अपना एक सौंदर्य होता है। इसलिए एक बच्चे की ओर देखो, बच्चा अभी कोरा है, वह प्रदूषित नहीं है,
वह निर्मल है। यदि वह क्रोधित है, तब उसकी पूरी ऊर्जा क्रोध ही बन जाती है, पीछे कुछ भी नहीं बचता है, कोई रूकावट नहीं होती है। बच्चा बस गतिशील होता है और समस्त उर्जा उसी दिशा में गतिशील होकर क्रोध ही बन जाती है; कोई भी व्यक्ति उसे बाहर से नियंत्रित नहीं करता है। उसके साथ जो भी घट रहा है वह मन की कोई चालाकी नहीं है। बच्चा क्रोधित नहीं है, वह क्रोध ही हो गया है और तब क्रोध की खिलावट और उसका सौंदर्य देखो। बच्चा क्रोध में कभी भी कुरूप दिखाई नहीं देता बल्कि उस क्रोध में वह और अधिक सुंदर दिखाई देता है। वह उस क्षण में अत्याधिक भावुक, जिंदादिल और जीवंत दिखाई देता हैजैसे कि कोई ज्वालामुखी विस्फोट के लिए एकदम तैयार हो। इतना छोटा सा बच्चा और इतनी अधिक उर्जा, एक परमाणविक अस्तित्व जो संपूर्ण ब्रह्माण्ड के साथ विस्फोटित हो रहा है। और इस समग्रता से किए गए क्रोध के बाद बच्चा बहुत अधिक शांत हो जाएगा। इस क्रोध के बाद वह एक गहन विश्राम में होगा, वह विश्रांत होगा। हमें लगता है कि इस तरह क्रोध में बने रहना बच्चे के लिए बहुत कष्टप्रद होगा, लेकिन बच्चा कष्ट में बिल्कुल नहीं है और उसने उस क्षण का भरपूर आनंद लिया है।
यदि तुम भी किसी वस्तु के साथ एक हो जाते हो, तब तुम आनंदपूर्ण होते हो। यदि तुम किसी वस्तु से, चाहे वह प्रसन्नता ही क्यों न हो, स्वयं को पृथक कर लेते हो, तो दुखी हो जाते हो।
इसलिए कुंजी यही है। सभी दुखों का आधार अहंकार है जो तुम्हें जीवन से
और जीवन द्वारा प्रदान किए गए समस्त उपहारों से पृथक करता है। जीवन तुम्हारे लिए जो कुछ भी लाता है, उसके साथ प्रवाहित होते हुए, सघनता और समग्रता से उसमें लय हो जाना सुखद है। ऐसे में तुम नहीं बचते हो, तुम मिट जाते हो, और तब सब कुछ आनंदपूर्ण हो जाता है।
चुनाव वहां है, लेकिन तुम चुनाव के प्रति सदा अचेत ही बने रहे हो। तुम निरंतर गलत का ही चुनाव करते रहे हो। वह एक ऐसी मृत आदत बन गई है कि तुम सामान्य रूप से यंत्रवत स्वतः ही उसका चुनाव करते हो। वहां अन्य कोईविकल्प बचता ही नहीं है।

सजग बनो। स्मरण रहे, जब भी तुम दुखी होने का चुनाव कर रहे हो तो यह तुम्हारा अपना चुनाव है। यह सजगता तुम्हें सावधान बने रहने में सहायता करेगी। यह सजगता तुम्हें सचेत करेगी कि यह मेरा चुनाव है और मैं ही इसके लिए जिम्मेदार हूं, जो कुछ मैं अपने साथ कर रहा हूं, यह मेरा ही चुनाव है। तब तुम तुरंत ही एक अंतर को महसूस करोगे, इस अंतर के साथ मन के गुण और लक्षणों को भी बदलना होगा और फिर तुम्हारे लिए प्रसन्नता की ओर गतिशील होना कहीं अधिक सहज व सरल होगा।
और एक बार जब तुम यह जान जाते हो कि यह तुम्हारा ही चुनाव है, तब यह एक खेल के समान बन जाता है। यदि तुम दुखी बने रहने को ही चुनते हो, दुख से ही प्रेम करते हो तो दुखी बने रहो, लेकिन याद रहे कि यह तुम्हारा ही चुनाव है और इसकी शिकायत मत करना। तुम्हारे दुख के लिए कोई अन्य व्यक्ति जिम्मेवार नहीं है। यह तुम्हारा नाटक है। यदि तुम्हें यही ढंग पसंद है और दुखद रास्ता ही तुम्हारा चुनाव है... यदि तुम सारा जीवन दुखोंमें ही गुज़ारना चाहते हो तो यह तुम्हारा अपना चुनाव है और तुम्हारा अपना खेल है। तुम स्वेच्छा से इसे खेल रहे हो, अतः इसे पूर्णता से खेलना। तब लोगों के पास मत जाना और उनसे यह मत पूछना कि कैसे दुख दूर किया जाए? यह मूर्खतापूर्ण होगा। तब गुरुओं के पास जाकर यह मत पूछना कि कैसे प्रसन्न रहा जाए? ये तथाकथित गुरु अस्तित्व में इसलिए ही हैं, क्योंकि तुम मूर्ख हो। तुम दुख का सृजन करते हो और फिर दूसरों के पास जाकर पूछते हो कि यह दुख कैसे समाप्त हो? तुम दुख का निरंतर सृजन करते चले जाओगे, क्योंकि तुम अपने इस कृत्य के प्रति सजग नहीं हो। अभी इसी क्षण से प्रयास करो, प्रसन्न और आनंदित बने रहने का प्रयास करो।
मैं तुम्हें जीवन के गहनतम नियमों के बारे में बताऊंगा। तुमने उनके बारे में कभी सोचा भी नहीं होगा। तुमने सुना होगा कि समस्त विज्ञान इस नियम पर निर्भर हैकि कारण और प्रभाव ही आधार है। तुम कारण सृजित करते हो और उसका परिणाम अनुसरण करने लगता है। जीवन, कारण और प्रभाव की ही एक कड़ी है। यदि तुम भूमि में बीज बोते हो तो वह अंकुरित होगा। यदि बीज रूपी कारण वहां है, तब वृक्ष उसका अनुसरण करेगा। यदि तुम आग में हाथ डालते हो तो निश्चित ही तुम्हारा हाथ जल जाएगा। कारण मौजूद है इसलिए उसका परिणाम भी पीछे पीछे आएगा। यदि तुम ज़हर खा लोगे तो तुम मर जाओगे। तुम कारण का आयोजन करते हो और तब परिणाम अनुसरण करता है। यह महत्त्वपूर्ण और आधारभूत वैज्ञानिक नियम है कि जीवन की समस्त प्रक्रियाओं की अंतरतम कड़ी, कारण और प्रभाव ही है।
धर्म एक दूसरे नियम के बारे में भी जानता है, जो इसकी अपेक्षा कहीं अधिक गहन है। परंतु इस दूसरे गहन नियम के साथ यदि तुम उसके प्रायोगिक पक्ष को नहीं जानते हो तो वह तुम्हें व्यर्थ प्रतीत होगा। धर्म कहता है:प्रभाव उत्पन्न करो और कारण उसका अनुसरण करता है। विज्ञान के अनुसार, यह बेतुका, असंगत और हास्यास्पद लगता है। क्योंकि विज्ञान कहता है कि कारण है तो परिणाम अनुसरण करता है। धर्म कहता है कि इसका विपरीत वक्तव्य भी सत्य है कि तुम प्रभाव सृजित करो और देखो कि कारण उसका अनुसरण करता है।
एक परिस्थिति है जिसमें तुम प्रसन्नता का अनुभव करते हो। एक मित्र आ गया है या प्रेमी से भेंट हो गई है, यह एक स्थिति है, यह एक कारण है जिससे तुम प्रसन्नता का अनुभव करते हो, यह प्रसन्नता परिणाम है। धर्म कहता है :प्रसन्न बने रहो और प्रेमी आता है। प्रभाव सृजित करो और कारण उसका अनुसरण करता है। यह मेरा अपना भी अनुभव है कि पहले वैज्ञानिक नियम की अपेक्षा दूसरा धर्म संबंधी नियम कहीं अधिक आधारभूत है। मैं इसे प्रयोग करता रहा हूं और परिणाम आता रहा है।
केवलप्रसन्न बने रहो और प्रेमी आता है। केवल प्रसन्न बने रहो और तुम्हारे आस-पास मित्र एकत्रित हो जाते हैं। सदा प्रसन्न बने रहो और समष्टि अनुसरण करती है।
जीसस ने भी यही बात दूसरे शब्दों में कही है, वह कहते हैं:तुम उसे खोजो, पहले परमात्मा का राज्य खोजो तब सब कुछ पीछे चला आएगा। लेकिन परमात्मा का राज्य तो अंत है, प्रभाव है या परिणाम है। पहले उसे खोजो, यह

अंत है, अंत अर्थात परिणाम, यह प्रभाव हैऔर कारण उसका अनुसरण करेगा और ऐसा होना ही चाहिए।
केवल यह नहीं होता कि तुम भूमि में एक बीज बोते हो और वृक्ष अनुसरण करता है। बल्कि यह भी उतना ही सत्य है कि एक वृक्ष होता है तो उसके द्वारा लाखों बीज उत्पन्न होते हैं। यदि कारण का अनुसरण परिणाम है तो पुनः परिणाम का अनुसरण कारण भी होता है। यह एकशृंखला है, और यह एक वर्तुल बन जाता है, कहीं से भी आरंभ करो, कारण सृजित करो अथवा प्रभाव सृजित करो। मैं तुमसे कहता हूं कि प्रभाव अथवा परिणाम को सृजित करना ज्यादा आसान है, क्योंकि परिणाम पूर्णतः तुम पर निर्भर करता है और हो सकता है कि कारण तुम पर इतना अधिक निर्भर न हो। यदि मैं केवल तभी प्रसन्न हो सकता हूं जब वहां एक विशिष्ट मित्र हो, तब मेरी प्रसन्नता उस विशिष्ट मित्र की उपस्थिति या अनुपस्थिति पर निर्भर करती है। यदि मैं कहता हूं कि जब तक मुझे बहुत अधिक धन नहीं मिल जाता तब तक मैं प्रसन्न नहीं हो सकता। धन कमाना, यह पूरे संसार पर, उसकी आर्थिक स्थिति और उस समय की प्रत्येक घटना पर निर्भर करता है। यदि ऐसा संभव नहीं हो पाता है तो मैं प्रसन्न नहीं हो सकता।
कारण मेरे बस के बाहर है परंतु प्रभाव मेरे दायरे में है। कारण, बाहर
की परिस्थितियों पर निर्भर है, वह बाहर है। प्रभाव या परिणाम मेरे बस में है। यदि मैं प्रभाव सृजित कर सकता हूं तो कारण अवश्य उसका अनुसरण करेगा। इसलिए प्रसन्नता का चुनाव करो, इसका अर्थ है कि तुम परिणाम को चुन रहे हो और तब देखो कि क्या होता है? परमानंद को चुनो और देखो कि क्या होता है? आनंदमग्न बने रहने का चुनाव करो और देखो कि क्या होता है? तुम्हारा पूरा जीवन तुरंत बदल जाएगा और तुम अपने चारों ओर चमत्कार घटते हुए देखोगेक्योंकि अब तुमने प्रभाव सृजित कर लिया है और समस्त कारणों को उसका अनुसरण करना होगा।
यह जादू जैसा दिखाई देगा और तुम इसे जादू का नियम भी कह सकते हो। पहला विज्ञान का नियम है और दूसरा जादू का नियम है। धर्म एक जादू है और तुम एक जादूगर हो सकते हो। यही मैं तुम्हें सिखाता हूं कि तुम धर्म के जादू का रहस्य जानने वाले एक जादूगर बनो।
इसे प्रयोग करो। तुम अपने संपूर्ण जीवन में, न केवल इस जीवन में बल्कि अन्य जन्मों में भी तुम बहुत कुछ प्रयोग करते आए हो। अब मेरी बात सुनो। यह जादुई सूत्रअर्थात जो मंत्र मैं तुम्हें दे रहा हूं, इसका प्रयोग करो। प्रभाव सृजित करो और देखो क्या होता है? कारण तुरंत तुम्हारे चारों ओर एकत्रित हो जायेंगे। वे अनुसरण करते हैं। कारणों के लिए प्रतीक्षा मत करो, तुमने पर्याप्त लंबी अवधि तक प्रतीक्षा कर ली है। अब प्रसन्नता का चुनाव करो और तुम प्रसन्न हो जाओगे।
समस्या क्या है? तुम चुनाव क्यों नहीं कर सकते? तुम इस नियम पर कार्य क्यों नहीं कर पाते हो? क्योंकि तुम्हारा पुराना मन, जो वैज्ञानिक विचारधारा द्वारा प्रशिक्षित किया गया है, वह तुमसे कहता है कि यदि तुम प्रसन्न नहीं हो और तब भी तुम प्रसन्न होने का प्रयास करते हो तो वह प्रसन्नता कृत्रिम होगी। यदि तुम प्रसन्न नहीं हो और फिर भी प्रसन्न रहने का प्रयास करते हो तो वह केवल एक अभिनय होगा और वह वास्तविकता नहीं होगी। वैज्ञानिक विचारधारा यही कहती है कि वह प्रसन्नता असली नहीं होगी और तुम केवल एक अभिनय करोगे। लेकिन तुम यह नहीं जानते हो कि जीवन उर्जा के काम करने का अपना एक विशिष्ट ढंग है। यदि तुम समग्रता से अभिनय कर सकते हो तो वह वास्तविक बन जाएगा। केवल एक ही बात का ध्यान रखना है कि अभिनेता वहां उपस्थित नहीं होना चाहिए। पूरी तरह से उस अभिनय में उतर जाओ, तब वहां कोई अंतर नहीं रहता। यदि तुम आधे-अधूरे हृदय से अभिनय कर रहे हो, तब वह नकली ही बना रहेगा।
यदि मैं तुमसे कहता हूं कि नाचो, गाओ और आनंदपूर्ण बनो और तुम आधे- अधूरे हृदय से प्रयास करते हो, केवल यह देखने के लिए कि क्या घटित होगा? लेकिन तुम स्वयं विद्यमान रहते हो और लगातार सोचते हो कि यह सब नकली है। मैं प्रयास कर रहा हूं, लेकिन वह बात नहीं आ रही है और यह सब स्वभाविक नहीं है, तब वह अभिनय ही बना रहेगा औरयह समय नष्ट करने जैसा होगा।

यदि तुम प्रयास करते हो तो पूरे हृदय से प्रयास करो। अपने को बचाओ मत,
जो भी कर रहे हो उसमें पूरे उतर जाओ, अभिनय ही बन जाओ, अभिनेता को अभिनय में घुल जाने दो और तब देखो कि क्या होता है? वह वास्तविकता बन जाएगी और तब तुम अनुभव करोगे कि वह स्वभाविक है। तुम जान जाओगे कि तुमने वह किया नहीं है, बल्कि वह हुआ है। लेकिन जब तक तुम उसमें समग्रता से नहीं डूबते तब तक ऐसा नहीं हो सकता। प्रभाव को अथवा परिणाम को सृजित करो, उसमें पूर्णता से डूब जाओ और तब परिणाम को देखो, उसका निरीक्षण करो।
मैं तुम्हें बिना राज्यों के ही एक राजा बना सकता हूं, तुम्हें केवल राजाओं के समान अभिनय करना होगा और इतनी अधिक समग्रता से यह अभिनय करना होगा कि तुम्हारे सामने एक असली राजा भी ऐसा प्रतीत हो कि जैसे मानो वह अभिनेता है। जब पूरी ऊर्जा तुम्हारे उस अभिनय में गतिशील हो जाएगी तो वह एक वास्तविकता बन जाएगी। ऊर्जा किसी भी पदार्थ को वास्तविक बना देती है। यदि तुम राज्यों के लिए या सत्ता के लिए प्रतीक्षा करते हो, तो ऐसा कभी भी संभव नहीं होगा।
यहां तक कि नेपोलियन और सिकंदर के लिए भी यह संभव नहीं हो पाया, जिनके पास बड़े साम्राज्य थे, वे कभी भी राजा नहीं बन पाए। वे लोग दुखी बने रहे, क्योंकि जीवन का दूसरा नियम, जो अधिक प्राथमिक और आधारभूत नियम है, वह उनके अनुभव में ही नहीं आया। सिकंदर एक बहुत बड़ा साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास कर रहा था और वह एक महान सम्राट बनना चाहता था। उसका पूरा जीवन साम्राज्य स्थापित करने में ही नष्ट हो गया और अंत में सम्राट बनने के लिए उसके पास समय ही नहीं बचा। पूर्ण रूप से साम्राज्य स्थापित होने के पहले ही वह मर गया।

यह अनेक लोगों के साथ हुआ है। साम्राज्य कभी भी पूर्ण रूप से स्थापित नहीं हो सकते हैं। यह संसार असीम है, अनंत है, तुम्हारे राज्य इत्यादि केवल आंशिक हैं, उनकी आंशिक सत्ता उनकी बाध्यता है। और एक बाध्य, आंशिक एवं खंडित साम्राज्य के साथ तुम कैसे एक पूर्ण सम्राट बन सकते हो? तुम्हारे साम्राज्य कितने ही विस्तृत क्यों न हो पर समष्टि की तुलना में उनका सीमित होना सुनिश्चित है और एक सीमित साम्राज्य के साथ तुम कैसे सम्राट बन सकते हो? यह असंभव है, लेकिन तुम पूर्ण सम्राट बन सकते हो, केवल तुम प्रभाव को सृजित करो।
इस सदी के एक रहस्यदर्शी, स्वामी राम अमेरिका गए। वह स्वयं को बादशाह राम अर्थात सम्राट राम कहा करते थे, पर वह एक फकीर थे। किसी व्यक्ति ने उनसे पूछा:"आप तो केवल एक भिखारी हैं, लेकिन आप स्वयं को एक सम्राट कहे चले जाते हैं।" इस पर राम ने कहा:"मेरी वस्तुओं की ओर मत देखो, बस मेरी ओर देखो।" वह ठीक कह रहे थे, क्योंकि यदि तुम भौतिक वस्तुओं की ओर देखते हो तब प्रत्येक व्यक्ति भिखारी है, यहां तक कि एक सम्राट भी, हां वह थोड़ा बड़ा भिखारी हो सकता है। जब स्वामी राम ने कहा:"मेरी ओर देखो" तब उस क्षण में राम सम्राट थे। तुम यदि देख सकते तो सम्राट ही वहां था।
प्रभाव को सृजित करो, इसी वास्तविक क्षण से एक सम्राट बनो, एक जादूगर बनो, क्योंकि इसके लिए प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि राज्य पहले बनाना हो तो फिर किसी कोप्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। यदि कारण को पहले सृजित करना होता है, तब उसके लिए प्रतीक्षा करनी होती है और शायद उसे स्थगित भी करना पड़े। प्रभाव अथवा परिणाम को सृजित करने से, प्रतीक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। तुम उसी क्षण सम्राट बन सकते हो। जब मैं कहता हूं-बनो, इसी क्षण सम्राट बनो और देखो, तब साम्राज्य अनुसरण करता है। मैंने इसे अपने अनुभव के द्वारा जाना है। मैं तुमसे किसी सिद्धांत अथवा उपदेश की बात नहीं कर रहा हूं। प्रसन्न बनो और उस प्रसन्नता के शिखर में तुम पाओगे कि पूरा संसार तुम्हारे साथ प्रसन्न है। इस संदर्भ में एक पुरानी कहावत है कि जब तुम रोते हो तो अकेले ही रोते
हो और जब तुम हंसते हो तो पूरा संसार तुम्हारे साथ हंसता है। यहां तक कि वृक्ष, चट्टानें, रेत और बादल भी तुम्हारे साथ नृत्य करने लगेंगे यदि तुम परिणाम का सृजन कर सको और परम आनंदित हो सको। तब पूरा अस्तित्व एक महारास, एक उत्सव और एक समारोह बन जाता है, लेकिन यह तुम पर निर्भर करता है यदि तुम

एक प्रभाव सृजित कर सको। मैं तुमसे कहता हूं कि तुम उसे सृजित कर सकते हो।
संभवतः यह सबसे सुगम और सरल है, यद्यपि देखने में यह बहुत कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि तुमने अभी तक इसका प्रयोग नहीं किया है।
इसेप्रयोग करके देखो। एक प्रयास करो।

दूसरा प्रश्नः
प्रिय ओशो! आप जो कहते हैं, हम उसे सुनते हैं, लेकिन हम पश्चिमी देशों
के लोग सूचनाओं को अपने मस्तिष्क तक, बुद्धि तक सीमित रखते हैं। हम इस बुद्धि के तल से, अपने मन से बाहर कैसे जा सकते हैं? इसके लिए हम किन विधियों का प्रयोग करें और क्या संकल्प की शक्ति हमारी सहायता कर सकती है?

नहीं, संकल्प-शक्ति तुम्हारी सहायता नहीं करेगी। संकल्प की शक्ति वास्तव में शक्ति है ही नहीं, क्योंकि संकल्प, अहंकार पर आश्रित होता है। यह एक बहुत छोटा सा तथ्य है, जो बहुत अधिक शक्ति सृजित नहीं कर सकता। जब तुम संकल्पविहीन होते हो तब तुम अधिक शक्तिशाली होते हो, क्योंकि तब तुम अखंड अस्तित्व के साथ एक होते हो।
भीतर अपनी गहराई में, संकल्प-शक्ति एक तरह की शक्तिहीनता है। इस सच्चाई को छिपाने के लिए कि हम शक्तिहीन हैं, हम संकल्प को सृजित करते हैं। स्वयं को और दूसरों को धोखा देने के लिए हम हमेशा विपरीत को सृजित करते हैं। वे लोग जो यह अनुभव करते हैं कि वे मूर्ख हैं, वे अपनी बुद्धिमता कोप्रदर्शित करने का प्रयास करते हैं। वे निरंतर इस बात को जानते हैं कि वे मूर्ख हैं, इसलिए वे बुद्धिमान दिखने के लिए हर संभव प्रयास करते हैं। जो लोग कुरूप हैं अथवा जो अनुभव करते हैं कि वे कुरूप हैं, ऐसे लोग हमेशा स्वयं को सुंदर दिखाने का प्रयास करते हैं, चाहे यह सुंदरता बाहर से थोपी गई हो, वह रंग-रोगन से पुता नकली सौंदर्य हो अथवा केवल एक मुखौटा हो। जो लोग निर्बल होते हैं, वे हमेशा शक्तिशाली दिखने का प्रयास करते हैं। विपरीत सृजित किया जाता है। यही एक ढंग है, एकमात्र उपाय है, अपने भीतर की वास्तविकता को छिपाने का। हिटलर एक दुर्बल प्राणी है, इसी कारण वह अपने चारों ओर, केवल अपनी वास्तविकता को छिपाने के लिए इतनी अधिक संकल्प-शक्ति सृजित करता है। एक व्यक्ति, जो वास्तव में शक्तिशाली होता है, वह इसके प्रति सचेत नहीं होगा कि वह शक्तिशाली है। शक्तिप्रवाहित होती रहेगी और शक्ति सदा वहां होगी, लेकिन शक्तिशाली व्यक्ति बिल्कुल ही सहज होगा, वह उसके प्रति सचेत नहीं होगा।
लाओत्सु कहता है:"एक वास्तविक रूप से सदाचारी व्यक्ति यह कभी भी नहीं जान पाता है कि वह निर्दोष और सदाचारी है। एक व्यक्ति, जो वास्तव में नैतिक है, वह कभी भी इसके प्रति सचेत नहीं होता कि वह नैतिक है। मगर एक व्यक्ति जो सचेत है कि वह नैतिक है, संत है, साधु है, निश्चित ही ऐसे व्यक्ति के भीतर गहराई में अनैतिकता छिपी हुई है, और वह भलिभांति इसे जानता है तथा इस सच्चाईकोछिपाने के लिए ही विपरीत को सृजित करता है। संकल्प-शक्ति वास्तव में एक शक्ति न होकर एक दुर्बलता है। वास्तविक रूप से जो व्यक्तिशक्तिशाली होगा उसके पास कोई भी संकल्प अथवा आकांक्षा नहीं होती। संपूर्ण और अखंड अस्तित्व ही उसका संकल्प होता है। वह एक श्वेत बादल के समान, अस्तित्व के साथ एक होकर, लयबद्ध होकर प्रवाहित होता है। तुम्हारा संकल्प हमेशा संघर्ष निर्मित करेगा। वह तुम्हें सिकोड़ देगा, तुम्हें संकुचित कर देगा, तुम्हें एक छोटा सा द्वीप बना देगा, तुम एक छोटे से टापू बन जाओगे और तब संघर्ष प्रारंभ होता है।
एक संकल्पविहीन व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अज्ञानी और निर्दोष होगा
और स्मरण रहे, तुम अपनी बुद्धि से बाहर नहीं आ सकते हो। तुम केवल उसे काट सकते होऔर वह ज्यादा आसान है।
बुद्धि और मन के बाहर निकलना लगभग असंभव है, क्योंकि उससे बाहर निकलने का यह विचार भी मन का ही एक खंड है। मन एक अव्यवस्था है, वह एक उपद्रव है। तुम सोचते हो और तुम इस सोचने के विरुद्ध भी सोचते हो। अतः सोचने के विरुद्ध सोचना भी एक तरह की सोच है। ऐसे तुम इस सोच के बाहर नहीं निकल रहे हो। तुम अपने विचारों का तिरस्कार कर सकते हो, तुम अपने विचारों

की निंदा कर सकते हो, लेकिन यह तिरस्कार और यह निंदा भी तो पुनः विचार की ही एक प्रक्रिया है। इससे प्राप्त कुछ भी नहीं हुआ और तुम एक दुष्चक्र में फंसते जा रहे हो। तुम इसी चक्र में घूमते रह सकते हो पर इससे बाहर नहीं जा पाओगे।
इसलिए, करना क्या है? मन के बाहर कैसे आना है? केवल एक ही तरह से संभव है, अपने अंदर कोई संघर्ष निर्मित मत करो और न उससे बाहर आने का कोईप्रयास करो, क्योंकि प्रत्येक प्रयास स्वयं ही आत्मघात जैसा होगा। तब क्या किया जा सकता है? केवल निरीक्षण करो, साक्षी बने रहो। उसमें होते हुए भी कुछ करो मत, केवल निरीक्षण करते रहो। उससे बाहर आने का भी प्रयास मत करो, केवल अंदर बने रहो और निरीक्षण करो।
यदि तुम इतना निरीक्षण कर सको, यदि तुम ध्यान दे सको तो उन क्षणों में
मन नहीं होगा। अचानक तुम मन के पार चले जाओगे। मन के बाहर ही नहीं, बल्कि मन के पार चले जाओगे। अचानक तुम स्वयं के भी पार हो पाओगे।
इस बारे में एक झेन बोध-कथा है जोबहुत असंगत सी लगती है, जैसी कि सभी झेन-कथाएं होती हैं। लेकिन उन्हें असंगत होना ही पड़ता है, क्योंकि जीवन ही ऐसा है, वे जीवन को ज्यों का त्यों प्रदर्शित करती हैं।
एक झेन सदगुरु अपने शिष्यों से पूछा करते थे-"मैंने एक बतख को बड़ी बोतल में रख दिया था। अब वहबतख बड़ी हो गयी है और बोतल की गर्दन बहुत छोटी और तंग है जिस कारण बतख उससे बाहर नहीं आ सकती। परंतु बोतल बहुत मूल्यवान है और मैं उसे तोड़ना नहीं चाहता, अब यह संकट की स्थिति है। यदि बतख को बाहर नहीं निकाला जाता तो वह मर जाएगी। मैं बोतल को तोड़ सकता हूं और बतख बाहर निकल आएगी, लेकिन मैं बोतल को तोड़ना नहीं चाहता, क्योंकि बोतल बहुत अधिक कीमती है। मैं यह भी नहीं चाहता कि बतख मर जाए। इसलिए अब तुम क्या करोगे" यह बड़ी विकट समस्या है। बतख बोतल के सिरे तक आ गई है और बोतल की गर्दन बहुत पतली है। तुम बोतल का सिर तोड़ सकते हो, लेकिन वह बहुत बहुमूल्य है। या तुम यह कर सकते हो कि बतख को मरने के लिए छोड़ सकते हो, लेकिन उसकी भी अनुमति नहीं दी जा सकती, क्योंकि वह बतख तुम ही हो।
वह बूढ़ा झेन सदगुरु लगातार अपने शिष्यों से पूछ रहा था और उन्हें पीटते हुए कह रहा था-"कोई उपाय खोजो, क्योंकि अब समय नहीं बचा है।"
और शिष्यों को केवल एक बार ही उत्तर देने की अनुमति दी थी। एक शिष्य
ने कहा:"बतख बाहर निकल गई।"
इससे पूर्व भी कईप्रयास किए गए थे और वह उत्तर सुनकर शिष्य की पिटाई
कर देता था। वह उत्तर सुनकर कहता:"नहीं", यह भी नहीं। कोईकहता:"बोतल के साथ कुछ किया जा सकता है" लेकिन सदगुरु फिर कहता:"बोतल टूट जाएगी और इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती।" किसी शिष्य ने कहा:"यदि बोतल इतनी ही कीमती है तो बतख को मरने दीजिए।" केवल यह दो ही उपाय थे और कोई अन्य उपाय नहीं था और वह सदगुरु कोई संकेत, कोई इशारा अथवा कोई सूत्र भी नहीं देता था।
लेकिन इस शिष्य के सामने वह झुका और उसके चरणों को स्पर्श करते हुए कहा:"तुम ठीक कहते हो। बतख बाहर आ गई है। वह कभी भी अंदर थी ही नहीं।"
तुम हमेशा से ही बाहर हो। तुम कभी भी अंदर कैद नहीं थे।
यह अनुभूति कि तुम अंदर कैद हो, केवल एक झूठी धारणा है।
इसलिए कोई ऐसी समस्या है ही नहीं कि तुम्हें सिर से बाहर कैसे निकाला जाए। केवल निरीक्षण करो। जब तुम निरीक्षण करते हो तो क्या होता है? केवल आंखें बंद कर लो और अपने विचारों का निरीक्षण करो। क्या होता है? भीतर वहां विचार हैं, लेकिन तुम अंदर नहीं हो। निरीक्षण करने वाला हमेशा पार होता है। निरीक्षणकर्ता हमेशा पहाड़ी पर दूर खड़ा रहता है। प्रत्येक वस्तु चारों ओर घूमती है, सबकुछ चलता रहता है और निरीक्षणकर्ता सभी के पार होता है।
निरीक्षणकर्ता कभी भी अंदर नहीं हो सकता, वह कभी भी कैदी नहीं हो सकता, वह हमेशा बाहर है। निरीक्षण करने का अर्थ ही है, बाहर बने रहना। तुम इसे साक्षी कह सकते हो, तुम इसे जागरूकता कह सकते हो, होश कह सकते हो या कुछ और... लेकिन रहस्य यही है:निरीक्षण। अतः जब कभी तुम अनुभव करो कि मन में विचार बहुत अधिक हैं, केवल एक वृक्ष के नीचे बैठ जाओ और निरीक्षण करो और बाहर आने का प्रयास मत करो। बाहर कौन आएगा? जब अंदर कोई है ही नहीं तो बाहर

कौन आएगा? पूरा प्रयास ही व्यर्थ है, क्योंकि यदि तुम कभी अंदर रहे ही नहीं, तब तुम बाहर कैसे आ सकते हो? तुम निरंतर प्रयास करते ही चले जाते हो और उस प्रयास में उलझकर पागल हो सकते हो, लेकिन तुम कभी भी बाहर नहीं आ पाओगे।
एक बार यदि तुम यह जान जाते हो कि पूर्ण जागरूकता के क्षण में तुम अतिक्रमण कर जाते हो, पार हो जाते हो, तो तुम बाहर हो और उसी क्षण तुम विचारहीन हो जाओगे। सिर या मन का संबंध शरीर से है। सिर, शरीर का एक भाग है, वह शरीर से संबंध रखता है, शरीर में इसका महत्त्वपूर्ण कार्य है, अतः शरीर के संचालन तक वह सुंदर और ठीक हैं। बोतल बहुत बहुमूल्य है और यदि तुम उसका रहस्य और उपयोग जानते हो, तो उसका सुंदर प्रयोग किया जा सकता है।
जब मैं तुमसे बातचीत कर रहा हूं, तो मैं क्या कर रहा हूं? इस शरीर का,
इस बोतल का प्रयोग कर रहा हूं। जब बुद्ध उपदेश दे रहे हैं, तो वह क्या कर रहे हैं? बोतल का प्रयोग कर रहे हैं। यह बोतल वास्तव में बहुत बहुमूल्य है और सुरक्षित रखने योग्य है। लेकिन उसके अंदर जाना और अंदर जाकर उसमें जकड़े जाना और फिर उससे बाहर आने का प्रयास करना, यह उसे सुरक्षित रखने का ढंग नहीं है। इससे पूरा जीवन एक उपद्रव बन जाता है।
एक बार तुम जान लेते हो कि साक्षी होते ही तुम बाहर हो, तो तुम सिरविहीन हो जाते हो। तब तुम इस पृथ्वी पर बिना किसी सिर के घूमते हो। कितनी अधिक सुंदर घटना है कि एक व्यक्ति बिना सिर के घूम रहा है। मेरे कहने का ठीक यही अर्थ है, जब मैं कहता हूं कि एक श्वेत बादल बनो-सिरविहीन बनो। तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि तुम्हारे ऊपर कितनी अधिक शांति और मौन बरस सकता है, जब सिर या विचार या अहंकार नहीं होता है। डरना मत! तुम्हारा भौतिक सिर तो वहीं होगा, लेकिन उसकी उलझनें, उसका पागलपन वहां नहीं होगा। सिर या दिमाग या मन कोई समस्या नहीं है। वह सुंदर है, वह एक अद्भुत यंत्र है, वह अभी तक ईजाद किए गए कम्प्यूटरों में से सबसे उत्तम है, वह एक जटिल परंतु कुशल रचनातंत्र है। वह सुंदर है, उसका प्रयोग किया जा सकता है और उसका प्रयोग करते हुए तुम उसका आनंद ले सकते हो। मगर यह विचार तुमने कहां से प्राप्त किया कि तुम उसके अंदर हो? यह केवल एक गलत शिक्षण का, गलत समझ का परिणाम है।
हो सकता है शायद तुम्हें मालूम न हो कि पुराने जापान में और अभी भी जापान में यदि वृद्ध व्यक्तियों से पूछो-"आप कहां से सोच-विचार करते हैं" तब वे पेट की ओर संकेत करेंगे, क्योंकि जापान में यह सिखाया गया था कि सोचने का केंद्र पेट है। इसलिए जब पहली बार यूरोप के लोग जापान पहुंचे तो वे यह विश्वास ही नहीं कर सके कि जापान जैसा पूरा देश यही सोचता है कि विचार और बुद्धि का कार्य सिर से नहीं बल्कि पेट से होता है। यह एक पश्चिमी दृष्टिकोण है कि तुम्हारे विचार सिर से उठते हैं, मन से उठते हैं। पेट से सोचने के इस तथ्य ने जापानियों की बहुत सहायता की, यह तथ्य उनके लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ। पर आज के युग में धीरे-धीरे जापानी लोग भी इस संदर्भ में, पेट से सिर की ओर सरक रहे हैं। ऐसी कई अन्य परंपराएं भी रही हैं जो ऐसा मानती हैं कि शरीर के किसी अन्य भाग से भी सोच-विचार किया जा सकता है। संत लाओत्सु कहते हैं कि तुम अपने पैरों के तलवों से सोचते हो। ताओवादी योग में ऐसी विधियां हैं कि तुम पैर के तलवों से बाहर निकल सकते हो, क्योंकि उनका मानना है कि विचार वहां ही चल रहे हैं।
वास्तविकता क्या है? वास्तविकता यह है कि तुम इसके पार हो। लेकिन तुम शरीर के किसी भी भाग के साथ जुड़ सकते हो, यह सिर या दिमाग, एक पश्चिमी उन्माद है और पेट एक पूर्वी उन्माद है। तुमने डी.एच.लारेंस के बारे में अवश्य सुना होगा। वह सोचता था कि प्रत्येक मनुष्य अपने काम-केंद्र्र से सोचता है, और यह काम-केंद्र ही सोच-विचार का असली केंद्र है, इसके अलावा कोई अन्य केंद्र हो ही नहीं सकता। एक दृष्टि से देखा जाए तो सभी मत समान हैं, या तो वे समान रूप से गलत हैं और या वे समान रूप से ठीक हैं। इसमें चुनाव करने जैसा कुछ है ही नहीं, क्योंकि साक्षी तो सब के पार है। यह साक्षी, यह जागरूकता शरीर के भीतर भी है, और शरीर के पार भी है। तुम शरीर के किसी भी भाग से जुड़ सकते हो और यह समझ सकते हो कि यही वह सोच-विचार का

केंद्र है, यही वह मूलभूत भाग है। बाहर आने की कोई भी आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि तुम अंदर कभी थे ही नहीं। बतख पहले से ही बाहर है।
जागरूक रहोऔर जब तुम जागरूक होते हो तो तुम्हें यह याद रखना होगा कि साक्षी होते वक्त कोईधारणा मत बनाओ, निर्णय मत लो, कोई आंकलन मत करो। यदि तुम निर्णायक बनते हो तो साक्षी खो जाएगा। जागरूकता के क्षण में मूल्यांकन मत करो। यदि तुम मूल्यांकन करते हो तो जागरूकता समाप्त हो जाती है, वह कहीं खो जाती है। साक्षी के, होश के इस मूल्यवान क्षण में कोई टिप्पणी मत करो। यदि तुम कोई भी टीका-टिप्पणी करते हो तो तुम मुख्य बिंदु से चूक जाते हो।
जब तुम जागरूक हो तो केवल जागरूकता को साधो, होश को साधो... एक नदी प्रवाहित हो रही है, चेतना की एक सतत धारा बह रही है, विचारों के परमाणु, बुलबुलों के समान तैर रहे हैं और तुम नदी के तट पर बैठे हुए, दूर से उन्हें केवल देख रहे हो। धारा आगे की ओर बहती चली जाती है और तुम यह नहीं कहते कि यह अच्छा है, तुम यह नहीं कहते कि यह बुरा है, तुम यह नहीं कहते कि ऐसा नहीं होना चाहिए था और तुम यह भी नहीं कहते कि ऐसा होना चाहिए था। तुम कुछ भी नहीं कहते, तुम केवल देखते हो। तुमसे किसी भी तरह की टीका-टिप्पणी करने के लिए कहा भी नहीं गया है। तुम न्यायाधीश नहीं हो, तुम केवल एक गवाह हो, साक्षी हो।
तब देखो कि क्या होता है? इस चेतनधारा का, इस नदी का निरीक्षण करते हुए अचानक तुम उसके पार हो जाओगे और बतख बाहर आ जाएगी। एक बार तुम इसे जान लेते हो कि तुम बाहर हो, तो तुम बाहर बने रह सकते हो। और तब बिना किसी उपद्रवी सिर के तुम इस पृथ्वी पर विचरण कर सकते हो।

इसलिए सिर को काट देने का यही एक उपाय है। प्रत्येक व्यक्ति की दिलचस्पी दूसरे व्यक्ति का सिर काटने में है, इससे सहायता नहीं मिलेगी।
तुम इससे पहले भी ऐसी बहुत भूलें कर चुके हो। अब अपना सिर काटो।
सिरविहीनता का अनुभव ही गहन ध्यान का अनुभव है।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
चौथा प्रवचन

सभी आशाएं झूठी हैं

पहला प्रश्नः
ओशो! आप हमें बताते रहे हैं कि अपने अहंकार को छोड़ना और श्वेत बादलों
के साथ एक हो जाना कितना अधिक सरल है। आपने हमें यह भी बताया है कि हमारे लाखों जन्म हुए हैं और उनमें से अनेक में हम कृष्ण और क्राइस्ट जैसे बुद्धों के साथ रहे हैं, पर तब भी हम अपने अहंकारों को नहीं छोड़ पाए।
क्या आप हमारे अंदर झूठी आशाएं उत्पन्न कर रहे हैं?

सभी आशाएं झूठी हैं। आशा करना ही अपने आप में झूठ है, इसलिए यह प्रश्नझूठी आशाएं निर्मित करने का नहीं है। तुम जो भी आशा कर सकते हो, वह झूठी ही होगी। आशा तुम्हारे मिथ्या होने की स्थिति से आती है। यदि तुम वास्तविक और प्रामाणिक हो तो किसी भी आशा की कोई आवश्यकता ही नहीं है। तब तुम भविष्य के बारे में सोचते ही नहींकि कल क्या घटित होगा? तुम वर्तमान के क्षण में इतने अधिक सच्चे और इतने अधिक प्रामाणिक होते हो कि भविष्य विलुप्त हो जाता है।
जब तुम अवास्तविक होते हो, तब भविष्य बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है,
तब तुम भविष्य में ही जीते हो। तब तुम्हारी वास्तविकता यहीं और अभी नहीं होती, तुम्हारी वास्तविकता कहीं और तुमसे दूर, तुम्हारे सपनों में होती है। तुम उन स्वप्नों को ही सच दिखाने का प्रयास करते हो क्योंकि उन्हीं सपनों से तुम अपनी वास्तविकता को पाते हो। तुम जैसे हो, तुम नकली और झूठे हो। यही कारण है कि इतनी अधिक आशाएं बनी ही रहती हैं। तुम्हारी सभी आशाएं झूठी हैं:केवल तुम वास्तविक हो और मेरा पूरा प्रयास यही है कि कैसे तुम्हें, तुम्हारे ही भीतर गिरा सकूं, कैसे तुम से ही तुम्हारा परिचय करवा सकूं।
बहुत सी झूठी आशाओं का एक साथ जुड़ जाना ही अहंकार है। अहंकार एक वास्तविकता नहीं है, वह तुम्हारे सभी झूठे सपनों की, भ्रामक सपनों की एक भीड़ है। वर्तमान के क्षण में अहंकार का अस्तित्व हो ही नहीं सकता। इसे अच्छी तरह से समझ लो। अहंकार का अस्तित्व सदैव ही अतीत में अथवा भविष्य में होता है, वह कभी भी "यहीं और अभी" में नहीं हो सकता-कभी भी नहीं। यह असंभव है। जब भी तुम अतीत के बारे में सोचते हो, तो अहंकार आ जाता है:"मैं" आ जाता है। जब कभी तुम भविष्य के बारे में सोचते हो, तो"मैं" आ जाता है, लेकिन जब तुम अतीत और भविष्य के बारे में नहीं सोचते हो, तुम केवल वर्तमान में हो-अभी और यहीं, तब तुम्हारा "मैं" कहां होता है? एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए, अतीत और भविष्य से परे, केवल उसी वर्तमान के क्षण में, तुम कहां होते हो? तुम्हारा "मैं" कहां होता है? उस क्षण तुम उसका अनुभव नहीं कर सकते क्योंकि वह वहां है ही नहीं। अहंकार का अस्तित्व वर्तमान में कभी होता ही नहीं है। अतीत जा चुका, वह अब नहीं है और भविष्य अभी आया नहीं है, दोनों ही विद्यमान नहीं हैं। केवल वर्तमान है और वर्तमान में अहंकार जैसीकोई चीज कभी पाई ही नहीं जाती।
इसलिए जब मैं कहता हूं कि अहंकार को छोड़ दो, तो मेरे कहने का क्या अर्थ है? मैं तुम्हें एक नई आशा नहीं दे रहा हूं, बल्कि मैं तुमसे तुम्हारी सभी आशाएं छीन रहा हूं और तुम्हारी सभी आशाओं को तुमसे दूर ले जा रहा हूं। बस यही कठिनाई है क्योंकि तुम आशाओं के सहारे ही जीते हो, इसलिए तुम यह अनुभव करते हो कि यदि तुम्हें सभी आशाओं से दूर कर लिया जाएगा तो तुम मर ही जाओगे।
तब प्रश्न उत्पन्न होगा कि फिर क्यों जिया जाए? आखिर किसके लिए जिया जाए? एक एक पल, एक एक घड़ी क्यों और कैसे जीवन को निकाला जाए? आशाओं के विलुप्त होने के साथ ही लक्ष्य भी मिट जाता है, इसलिए बिना किसी लक्ष्य के आगे बढ़ना, समुद्र में भटके हुए जहाज जैसा लगता है। यदि जीवन में कहीं पंहुचना नहीं है तो क्यों आगे बढ़ा जाए? यदि कोई मंजिल ही नहीं है तो क्यों

चलना जारी रखें? इसलिए तुम आशाओं के बिना जी ही नहीं सकते। इसी कारण अहंकार को छोड़ना इतना अधिक कठिन हो जाता है। आशा जीवन का पर्याय बन गई है। इसलिए जब कभी भी एक व्यक्ति कोई आशा करता है, तो वह कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण, कहीं अधिक जीवंत और कहीं अधिक शक्तिशाली प्रतीत होता है। जब वह आशा नहीं करता है, तो वह निर्बल और निराश प्रतीत होता है, जैसे वह पिछड़ गया हो, वह नहीं जानता है कि उसे अब क्या करना है और कहां जाना है? जब जीवन में कोई आशा नहीं होती है, तब तुम अपने भीतर एक अर्थहीनता का अनुभव करते हो और तुरंत एक दूसरी आशा निर्मित करते हो, तुम एक विकल्प निर्मित कर लेते हो। यदि एक आशा निराश कर देती है तो तुरंत दूसरी आशा उसके स्थान पर प्रतिस्थापित हो जाती है क्योंकि तुम बिना आशा के, बिना स्वप्न के, जीवन के एक लक्ष्यहीन अंतराल में जी ही नहीं सकते।
मैं तुमसे कहता हूं कि जीने का केवल यही एक मार्ग है। बिना आशा के ही जीवन सच्चा है और आशा हीन क्षणों में ही पहली बार यह जीवन प्रामाणिक होता है।
दूसरी बात भी समझ लेने जैसी है, जब मैं कहता हूं कि अहंकार को छोड़ना आसान है, तो मेरे कहने का यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे लिए अहंकार छोड़ना आसान है। मेरा अर्थ यह है कि अहंकार छोड़ना आसान है, क्योंकि वह अवास्तविक है। यदि यह समझ आ जाए कि अहंकार अवास्तविक है, झूठ है, मिथ्या है तो उसे छोड़ना कैसे कठिन हो सकता है? यदि सपना, केवल एक सपना है तो उससे बाहर आना कठिन कैसे हो सकता है? हां, यदि वह सपना सच हो तो कठिनाई हो सकती है। यदि एक सपना केवल सपना ही है, तो उससे बाहर आने में समस्या कहां है? तुम उससे बाहर आ सकते हो। सपना तुम्हें पकड़कर नहीं रख सकता, सपना तुम्हें रोक नहीं सकता, सपना एक अवरोध नहीं बन सकता, क्योंकि वह वास्तविक ही नहीं है। सपने के पास कोईशक्ति नहीं होती है, इसी कारण हम उसे एक सपना कहते हैं। एक सपने से बाहर आना आसान है। मेरे कहने का ठीक यही अर्थ है, जब मैं कहता हूं कि अहंकार को छोड़ना आसान है।
लेकिन मेरा यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह तुम्हारे लिए आसान होगा, क्योंकि सपना अभी भी तुम्हारे लिए एक वास्तविकता है, वह मात्र एक सपना नहीं है। तुम्हारे लिए अहंकार झूठा अथवा मिथ्या नहीं है, वह ही केवल तुम्हारी एकमात्र सच्चाई है। इस अहंकार के अलावा अन्य प्रत्येक वस्तु तुम्हारे लिए मिथ्या है। हम अहंकार के ही चारों ओर जी रहे हैं। हम अधिक से अधिक अहंकारपूर्ण यात्राओं की खोज पर जा रहे हैं। कोई व्यक्ति धन के द्वारा, कोई पद-प्रतिष्ठा और शक्ति के द्वारा, कोईराजनीति के द्वारा और कोई धर्म और पंडिताई के द्वारा। अहंकार की ओर जाने के लाखों मार्ग है परंतु उनका अंतिम बिंदु, उनका परिणाम, उन सब की मंजिल एक है, और वह है अधिक से अधिक "मैं" की खोज करना... अधिक से अधिक अहंकार की तलाश करना।
तुम्हारे लिए यह अहंकार ही एक सत्यता है और मैं जोर देकर कहता हूं कि तुम्हारे लिए केवल यही वास्तविकता है। नकली ही असली बन गया है। छाया ही सार वस्तु बन गई है। इसी कारण वह कठिन है। कठिन इसलिए नहीं है कि अहंकार बहुत अधिक शक्तिशाली है। वह कठिन इसलिए है, क्योंकि तुम अभी भी उसमें विश्वास रखते हो और उसकी शक्ति में तुम्हारी आस्था है। यदि तुम उसमें विश्वास करते हो तो निश्चित ही यह कठिन होगा, क्योंकि एक ओर तो तुम उसे छोड़ना चाहते हो और दूसरी ओर तुम उससे चिपके भी रहते हो। यह कठिन होगा। जब मैं तुमसे कहता हूं कि यह एक सपना है, तब तुम उस पर विश्वास करना चाहते हो, क्योंकि तुमने इस अहंकार के द्वारा बहुत अधिक दुख उठाए हैं और जो मैं कह रहा हूं तुम उसकी सच्चाई को भी अनुभव करते हो। यदि तुम उस सच्चाई का अनुभव कर रहे हो जो मैं कह रहा हूं, तो तुम इस अहंकार को तुरंत छोड़ दोगे। तुम यह नहीं पूछोगे कि कैसे? इस "कैसे" का तब कोई औचित्य ही नहीं है। अगर तुम बात को गहराई से समझ जाते हो तो तुरंत ही उसे छोड़ दोगे।
तुम मेरी बातों के पीछे छिपे सत्य को नहीं देखते। जब मैं कहता हूं कि
यह जाना ही नहीं गया है कि अहंकार झूठा है और उसे छोड़ा जा सकता है; जब मैं कहता हूं कि अहंकार को छोड़ा जा सकता है, तो तुम उससे भी एक आशा निर्मित कर लेते हो, क्योंकि तुम उसके द्वारा बहुत अधिक कष्ट उठा चुके हो, तुम एक आशा

निर्मित करते हो कि यदि अहंकार को छोड़ा जा सके तो सारे दुख और कष्ट भी छूट जाएंगे। तुम इस उम्मीद से खुश हो जाते हो।
मैं आशा निर्मित नहीं कर रहा हूं। तुम ही आशा निर्मित कर रहे हो। मैं सामान्य रूप से एक तथ्य बता रहा हूं कि अहंकार का निर्माण किस प्रकार होता है? कैसे अहंकार का ढांचा निर्मित होता है? और कैसे उसे छोड़ा जा सकता है? क्योंकि अहंकार मिथ्या है, भ्रम है, इसलिए किसी तरह का प्रयास आवश्यक नहीं है। केवल उसकी स्थिति और उसके प्रयोजन को देखने से ही वह विलुप्त हो जाता है।
एक व्यक्ति डर से भाग रहा है, वह मृत्यु से भयभीत है और अपनी छाया से
ही भाग रहा है। तुम उसे रोकते हो और कहते हो कि तुम मूर्ख हो, अपनी ही छाया से भाग रहे हो, कोई भी व्यक्ति तुम्हारा पीछा नहीं कर रहा है और न कोई तुम्हारी हत्या करने जा रहा है। तुम्हारे सिवा अन्य कोई मौजूद ही नहीं है और तुम अपनी ही छाया से डर गए हो। लेकिन एक बार तुम भागना शुरू करते हो, तो छाया भी तेज़ी से तुम्हारे पीछे भागती है। तुम जितना अधिक तेज़ दौड़ते हो, छाया उतनी ही तेज़ी से पीछा करती है। तब तर्कपूर्ण मन कह सकता है कि तुम खतरे में हो और तर्कपूर्ण मन यह भी कहेगा कि यदि इससे छुटकारा पाना चाहते हो तो बहुत तेज़ गति से भागो। पर तुम जो कुछ भी करते हो, छाया तुम्हारा अनुसरण करती है। यदि तुम छाया से छुटकारा नहीं पा सकते तो तुम और अधिक डर जाओगे। तुम स्वयं ही पूरी स्थिति का निर्माण कर रहे हो।
लेकिन यदि मैं तुमसे कहता हूं-"यह केवल एक छाया है और कोई भी तुम्हारा पीछा नहीं कर रहा है।" यदि तुम इस बात को समझ लेते हो, जान लेते हो, तब तुम छाया की ओर देखते हो और सहजता से स्थिति को अनुभव कर लेते हो। तब क्या तुम मुझसे यह पूछोगे कि इस छाया को कैसे छोड़ा जाए? क्या तब तुम किसी युक्ति, किसी विधि अथवा किसी योग प्रक्रिया के बारे में पूछोगे? तुम स्वयं पर ही हंसोगे। तब तुमने उसे छोड़ दिया है।
जिस क्षण तुम देख लेते हो कि यह केवल एक छाया है और कोई भी व्यक्ति तुम्हारा पीछा नहीं कर रहा है, तब बात स्पष्ट हो जाती है और छाया स्वतः ही छूट जाती है। वहां यह प्रश्न ही नहीं उठता कि कैसे? तुम ठहाका लगाकर हंसोगे कि तुम्हारे तर्क का यह संपूर्ण खेल ही मूर्खतापूर्ण था।
ठीक ऐसा ही अहंकार के साथ भी होता है। जो मैं कह रहा हूं यदि तुम उसके सार को, उसकी सत्यता को समझ सको तो घटना घट जाती है। केवल इतना समझने मात्र से ही बात बन जाती है। बार बार "क्यों" पूछने का कोई मतलब ही नहीं हैं। यदि फिर भी तुम पूछते हो कि कैसे? तो घटना नहीं घटी है और तुम उस स्थिति को नहीं देख पाए, नहीं समझ पाए हो। तुमने उससे एक आशा निर्मित कर ली है, क्योंकि तुम इस अहंकार के द्वारा बहुत कष्ट भोगतेरहे हो। तुमने हमेशा इसे छोड़ना चाहा है, लेकिन यह चाह हमेशा तुम्हारे अधूरे मन से ही उठी है। तुम्हारी समस्त पीड़ा, सभी कष्ट, अहंकार के द्वारा आए हैं, लेकिन तुम्हारे सभी सुख भी अहंकार के द्वारा ही आए हैं। एक भीड़ तुम्हारी प्रशंसा करती है, तुम्हारी जय-जयकार करती है, तालियां बजाती है तो तुम्हें अच्छा अनुभव होता हैं। केवल यही वह आनंद है जिसे अब तक तुमने जाना है। तुम्हारा अहंकार ऊंचा उठता है, वह शिखर पर पहुंच जाता है और एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ जाता है। तुम इसका मज़ा लेते हो, आनंदित होते हो। जब वही भीड़ एक दिन तुम्हारा तिरस्कार करती है, तुम्हारी निंदा करती है तो तुम दुखी हो जाते हो, तुम्हारी भावना को चोट लगती है। वही भीड़ है जो बदल जाती है, वही भीड़ तुम्हें अनदेखा करती है, तुम्हारे प्रति उदासीन हो जाती है और तुम उसके द्वारा कुचल दिए जाते हो। तब तुम अवसाद की एक गहरी घाटी में गिर जाते हो। तुम अहंकार के द्वारा सुखी होते रहे हो और अहंकार के द्वारा ही दुखी होते रहे हो। दुखों के कारण तुम अहंकार को छोड़ना चाहते हो परंतु सुखों के कारण तुम इसे छोड़ भी नहीं पाते हो।
इसलिए जब मैं कहता हूं कि अहंकार आसानी से छोड़ा जा सकता है, तुम्हारे अंदर एक आशा जन्म लेती है। मैं कदापि इस आशा को निर्मित नहीं कर रहा हूं, बल्कि तुम्हारा लालच ऐसा करता है। जब तक तुम अनुभव नहीं कर लेते, यह लालच बना रहेगा ताकि और अधिक प्रसन्नता और आनंद को खोजा जा सके। तुम अनुभव करते हो कि अब एक रास्ता है और एक ऐसा व्यक्ति है, जो अहंकार और उसके द्वारा

निर्मित सभी दुखों को मिटाने और छोड़ने में तुम्हारी सहायता कर सकता है। परंतु क्या तुम उन सभी सुखों को छोड़ने के लिए तैयार हो, जो अहंकार द्वारा ही निर्मित होते हैं? यदि तुम सचमुच तैयार हो तो यह बहुत ही आसान होगा, बिल्कुल वैसे ही जैसे एक छाया को छोड़ना। परंतु तुम इसके आधे भाग को छोड़कर, बाकी आधे भाग के साथ नहीं जा सकते। या तो यह पूरा ही जाएगा अथवा पूरा ही तुमसे चिपका रहेगा। यही समस्या है और यही कठिनाई है। तुम्हारे सभी सुख और तुम्हारे सभी दुख एक ही तथ्य से संबंधित हैं, परंतु तुम सुखों को तो सुरक्षित रखना चाहते हो और दुखों को छोड़ना चाहते हो। तुम असंभव की मांग कर रहे हो। तब यह कठिन है, न केवल कठिन है बल्कि असंभव भी है। यह कभी घटित नहीं हो पाएगा। तुम जो कुछ भी करोगे, वह व्यर्थ होगा, उससे कोई भी परिणाम नहीं निकलेगा।
तुम एक उम्मीद निर्मित कर लेते हो, एक स्वर्ग की उम्मीद और बुद्ध के सघन परमानंद की स्थिति की आशा निर्मित कर लेते हो। मुझे सुनते हुए अथवा जीसस को सुनते हुए अथवा बुद्ध को सुनते हुए यही आशा उत्पन्न होती है। मगर मैं इसे निर्मित नहीं कर रहा हूं, तुम ही इसे निर्मित कर रहे हो। तुम इस पर अपनी आशा भरी योजनाएं थोप रहे हो और यही परेशानी है, यही जटिलता है कि प्रत्येक आशा फिर से अहंकार के लिए एक भोजन बन जाती है। यहां तक कि स्वर्ग पाने की आशा और बुद्धत्व को उपलब्ध होने की आशा भी एक आशा ही है और अहंकार के लिए प्रत्येक आशा एक भोजन है।
बुद्धत्व को उपलब्ध होने का प्रयास कौन कर रहा है? जो बुद्धत्व को उपलब्ध होने का प्रयास कर रहा है, वह समस्या ही है। कोई भी कभी बुद्ध बनता नहीं है। बुद्धत्व तो घटित होता है, कोई भी व्यक्ति अभी तक प्रयास से बुद्ध नहीं बना है। जब कक्ष खाली है, शून्य है, तब बुद्धत्व घटित होता है। जब वहां कोई है ही नहीं जो बुद्धत्व तक पहुंच सके, तब बुद्धत्व घटता है। भाषा के कारण, भाषा की द्वैतता के कारण गूढ़ रहस्यों के बारे में जो कुछ भी कहा जाता है, वह गलत हो जाता है।
हम कहते हैं:गौतम बुद्ध बुद्धत्व को उपलब्ध हुए। यह गलत है। गौतम बुद्ध कभी भी किसी प्रयास से बुद्ध नहीं बने। गौतम बुद्ध बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हुए। बल्कि जब वे वहां नहीं थे, जब वह अनुपस्थित हो गए, तब बुद्धत्व घटित हो गया। एक दिन अचानक उन्होंने अनुभव किया कि वह एक मूर्खतापूर्ण और बेतुके ढांचे का अनुसरण कर रहे थे। जैसे ही उन्होंने यह अनुभव किया कि"मैं ही समस्या हूं, इसलिए मैं जो कुछ भी कहता हूं, वह और अधिक समस्याएं निर्मित करेगा... " यह प्रश्नठीक अथवा गलत का नहीं है। तुम जो कुछ भी करोगे, वह अहंकार को मजबूत बनाएगा। एक बार बुद्ध ने इसका अनुभव कियालेकिन यह अनुभूति उन्हें अनेक वर्षों के प्रयास के बाद हुई। जब उन्हें यह अनुभूति हो गई कि मैं जो कुछ भी करता हूं उससे मेरे अहंकार को और अधिक सहायता मिलती है, तो उन्होंने पूरी तरह से क्रिया को छोड़ दिया। उस अनुभूति के क्षण में वह सामान्य रूप से एक अकर्ता बन गए, वह पूर्ण रूप से निष्क्रिय हो गए।
स्मरण रहे, यही समस्या है। तुम अपनी निष्क्रियता से भी सक्रियता निर्मित कर सकते हो अथवा तुम केवल निष्क्रियता को लाने हेतु सक्रियता निर्मित कर सकते हो। परंतु तब तुम विफल हो जाते हो। तुम स्थिर खड़े रह सकते हो, तुम शांत होकर बैठ सकते हो, लेकिन यदि तुम स्थिर खड़े रहने का प्रयास कर रहे हो, तो तुम्हारा खड़ा होना नकली और मिथ्या है। तब तुम खडे़े नहीं हो, तुम गतिशील हो। यदि तुम शांत बैठने का प्रयास कर रहे हो तो तुम्हारा बैठना नकली और झूठा है, तब तुम शांत और मौन नहीं हो।
जब बुद्ध ने यह अनुभव किया कि वे स्वयं ही समस्या थे और उनकी प्रत्येक गतिविधि ने उनके अहंकार को और अधिक बल दिया है तो उन्होंने सबकुछ पूरी तरह से छोड़ दिया। तब वह निष्क्रिय स्थिति को निर्मित करने का कोई भी प्रयास नहीं कर रहे थे। जो कुछ भी हो रहा था, वह बस घट रहा था। वायु बह रही थी और वृक्ष शायद नाच रहे होंगे; तभी पूर्णिमा का चांद उदय हुआ और पूरा अस्तित्व जैसे उत्सव मना रहा था। श्वास अंदर आ रही थी, श्वास बाहर जा रही थी, धमनियों में रक्त बह रहा था, हृदय धड़क रहा था, सबकुछ बस हो रहा था। वे कुछ

भी स्वयं से निर्मित नहीं कर रहे थे। इसी अक्रिया की स्थिति में गौतम सिद्धार्थ मिट गए, वे कहीं विलुप्त हो गए।
सुबह होने पर वहां बुद्धत्व का स्वागत करने के लिए कोई भी शेष बचा ही नहीं था, लेकिन बुद्धत्व वहां था। उस बोधि वृक्ष के नीचे एक शून्य-वाहन बैठा हुआ था, वह निश्चित रूप से श्वास ले रहा था, निश्चित ही उसका हृदय पहले से बेहतर धड़क रहा था। सब कुछ परिपूर्णता से घट रहा था लेकिन वहां कोई कर्ता न था। रक्त संचार हो रहा था और संपूर्णअस्तित्व चारों ओर जीवंत होकर नृत्य कर रहा था। बुद्ध के शरीर का प्रत्येक रोम जीवंत बनकर नाच रहा था। वे इतने अधिक जीवंत कभी भी नहीं थे, लेकिन अब उर्जा अपने आप ही गतिशील हो रही थी। उसे कोई भी संचालित नहीं कर रहा था, उसे कोई भी नियंत्रित नहीं कर रहा था। बुद्ध एक श्वेत बादल बन गए और बस बुद्धत्व घटित हुआ।
वह तुम्हें भी घटित हो सकता है, लेकिन उससे कोई आशा निर्मित मत करो। वस्तुतः स्थिति को समझते हुए सभी आशाएं छोड़ दो। आशाविहीन बन जाओ, पूर्ण रूप से आशाएं टूट जाएं। हांलांकि पूरी तरह से आशाविहीन बन पाना बहुत कठिन है। अनेक बार तुम निराशा की स्थिति तक पहुंचते हो, लेकिन फिर भी कहीं किसी कोने में तुम्हें एक उम्मीद बनी रहती है, वह परिपूर्ण और समग्र निराशा नहीं होती है। एक आशा छूटती है तो तुम निराश हो जाते हो, लेकिन उस निराशा से दूर जाने के लिए, तुरंत ही तुम एक दूसरी आशा निर्मित कर लेते हो और वह निराशा समग्र नहीं रह जाती, वह निराशा अधूरी हो गई।
लोग एक गुरु के पास से दूसरे गुरु के पास भटकते रहते हैं, यह एक आशा से दूसरी आशा की ओर गतिशील होना है। वह एक सदगुरु के पास इस आशा के साथ जाते हैं कि उसके प्रताप से, उसकी ऊर्जा से उनकी कामनाएं पूरी हो जाएंगी। तब वे एक गुरु के पास, बहुत तनाव भरे मन के साथ प्रयास करते हैं, प्रतीक्षा करते हैं, क्योंकि एक मन, जो आशा से भरा है, वह कभी भी सहज नहीं हो सकता। वे बहुत अधैर्यपूर्ण मन के साथ प्रतीक्षा करते हैं क्योंकि एक मन जो आशा से भरा हो, कभी भी धैर्यशील नहीं हो सकता। जब वहां चीज़ें उनके अनुसार नहीं घटती हैं तो यह लोग बेचैनी का अनुभव करने लगते हैं। वे सोचते हैं कि यह सदगुरु गलत है और उन्हें किसी अन्य गुरु के पास जाना चाहिए। यह एक सदगुरु के पास से दूसरे सदगुरु के पास पलायन नहीं है बल्कि यह एक आशा से दूसरी आशा की ओर अग्रसर होना है। लोग एक धर्म से दूसरे धर्म में चले जाते हैं और ये धर्म-परिवर्तन केवल अधूरी आशाओं के कारण ही है। तुम इसी चक्रव्यूह में अनेकों वर्षों तक फंसे रह सकते हो और फंसे ही हुए हो, ऐसा तुम करते ही चले आ रहे हो।
अब इस बात को देखने और समझने का प्रयास करो। यह प्रश्न न तो एक सदगुरु
का है और न ही किसी पद्धति का है, यह प्रश्न है एक प्रत्यक्ष अंतर्दृष्टि का, आंतरिक समझ का कि जो भी घट रहा है उसमें में तुरंत गहराई तक प्रवेश किया जाए और खोजा जाए कि क्या हो रहा है, क्यों तुम बार बार आशा करते हो? क्यों तुम बिना किसी आशा के नहीं रह सकते? और अपनी समस्त आशाओं से तुमने अभी तक क्या प्राप्त किया है? इसे देखो और समझो। केवल समझ लेने मात्रसे वह स्वयं ही छूट जाती हैं, यहां तक कि तुम्हें उन्हें छोड़ने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसी कारण मैं कहता हूं कि यह आसान है और मैं भलीभांति जानता हूं कि यह बहुत कठिन भी है। कठिन केवल तुम्हारे कारण है और आसान इसलिए है क्योंकि वह स्वयं ही छूट जाती है। बात बहुत सरल है, परंतु तुम ही कठिन हो। यह किसी भी क्षण घट सकता है। जब मैं कहता हूं कि यह किसी भी क्षण घट सकता है तो मेरा अर्थ बुद्धत्व से है, निरअहंकारिता से है, जो किसी कारण पर निर्भर नहीं है। खाली होने के लिए, शून्य होने के लिए, बुद्धत्व घटने के लिए कोई भी कारण आवश्यक नहीं है। बुद्धत्व किसी कारण का परिणाम नहीं है, यह कार्य-कारण संबंध से परे है, निश्चित ही यह कोई"बाय-प्रोडक्ट" नहीं है। यह सामान्य रूप से एक सूक्ष्म अंतरदृष्टि है। ऐसा भी संभव है कि यह अंतरदृष्टि एक संत को न घटे और एक पापी को घट जाए।
इसलिए वास्तव में कोई आवश्यक स्थिति अथवा शर्त आवश्यक नहीं है। यदि कोईध्यान से देख सके और समझ सके तो यह एक पापी को भी घट सकता है। यदि वह आशाविहीन हो जाता है, यदि वह अनुभव करता है कि प्राप्त करने जैसा कुछ भी नहीं है, यदि वह यह देख पाता है कि यह केवल एक मूर्खतापूर्ण खेल है, तो वह

घटना पापी को भी घट सकती है। शायद एक संत को यह घटित न हो, क्योंकि संत सफलता में उत्सुक है, वह प्राप्त करने का प्रयास किए चला जाता है। उसने अभी भी आशा छोड़ी नहीं है। उसके लिए यह संसार तो व्यर्थ हो गया है, वह समझ गया है कि इस संसार से कुछ भी सार्थक नहीं मिलेगा, परंतु अब वह दूसरे संसार यानि स्वर्ग के लिए प्रयासरत हो गया है। उसे इस पृथ्वी को तो छोड़ना है, लेकिन इसके पार जो स्वर्ग है, अब वहां पहुंचना है।
यहां तक कि जीसस और बुद्ध के निकट रहकर भी लोग इस तरह की बातों में उलझे रहते हैं। ठीक उस अंतिम रात्रि को, जब जीसस पकड़े गए और अगले ही दिन उन्हें सूली पर चढ़ाया जाना था, तब भी उनके शिष्यों ने उनसे यही पूछा:"हे सदगुरु! कृपया हमें बताइये कि परमात्मा के राज्य में जब आप परमात्मा के सिंहासन के दाईं ओर बैठे होंगे तब प्रभु के उस राज्य में हम लोगों की स्थिति क्या होगी? हम लोग वहां किस क्रम में बैठे होंगे? परमात्मा अपने सिंहासन पर बैठा होगा, जीसस उनका एकमात्र इकलौता प्यारा पुत्र, परमात्मा के दाहिनी ओर होगा और तब ये बारह शिष्य, इनका क्या होगा? हम लोग वहां किस क्रम में बैठे होंगे"
जीसस के पास रहने वाले लोग ऐसा मूर्खतापूर्ण प्रश्न पूछ रहे हैं, लेकिन यह भी मनुष्य के मन का एक नमूना है। उनका मन इस संसार की कोई भी बात नहीं पूछता, वे लोग यहां भिखारी बन गए हैं, लेकिन वे दूसरे संसार के बारे में पूछ रहे हैं। वे लोग अभी भी उस दूसरे संसार के संदर्भ में आशावान हैं। उन्होंने इस संसार को दांव पर लगाया है, यह एक सौदेबाजी है कि "हम लोग वहां कहां होंगे? क्रम में आपके बाद हममें से कौन बैठेगा"
उन बारह शिष्यों के बीच, इस संदर्भ में निश्चित ही एक प्रतियोगिता रही होगी। वहां राजनीति, महत्त्वाकांक्षा, आगे जाने की होड़, किसी को नीचा दिखाने की होड़ और प्रमुख बनने की चाह अवश्य रही होगी। वहां अनिवार्य रूप से आंतरिक विवाद और राजनीति रही होगी, कहीं बहुत गहरे में हिंसा और आक्रामकता की तरंगे रही होंगी। यहां तक कि जीसस के साथ भी ये लोग अपनी उम्मीदें कायम रखे हुए हैं। तुम्हारे अंदर आशा की जड़ें अत्यंत गहरी हैं। जो कुछ भी कहा जाता है, तुम उससे एक आशा निर्मित कर लेते हो। तुम आशा निर्मित करने वाले एक यंत्र हो और यह "आशा-निर्माण यंत्र" ही अहंकार है। इसलिए करना क्या है? वास्तव में करना कुछ भी नहीं है। तुम्हें केवल निर्मल दृष्टि चाहिए जो अनुभव कर पाने में सक्षम हो, जो बोधपूर्ण हो, जो अंतरबेधी हो, विलक्षण हो और सूक्ष्म तथ्यों की परख रखने वाली हो। तुम्हें केवल इस चीज़ की जरूरत है कि तुम अपने और अपने अस्तित्व के प्रति एक नए दृष्टिकोण, एक नई छवि को आत्मसात कर सको। तुम जो भी करते हो, उसके बाबत तुम हमेशा एक नवीनता की उम्मीद करो।
और मैं तुमसे कहता हूं कि उस नवीनता में, उस नूतन दृष्टि में, उस निर्दोष दृष्टि में अहंकार स्वयं ही गिर जाता है, वह स्वेच्छा से मिट जाता है। यह सबसे आसान तो है परंतु साथ ही सबसे कठिन भी है, लेकिन भलीभांति स्मरण रहे कि मैं तुम्हारे अंदर कोई भी आशा निर्मित नहीं कर रहा हूं।

दूसरा प्रश्नः
ओशो! जैसा आपने बताया, उसी संदर्भ में एक झेन मुहावराहै:"प्रयास रहित प्रयास"; इस बारे में हमें समझाएं और यह कैसे आपके सक्रिय-ध्यान में निरूपित होती है, बताने की कृपा करें?

ध्यान ऊर्जा का संचालन है। सभी तरह की ऊर्जाओं के बारे में एक बहुत आधारभूत बात को समझ लेना है। यह एक मौलिक नियम है कि ऊर्जा दो विपरीतताओं में गतिशील होती है। ऊर्जा के गतिशील होने का यही एक ढंग है, इसके अलावा कोई दूसरा ढंग नहीं है। ऊर्जा सदैव दो विपरीत धु्रवों में गतिशील होती है। किसी भी ऊर्जा के सक्रिय होने के लिए, विपरीत ध्रुव आवश्यक है। यह ठीक विद्युत के समान है, जोऋणात्मक और धनात्मक दो विपरीत धु्रवों के साथ गतिशील होती है। यदि केवल ऋणात्मक धु्रव है तो विद्युत नहीं बहेगी और यदि केवल धनात्मक ध्रुव है तो भी विद्युत नहीं बहेगी। दोनों ध्रुव आवश्यक

हैं। जब दोनों धु्रव मिलते हैं तो विद्युत निर्मित होती है, तब बिजली की चिंगारी उठती है।
यह बात सभी तथ्यों पर लागू होती है। यहां तक कि जीवन भी स्त्री और पुरूष नामक दो विपरीत धु्रवों के मध्य चलता है। स्त्री ऋणात्मक जीवन ऊर्जा है और पुरुष धनात्मक ध्रुव है। यह दोनों विद्युतमय है, इसीलिए इतना अधिक आकर्षण है। अकेले पुरुष के साथ जीवन विलुप्त हो जाता और अकेली स्त्री के साथ भी कोई जीवन नहीं हो सकता था। पुरुष और स्त्री के मध्य एक संतुलन बना रहता है। पुरुष और स्त्री, इन्हीं दो धु्रवों अथवा इन दो किनारों के मध्य जीवन की सरिता प्रवाहित होती है। तुम जहां कहीं भी देखो, तुम उस एक ऊर्जा को ही भिन्न-भिन्न विपरीत धु्रवों के मध्य संतुलन साधते हुए, गतिशील पाओगे।
यह विपरीत ध्रुव ध्यान के लिए भी बहुत अर्थपूर्ण हैं, क्योंकि मन तर्कपूर्ण है और जीवन द्वन्दात्मक है। जब मैं कहता हूं कि मन तर्कपूर्ण है तो मेरे कहने का अर्थ है कि मन एक सीधी रेखा में, एक ही दिशा में गतिशील होता है। जब मैं कहता हूं कि जीवन द्वन्दात्मक है, तो मेरा अर्थ है कि जीवन एक रेखा में नहीं है, वह विरोधाभासों के साथ गतिशील होता है। वह ऋणात्मक से धनात्मक और धनात्मक से ऋणात्मक पर डोलता रहता है। जीवन अनियमित है, जीवन विरोधाभास का प्रयोग करता है।
मन सामान्य रूप से एक सीधी रेखा में, एक निश्चित दिशा में गतिशील होता है। वह कभी भी विरोधाभास की ओर नहीं जाता। मन सामान्यतः विरोधाभास से इंकार करता है। मन अपनी सुरक्षा के लिए, एक ही दिशा में विश्वास करता है और जीवन दो में विश्वास करता है। इसलिए मन जो कुछ भी निर्मित करता है, वह हमेशा एक समय में एक का ही चुनाव करता है। यदि मन जीवन के उतार-चढ़ाव से थककर, शांत और मौन होना चाहता है तो वह केवल शांति और मौन का ही चुनाव करता है और हिमालय चला जाता है। वह शांति और मौन की एक दिशा पकड़ लेता है, तब वह किसी भी तरह के शोरगुल और आवाज़ के साथ नहीं रहना चाहता है। यहां तक कि पक्षियों के गीत भी अब उसे परेशान करेंगे, वृक्षों से गुजरती हुई हवा की आवाज़ भी उसके लिए एक बाधा होगी। मन शांति चाहता है और उसने इस शांति की दिशा को, इस एक मार्ग को ही पकड़ लिया है। अब मन उन सभी मार्गों को इंकार करेगा जोशांति के विरोधी हैं। परंतु एक व्यक्ति जो हिमालय में शांति खोज रहा है, और अन्य समस्त विरोधों से बच रहा है, वह एक मृतक के समान हो जाएगा। वह निश्चित रूप से सुस्त और मंद पड़ जाएगा। वह जितना अधिक शांत होने की कोशिश करेगा, वह उतना ही अधिक निरूत्साहित होता जाएगाक्योंकि जीवन की गतिशीलता विरोधभास और चुनौतियों से ही कायम है।
जीवन का मौन एक अलग तरह का होता है, वह दो विरोधाभास के मध्य होता है। पहला मौन मृत है, पार्थिव है, वह कब्रिस्तान का मौन है। एक मृतक पूर्णरूप से मौन हो जाता है, कोई भी उसे बाधा नहीं पहुंचा सकता है। वह पूर्णता स्थिर हो जाता है और तुम उसे विचलित करने हेतु कुछ भी नहीं कर सकते। उसका मौन पूर्ण रूप से अविचल है। यदि उसके चारों ओर का संसार विक्षिप्त भी हो जाए तब भी वह अपनी मूक और मुर्दा स्थिति में बना रहेगा। लेकिन किसी भी कीमत पर तुम एक मुर्दा व्यक्ति के समान नहीं बनना चाहोगे। मौन, एकाग्रता, स्थिरता जो भी नाम दो पर तुम एक मृतक की भांति नहीं होना चाहोगेक्योंकि मृतक का मौन अर्थहीन है, उस मौन में सौंदर्य नहीं है, प्राण नहीं हैं।
वास्तविक मौन तो तब घटित होता है जब तुम पूर्ण रूप से जीवंत हो, जिंदादिल हो, प्राण ऊर्जा से लबालब हो और एक उत्साह से भरे हुए हो। ऐसा जीवंत मौन ही अर्थपूर्ण होता है। लेकिन तब वह मौन एक भिन्न तरह का होगा, उसमें सर्वथा एक भिन्न गुण होगा। वह सुस्त और मंद नहीं होगा, वह जीवंत होगा। वह दो विरोधाभासों के मध्य एक सूक्ष्म संतुलन होगा।
तब इस तरह के लोग, जो एक जीवंत मौन और जीवन-संतुलन खोज रहे हैं, वे बाजार और हिमालय दोनों स्थानों में जाना चाहेंगे। ऐसा व्यक्ति बाजार भी जाएगा और शोरगुल का आनंद लेगा, और साथ ही वह शांति और मौन का आनंद लेने हेतु हिमालय जाना भी पसंद करेगा। वह इन दो विरोधी ध्रुवों के मध्य एक संतुलन निर्मित करेगा और वह उस संतुलन में स्वयं को बनाए रखेगा। ऐसा

संतुलन एक ही दिशा में चलने वाले मन के रेखावत प्रयासों के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।
यह बिल्कुल वैसा ही है, जैसे कि "प्रयास रहित प्रयास" की झेन विधि है। झेन तकनीकों में विरोधाभासी शब्द व्यवहार का प्रयोग किया जाता है:जैसे प्रयास रहित प्रयास, द्वारहीन द्वार और मार्गहीन मार्ग इत्यादि। झेन तुरंत ही और सदैव ही विरोधाभासी तथ्यों का प्रयोग करता है ताकि तुरंत ही तुम्हें संकेत मिल सके कि कोई भी प्रक्रिया सीधी-सरल और रेखागत नहीं है बल्कि द्वन्दात्मक है। इसलिए विरोधाभास से इंकार नहीं करना है, बल्कि उसे समाहित करना है, उसे अवशोषित कर लेना है। विरोध पृथक कर देने के लिए नहीं है, बल्कि उसका प्रयोग करना है। विरोध को पृथक करके देखने से, यह तुम पर एक बोझ बना रहेगा और तुम्हारे साथ ही मुरझा जाएगा। वह विरोध अनुपयोगी रहेगा, अनछुआ रहेगा और तुम एक अनमोल अनुभव खो दोगे। ऊर्जा रूपांतरित की जा सकती है और उसका प्रयोग किया जा सकता है। ऊर्जा के इस बेहतर प्रयोग द्वारा तुम अधिक जीवंत और प्राणवान हो जाओगे। विरोध को भी समेट लेना होगा, अवशोषित कर लेना होगा, तब प्रक्रिया द्वन्द्वात्मक बन जाती है।
प्रयासहीनता का अर्थ है:कोई भी कार्य न करना, अक्रिया या अकर्म। प्रयास का अर्थ है बहुत अधिक कार्य करना-क्रिया अर्थात कर्म। "प्रयास रहित प्रयास" में दोनों को ही बने रहना है। कार्य करना है लेकिन कर्ता नहीं बनना है, अकर्ता ही बने रहना है। तब तुम दोनों किनारों को अनुभव कर सकोगे। संसार में गतिशील रहो, लेकिन उसका भाग मत बनो। संसार में रहो, लेकिन संसार को अपने अंदर न रहने दो। इस तरह विरोधाभास अवशोषित कर लिया गया है। अब तुम किसी भी वस्तु को अस्वीकार नहीं कर रहे हो, किसी भी वस्तु से इंकार नहीं कर रहे हो, तब तुमने समग्र स्वीकार किया है, पूरे अस्तित्व को स्वीकार कर लिया है। बस यही तो मैं भी कर रहा हूं। सक्रिय ध्यान एक विरोधाभास है। सक्रिय होने का अर्थ है प्रयास, बहुत अधिक प्रयास या संपूर्ण प्रयास तथा ध्यान का अर्थ है शांति, मौन, कोई भी प्रयास नहीं या अक्रिया। तुम इसे एक द्वंद्वात्मक ध्यान कह सकते हो। पहले तो इतने अधिक सक्रिय बनो कि केवल तुम्हारी ऊर्जा ही बचे, ऊर्जा का एक संवेग उठ जाए और वह एक बवंडर बन जाए, तुम्हारे अंदर कोई भी ऊर्जा स्थिर न बचे। समस्त ऊर्जा बाहर की ओर उमड़ पड़े, भीतर कुछ भी न बचा रहे। ऐसा हो जैसे कि जमी हुई ऊर्जा पिघल रही है और बाहर की ओर बह रही है। अब तुम एक जमी हुई, मृत वस्तु नहीं हो, तुम सक्रिय हो गए हो। अब तुम एक जड़ पदार्थ नहीं हो, तुम एक चेतन ऊर्जा हो। तुम भौतिक और स्थूल नहीं रहे, अब तुम सूक्ष्म और विद्युतमय हो गए। क्रिया में अपनी पूरी शक्ति लगा दो, समस्त ऊर्जा लगा दो, समग्रता से क्रियाशील हो जाओ, एक भंवर की तरह गतिशील हो जाओ।
जब प्रत्येक वस्तु गतिशील है और तुम एक चक्रवात बन गए हो, तब उस क्षण में सजग हो जाओ। स्मरण रहे... होशपूर्ण रहो और तभी इस चक्रवात में अचानक तुम एक केंद्र खोज लोगे, जो पूर्ण रूप से शांत और मौन है। यही चक्रवात का केंद्र है और यह तुम हो-तुम अपने दिव्य-स्वरूप में हो, तुम यहां परमात्मा की भांति हो।
तुम्हारे चारों ओर सक्रियता है। तुम्हारा शरीर एक सक्रिय चक्रवात बन गया है। प्रत्येक वस्तु बहुत तेज़ी से गतिशील है। सभी जमे हुए भाग पिघल गए हैं और तुम प्रवाहित हो रहे हो। तुम एक ज्वालामुखी बन गए हो, जहां केवल अग्नि की लपटें हैं, गति है। लेकिन इस संपूर्ण संवेग और गतिशीलता के मध्य में, ठीक केंद्र पर, वहां एक स्थिर और शांत धुरी है। यह शांत और स्थिर धुरी निर्मित नहीं की जा सकती है। वह बस वहां है और तुम्हें उस के साथ कुछ भी नहीं करना है। वह हमेशा से ही वहां थी। वही तुम्हारा वास्तविक एवं सारभूत तत्त्व है और वही तुम्हारे अस्तित्व का आधार है। यह वही है जिसे हिन्दुओं ने आत्मा कहा है, शुद्ध चेतना कहा है। वह वहां है ही, लेकिन जब तक तुम्हारा शरीर और तुम्हारा भौतिक अस्तित्व पूर्ण रूप से सक्रिय नहीं हो जाता है, तुम उसके प्रति सचेत नहीं हो पाते हो। पूर्ण सक्रियता के साथ ही संपूर्ण निष्क्रियता भी स्पष्टता से प्रकट हो पाती है। यह सक्रियता तुम्हें एक वैषम्य अथवा एक विरोधाभास देती है। वह एक "ब्लैकबोर्ड" की तरह बन जाती है और उस काले बोर्ड पर वहां एक श्वेत बिंदु स्पष्ट हो जाता है।

सफेद दीवार पर तुम सफेद बिंदु को नहीं देख सकते, परंतु काले बोर्ड पर वही सफेद बिंदु साफ दिखाई देता है। इसलिए जब तुम्हारा शरीर सक्रिय होकर एक संवेग से भर गया है, उसमें अपार गतिशीलता है, अथाह ऊर्जा है, तब अचानक तुम उस पूर्णतया स्थिर बिंदु के प्रति सचेत हो जाते हो, जो समस्त क्रियाशील विश्व का एक अक्रियाशील केंद्र है।

यह प्रयास रहित प्रयास है, इस बिंदु के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया गया बल्कि यह स्वतः ही अनावृत्त हो गया। सामान्यतः परिधि पर ही प्रयास होता है, लेकिन केंद्र पर कोईप्रयास नहीं करना पड़ता है। जब परिधि पर गतिविधि होती है तब केंद्र पर स्थिरता और शांति है। परिधि पर समग्र सक्रियता है और केंद्र पर नितांत निष्क्रियता। और इन दोनों के मध्य... यह समझना थोड़ा कठिन होगा, क्योंकि तुम इस केंद्र के साथ, जिसे हिन्दू आत्मा कहते है, एक तादात्मय जोड़ सकते हो। यदि तुम केंद्र के साथ, जो स्थिर है, तादात्म्य स्थापित कर लेते हो तो तुमने फिर दो में से किसी एक का चुनाव कर लिया, मुख्य बात यह है कि तुमने चुनाव कर लिया। तुमने फिर से एक को स्वीकार किया और एक को अस्वीकार कर दिया।
इस संदर्भ में पूरब की एक बहुत सूक्ष्म खोज है और वह यह है कि यदि तुम स्थिर बिंदु के साथ तादात्मय स्थापित कर लेते हो तो तुम कभी भी परमात्मा को नहीं जान पाओगे। तुम आत्मा को तो जानोगे, स्वयं के होने को तो जान लोगे परंतु कभी भी परमात्मा को नहीं जानोगे। ऐसी ही अनेक परंपराएं हैं, विशेष रूप से जैन परंपरा, जिन्होंने आत्मा के साथ बहुत अधिक तादात्म्य स्थापित कर लिया है, इसलिए उन्होंने कहा कि वहां कोई भी परमात्मा है ही नहीं और केवल यह आत्मा ही स्वयं परमात्मा है।
हिन्दू लोग, जो वास्तव में बहुत गहराई तक प्रविष्ट हुए हैं, वे इस स्थिर बिन्दु अथवा केंद्र के बारे में यह कहते हैं कि गतिविधि परिधि पर होती है, इसलिए या तो तुम दोनों हो अथवा तुम दोनों ही नहीं हो। स्मरण रहे- या तो तुम दोनों हो अथवा तुम दोनों ही नहीं हो, इन दोनों बातों का अर्थ एक समान है। ये दो धु्रव हैं। ये दो विरोधाभासी छोर हैं, पूर्व-पक्ष और उत्तर-पक्ष। ये दो किनारे हैं और तुम इन दोनों किनारों के मध्य में कहीं हो, न तो गतिशील हो और न स्थिर हो। यह है परम अतिक्रमण। यह वही है, जिसे हिन्दू ब्रह्म कहते हैं।
प्रयास और प्रयासहीनता, गतिविधि और गतिहीनता, सक्रियता और निष्क्रियता, पदार्थ और आत्मा, ये दो किनारे हैं और इन दोनों के मध्य एक अदृश्य सत्ता प्रवाहित होती है। ये दो किनारे दृश्यमान हैं और इन दो के मध्य में वह अदृश्य बहता है। तुम वही हो-"तत्त्वमसि श्वेतकेतु" जैसा कि उपनिषद कहते हैं। "वह" जो इन दो किनारों के मध्य बहता है, "वह" जिसे देखा नहीं जा सकता, "वह" जो अन्य कुछ नहीं अपितु वास्तव में एक सूक्ष्म संतुलन है, "वह" इन दो के मध्य है, "वह" तुम ही हो। उसी को ब्रह्म और परम-आत्मा कहा गया है।
अतः संतुलन कोप्राप्त करना है और संतुलन केवल तभी प्राप्त हो सकता
है जब तुम दोनों धु्रवों का प्रयोग करते हो। यदि तुम केवल एक का प्रयोग करते हो तो तुम मृत हो जाओगे। अनेक लोगों ने ऐसा किया है और व्यक्ति ही नहीं बल्कि कई समाज मृत हो गए हैं। ऐसा भारत में भी हुआ है। यदि तुम एक ध्रुव को चुनते हो तब पक्षपात है, एकतरफा रवैया है और इससे असंतुलन पैदा होता है। ऐसा ही भारत में, वरन समूचे पूरब में हुआ कि शांत, स्थिर और मौन बिंदु चुन लिया गया और सक्रिय एवं गतिशील भाग को छोड़ दिया गया। इसलिए समस्त पूरब सुस्त और मंद हो गया। उसकी तीक्ष्णता, उसकी प्रतिभा और उसका पैनापन कहीं खो गया। बुद्धि की कुशाग्रता, शरीर का तेज एवं ओज कहीं खो गया। पूरब इतना अधिक सुस्त, मंद और कुरूप हो गया, जैसे मानो जीवन एक बोझ था, ऐसा बोझ जिसे किसी भी तरह ढोना था, जीवन एक कर्तव्य हो गया जिसे बस किसी भी तरह निभा देना है। वर्तमान जीवन पूर्व जन्म के किसी बुरे कर्म के परिणाम जैसा हो गया। ऐसे जीवन में, न कोईप्रसन्नता, न कोई उत्साह, न कोई नृत्य रहा बल्कि जीवन अकर्मण्यता से भर गया।

इस अकर्मण्यता के कई परिणाम हुए। पूरब निर्बल बन गया, क्योंकि स्थिर, शांत और मौन बिंदु के साथ तुम लंबे समय तक शक्तिशाली नहीं रह सकते क्योंकि शक्ति अर्जन करने के लिए सक्रिय होने की आवश्यकता होती है, शक्ति को गतिशीलता की ज़रूरत होती है। यदि तुम सक्रिय होने से इंकार करते हो तोशक्ति विलुप्त हो जाती है। पूरब ने अपनी शक्ति और अपना बाहुबल पूर्णतया खो दिया, वह कमजोर पड़ गया। इसलिए जिसने भी चाहा उसने भारत पर विजय प्राप्त ली। हजारों वर्षों तक गुलामी ही पूरब का भाग्य बनी रही। पूरब गुलाम होने के लिए हमेशा ही तैयार बैठा रहा, क्योंकि पूरबी मन ने धु्रवीय विपरीतता के विरुद्ध, केवल एक छोर को चुन लिया था। पूरब शांत तो हुआ लेकिन मृत और आलसी बन गया। इस तरह की शांति का कोई भी मूल्य नहीं है।
पश्चिम में ठीक इसके विपरीत हो रहा है। पश्चिम ने सक्रिय ध्रुव को चुना, परिधि पर गतिशीलता का चुनाव किया और सोचा कि कोई भी आत्मा नहीं है। वे सोचते हैं कि यह सक्रियता ही सब कुछ है। सक्रिय बने रहकर आनंद लेना, सक्रिय बने रहकर उपलब्धि प्राप्त करना, सक्रिय बने रहकर महत्त्वाकांक्षी होना और सक्रियता से विश्व पर विजय प्राप्त करना ही पश्चिम के अनुसार जीवन है। इसका परिणाम यह हुआ कि पश्चिम विक्षिप्तता की ओर बढ़नेलगा, क्योंकि शांत और मौन बिंदु पर स्थिर हुए बिना तुम समझदार नहीं हो सकते, तुम मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं हो सकते। तुम पागल हो ही जाओगे। केवल स्थिर बिंदु के साथ तुम जीवंत नहीं बने रह सकते, तुम मृतक के समान हो जाओगे और केवल सक्रियता चुनने पर भी तुम पागल हो जाओगे। वे लोग जो उन्मत्त हैं, उनके साथ क्या हुआ? उन्होंने अपने स्थिर बिंदु अथवा आत्मा के साथ अपने सारे संपर्क तोड़ दिए हैं और यही मात्र कारण है उनके उन्माद का, उनकी विक्षिप्तता का।
पश्चिम एक बड़े पागलखाने में बदलता जा रहा है। अधिकांश लोग मनोविश्लेषण का सहारा ले रहे हैं, वे मनोरोगी हो रहे हैं, उनकी मनोचिकित्सा की जा रही है और बड़ी संख्या में लोग पागलखानों में भेजे जा रहे हैं। और वे लोग जो बाहर हैं, वे इसलिए बाहर नहीं हैं कि वे समझदार हैं, बल्कि इसलिए बाहर हैं कि पागलखानों में उन्हें रखने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं है, अन्यथा पूरे समाज को ही कैद में रखना होता। वे सामान्य हैं, कार्य करने के लिए सामान्य हैं, लेकिन पश्चिमी मनोविज्ञान कहता है कि यह कहना बहुत ही कठिन है कि अब कोई भी व्यक्ति सामान्य है। पश्चिम में व्यक्ति सामान्य नहीं रह गया है। इसलिए अकेली सक्रियता भी पागलपन उत्पन्न करती है, जिसमें संतुलन साधना असंभव है। बहुत अधिक सक्रिय समाज एवं सभ्यताएं, अंत में पागल हो जाती हैं और नितांत निष्क्रिय समाज एवं सभ्यताएं मृत प्रायः हो जाती हैं। ऐसा केवल समाज के साथ ही नहीं बल्कि व्यक्तिगत रूप से भी होता है।
मेरे लिए संतुलन ही प्रमुख है। चुनाव मत करो, तिरस्कार मत करो। दोनों
को ही स्वीकार करो और एक आंतरिक संतुलन निर्मित करो। सक्रिय ध्यान, उस संतुलन की ओर किया गया एक प्रयास है। सक्रिय बनो... आनंदमग्न हो जाओ, उल्लासित हो जाओ और उसमें पूरी तरह डूब जाओ, बाद में शांत और मौन हो जाओ, और आनंद लो, परम आनंद तक पहुंचो। इन दोनों विरोधाभासों के मध्य में जितना संभव हो सके, डोलते रहो, पूरी स्वतंत्रता से प्रवाहित हो जाओ और कोई भी चुनाव बिल्कुल मत करो। यह मत कहो कि "मैं यह हूं अथवा वह हूं।" किसी से भी तादात्मय मत जोड़ो। केवल इतना जानो कि-"मैं दोनों हूं।" स्वयं अपने प्रति ही विरोधाभासी होने से बिल्कुल भयभीत न होना। विपरीतता का वरण करो और दोनों ही हो जाओ। ऐसे में तुम सरलता से गति करोगे।
जब मैं यह कहता हूं, तो मैं बिना किसी शर्त के ऐसा कहता हूं। केवल सक्रियता और निष्क्रियता के लिए ही नहीं, बल्कि जो कुछ भी बुरा या अच्छा कहा जाता है, वह सब इसमें शामिल है, जिसे भी शैतान या देवता कहा जाता है, वह भी इसमें शामिल हैं।
सदा स्मरण रहे-जीवन में सदैव दो किनारे हैं और यदि तुम एक नदी की तरह बहना चाहते हो तो बिना किसी शर्त के दोनों किनारों का प्रयोग करो। यह मत कहो कि मैं पहले निष्क्रिय था, अब कैसे सक्रिय हो सकता हूं? या पहले सक्रिय था तो अब निष्क्रिय कैसे हो सकता हूं? इतना भी मत कहो कि मैं "यह"

हूं, इसलिए अब मैं "वह" कैसे हो सकता हूं? तुम दोनों ही हो और ऐसे में चुनाव करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, चुनाव की कोई भी आवश्यकता ही नहीं है। केवल एक ही बात याद रखनी है कि दोनों के मध्य संतुलन बनाए रखना है, तब इस संतुलन से तुम दोनों का अतिक्रमण कर जाओगे। तब तुम शैतान और देवता दोनों के ही पार चले जाओगे। जब तुम दोनों का अतिक्रमण कर जाते हो तो वह ही ब्रह्म है। ब्रह्म का कोई भी विरोधी ध्रुव नहीं है, क्योंकि वह दो धु्रवताओं के मध्य केवल एक संतुलन है:परम संतुलन। उसका कोई भी विपरीत छोर नहीं है। जितना संभव हो सके, जीवन में पूर्ण स्वतंत्रता से गतिशील होते रहो और जितना अधिक संभव हो दोनों किनारों और दोनों विरोधों का प्रयोग करो। कोई भी विरोधाभास निर्मित मत करो।
जीवन के दो किनारे-अनुकूल और प्रतिकूल, वास्तव में विरोधाभासी हैं ही नहीं, वे केवल विरोधाभासी प्रतीत होते हैं। भीतर गहराई में वे एक ही हैं। वे ठीक तुम्हारे दाएं और बाएं पैर के समान हैं। तुम दायां उठाने के लिए बाएं का प्रयोग करते हो और फिर बायां उठाने के लिए दाएं का प्रयोग करते हो। जब तुम दाहिना पैर उठाते हो तो बायां पैर सहायता देने के लिए, पृथ्वी पर प्रतीक्षा कर रहा है। इसलिए केवल दक्षिणपंथी अथवा वामपंथी मत बनो। एक छोर के आदी मत बनो। दोनों ही पैर तुम्हारे हैं और दोनों पैरों में तुम्हारी ही अखण्ड ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। क्या तुमने कभी यह अनुभव किया है कि दाएं पैर के पास अलग ऊर्जा है और बाएं पैर के पास अलग ऊर्जा है? दोनों में तुम ही प्रवाहित हो रहे हो। अपनी आंखें बंद करो, दायां और बायां विलुप्त हो जाता है, भेद समाप्त हो गया। वे दोनों तुम ही हो और चलते समय तुम उन दोनों का प्रयोग कर सकते हो, दोनों का प्रयोग करो। यदि तुम दाएं पैर के आदी हो गए, अभ्यस्त हो गए, जैसा कि अनेक लोग हो गए हैं, तब तुम लंगड़े हो जाओगे, अपाहिज हो जाओगे और बाएं का प्रयोग नहीं कर सकोगे। तब तुम खड़े तो हो जाओगे, लेकिन तुम अपंग हो। ऐसे ही धीरे-धीरे तुम मृत हो जाओगे। गतिशील रहो, सक्रिय रहो और साथ ही निरंतर उस स्थिर केंद्र का, आत्मा का स्मरण बना रहे। कर्ता बनो और निरंतर अकर्ता होने का भी स्मरण बना रहे। प्रयास करो और प्रयासहीन भी बने रहो। यदि एक बार तुम विपरीत ध्रुवों अथवा विरोधाभासों का प्रयोग करने की यह रहस्यमयी कीमिया जान लेते हो, तब तुम स्वतंत्र हो अन्यथा तुम अपने ही भीतर एक कैदखाना निर्मित कर लेते हो। कई बार लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं:"मैं यह कैसे कर सकता हूं? मैंने इसे कभी भी नहीं किया है।" अभी परसों ही एक व्यक्ति आया था, उसने मुझसे कहा कि वह पिछले कई वर्षों से शांत और मौन है, तो अब वह ये सक्रिय ध्यान कैसे कर सकता है? उसने एक चुनाव कर लिया है और यही कारण है कि वह अब तक कहीं भी नहीं पहुंचा है, अन्यथा उसे मेरे पास आने की कोई भी आवश्यकता ही नहीं थी। वह सक्रिय ध्यान नहीं कर सकता, क्योंकि उसने निष्क्रिय शारीरिक मुद्रा के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है। यह ऐसा ही है जैसे वह एक छोर के साथ जम गया है, हिमीभूत हो गया है। अधिक गतिशील बनो। गतिशील होते हुए जीवन को स्वयं में से प्रवाहित होने की अनुमति दो। यदि एक बार तुम जान जाते हो कि दो विरोधों के मध्य संतुलन साधना संभव है और एक बार भी तुम्हें उसकी झलक मिल गई, तो तुम उस कला को जान गए। तब सब जगह जीवन है, सब कुछ जीवंत है। तब जीवन के प्रत्येक आयाम में बड़ी सरलता से तुम वह संतुलन प्राप्त कर सकते हो। सच कहूं तो"प्राप्त कर सकते हो" ऐसा कहना भी गलत होगा। एक बार तुम यह युक्ति जान लेते हो, यह कौशल जान लेते हो, तब तुम जो कुछ भी करते हो, वह संतुलन एक छाया की भांति तुम्हारा अनुसरण करता है। दो विरोधाभासों के मध्य यह आंतरिक संतुलन सबसे प्रमुख बिंदु है, यह महत्त्वपूर्ण अनुभव हैजो एक व्यक्ति को घटित हो सकता है।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
पांचवां प्रवचन

अहंकार को इसी क्षण छोड़ देना है

पहला प्रश्नः
ओशो! आपने कहा कि अहंकार को ठीक इसी क्षण छोड़ा जा सकता है। क्या अहंकार को धीमे-धीमे अर्थात क्रमश:भी छोड़ा जा सकता है?

छोड़ना हमेशा क्षण में और हमेशा इस क्षण में ही होता है। इसके लिए कोई क्रमिक प्रक्रिया नहीं है और हो भी नहीं सकती। यह घटना क्षणिक होती है। तुम उसके लिए पहले से तैयार नहीं हो सकते, तुम उसके लिए कोई तैयारी नहीं कर सकते, क्योंकि तुम जो कुछ भी करते हो और मैं कहता हूं कि जो कुछ भी करोगे, वह अहंकार को और अधिक मजबूत बनाएगा।
कोई भी क्रमिक अथवा धीमी प्रक्रिया एक प्रयास ही होगा, वह तुम्हारे द्वारा किया गया प्रयास होगा। इसलिए इस प्रयास के द्वारा तुम और अधिक शक्तिशाली बनोगे। तुम प्रबल हो जाओगे। प्रत्येक धीमी और क्रमिक प्रक्रिया अहंकार की सहायता करती है। केवल ऐसा कुछ, जो बिल्कुल भी धीमा और क्रमिक न हो, जो एक प्रक्रिया के समान न हो बल्कि एक छलांग के समान हो, जिसका अतीत के साथ कोई सतत प्रवाह न हो, कोई निरंतरता न हो है, केवल ऐसा कुछ ही काम कर सकता है, तभी अहंकार छूटता है।
समस्या तब उत्पन्न होती है, जब हम समझ नहीं पाते हैं कि यह अहंकार क्या होता है? अहंकार है अतीत की निरंतरता, वह सभी कुछ जो तुमने अब तक किया है, वह सब जो तुमने अब तक एकत्रित किया है, तुम्हारे समस्त कर्म, समाज द्वारा आरोपित सभी नीतियां एवं अनुशासन, पुराने संस्कार, सभी कामनाएं और अतीत के सभी सपने जो तुमने संग्रहीत किए हैं। पूरा अतीत ही अहंकार है और यदि तुम क्रमिक गति की सीमा में सोचते हो तो तुम पूरे अतीत को अब भी कसकर पकड़े हुए हो, वह अतीत तुम्हारे अंदर ही है। छोड़ना धीमे-धीमे और क्रमिक न होकर अचानक होता है। वह एक विच्छिन्नता है:अतीत अब नहीं है, भविष्य अब नहीं है। तुम उस क्षण में अकस्मात ही "यहीं और अभी" में अकेले ही बचते हो। तब अहंकार अस्तित्व में नहीं रह सकता।
अहंकार केवल स्मृति के द्वारा ही अस्तित्व में बना रह सकता है। तुम कौन हो, तुम कहां से आए हो, तुम किस देश, जाति, धर्म, परिवार और परंपरा से संबंध रखते हो, तुम्हारे सभी सुख तथा दुख, तुम्हारे सभी घाव, और जो भी तुम्हारे साथ अतीत में हुआ, वह सभी कुछ, जो अब तक घटित हुआ है, वह अहंकार ही है। तुम वह हो, जिसके साथ यह सब घटित हुआ है। यह अंतर ठीक से समझलेना, तुम वह हो, जिसके साथ यह सभी कुछ घटित हुआ है और जो घटित हुआ है वह अहंकार है। तुम्हारे आस-पास चारों तरफ अहंकार है, तुम निरअहंकार हो, तुम केंद्र हो। एक बच्चा जब जन्म लेता है, वह पूर्ण रूप से नूतन, निर्मल और युवा होता है, उसका कोई अतीत नहीं होता इसलिए उसमें अहंकार भी नहीं होता। इसी कारण बच्चे इतने अधिक सुंदर होते हैं। उनके पास कोई अतीत नहीं होता। वे युवा, नूतन और ताजगी से भरे हुए होते हैं। वे "मैं" नहीं कह सकते, क्योंकि वे "मैं" कहां से लाएंगे? "मैं" तो धीमे-धीमे बाद में विकसित होता है। वे उच्च शिक्षा पाएंगे, वे पुरस्कार जीतेंगे, वे दण्ड पाएंगे, कभी उनकी प्रशंसा की जाएगी, कभी उनका तिरस्कार किया जाएगा, कभी निंदा होगी, तब "मैं" इकट्ठा होगा।
एक बच्चा सुंदर होता है, क्योंकि उसके पास अहंकार नहीं है। एक बूढ़ा व्यक्ति कुरूप होता है, इसलिए नहीं कि वह वृद्ध हो गया है बल्कि इसलिए कि उसके पास बहुत अधिक अतीत होता है, बहुत अधिक अहंकार होता है। एक वृद्ध व्यक्ति फिर से सुंदर हो सकता है, वह एक बच्चे की तुलना में कहीं अधिक सुंदर हो सकता है, यदि वह अपना अहंकार छोड़ सके, तब यह वृद्धावस्था उसका दूसरा बचपन होगी, यह एक पुनर्जन्म होगा।
जीसस के पुनर्जीवित होने का यही अर्थ है। यह कोई एक ऐतिहासिक सत्य नहीं है, यह एक नीति-कथा है। जीसस को क्रॉस पर चढ़ाया जाता है और तब वे

पुनर्जीवित होते हैं। जो व्यक्ति क्रॉस पर चढ़ाया गया था, वह अब मृत है, वह एक बढ़ई का बेटा था-जीसस, जो अब नहीं रहा। जीसस को सूली दे दी, वह मर चुके। अब उस घटना से एक नए तथ्य का जन्म होता है। उनकी मृत्यु से ही एक नए जीवन का जन्म होता है। अब वे क्राइस्ट हैं, बेथलेहेम के किसी बढ़ई के बेटे नहीं हैं, वे एक यहूदी नहीं हैं, यहां तक कि एक मनुष्य भी नहीं हैं। वे क्राइस्ट हैं, नूतन और अहंकारहीन हैं।
तुम्हारे साथ भी ऐसा ही होगा, जब कभी तुम्हारा अहंकार सूली पर होगा।
जब कभी तुम्हारे अहंकार को सलीब पर लटकाया जाएगा तब वहां एक पुनर्जीवन अथवा पुनर्जन्म होगा। तुम फिर से जन्म लोगे और यह बचपन शाश्वत है, क्योंकि यह शरीर का नहीं, आत्मा का पुनर्जन्म है। अब तुम कभी भी बूढ़े नहीं होगे। तुम हमेशा-हमेशा के लिए नूतन और युवा बने रहोगे जैसे सुबह की ओंस की एक बूंद होती है, जैसा रात में उदित होने वाला पहला सितारा होता है। तुम हमेशा नूतन, युवा और एक बच्चे जैसे निर्दोष बने रहोगेक्योंकि यह आत्मा का पुनर्जीवन है और यह हमेशा एक क्षण में ही घटित होता है।

अहंकार समय में होता है। जितना अधिक समय, उतना अधिक अहंकार। अहंकार
को समय की आवश्यकता होती है। यदि तुम गहराई में प्रवेश करते हो तो तुम यह जानने में समर्थ हो सकते हो कि समय का अस्तित्व केवल अहंकार के ही कारण है। समय तुम्हारे चारों ओर के भौतिक संसार का भाग नहीं है। समय तुम्हारे अंदर के मनोमय संसार का एक भाग है:मन का संसार। समय, अहंकार को आगे बढ़ने, फैलने और विकसित होने के लिए भूमि प्रदान करता है। समय, वह स्थान देता है जिसकी अहंकार को जरूरत होती है।
यदि तुमसे यह कहा जाए कि यह तुम्हारे जीवन का अंतिम क्षण है और अगले
ही क्षण तुम्हारी मृत्यु होने वाली है तो अचानक समय विलुप्त हो जाता है। तुम बहुत बेचैनी का अनुभव करते हो। तुम अभी भी जीवित हो, लेकिन अचानक तुम अनुभव करते हो कि जैसे मानो तुम मर रहे हो और तुम नहीं सोच पाते कि क्या किया जाए? यहां तक कि सोचना भी कठिन हो जाता है, क्योंकि सोचने के लिए भी समय की आवश्यकता होती है, भविष्य आवश्यक है। जब कल ही नहीं बचा, तब कैसे सोचा जाए, कैसे कामना की जाए और कैसे आशा की जाए? वहां कोई भी समय नहीं है। समय समाप्त हो गया है।
एक मनुष्य के साथ सबसे बड़ी वेदना तब घटित होती है, जब उसकी मृत्यु नियत हो, उससे बचा न जा सके, मृत्यु का पल निश्चित ही हो। एक व्यक्ति जिसे उम्रकैद की सजा दी गई है, वह अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है। मृत्यु तो निश्चित है और वह इस बारे में कुछ भी नहीं कर सकता है। एक निश्चित समय के बाद वह मर जाएगा। उस निश्चित समय के पार उसके लिए कोई भी भविष्य नहीं होता इसलिए उसके आगे अब वह कोई कामना नहीं कर सकता, वह कोई सोच-विचार नहीं कर सकता, वह कोई योजना नहीं बना सकता और वह सपने भी नहीं देख सकता। वह अवरोध, वह बाधा हमेशा वहां है। ऐसे में वह अत्याधिक वेदना से गुजरता है। यह वेदना अहंकार के लिए है, क्योंकि समय के बिना अहंकार भी अस्तित्व में नहीं रह सकता। अहंकार समय में ही श्वास लेता है और समय ही अहंकार के प्राण हैं। जितना अधिक समय होता है, अहंकार के लिए उतनी ही अधिक संभावना होती है।
पूरब में अहंकार को समझने का बहुत अधिक प्रयास किया गया, बहुत परीक्षण और बहुत गहरी जांच की गई। उनमें से एक निष्कर्ष यह है कि जब तक तुमसे समय नहीं छूटता है, अहंकार नहीं छूटेगा। यदि कल का अर्थात भविष्य का अस्तित्व बना रहता है तो अहंकार भी अस्तित्व में बना रहेगा। यदि कोई कल न हो तो तुम अहंकार को आगे कैसे खींच सकते हो? यह ठीक ऐसा ही होगा जैसे बिना नदी के किसी नाव को खींचने का प्रयास किया जाए। वह एक बोझ बन जाएगा। एक नदी की नितांत आवश्यकता है तभी एक नाव कार्य कर सकती है।
अहंकार के लिए समय की एक नदी की आवश्यकता होती है। इसी कारण अहंकार हमेशा धीमी प्रक्रिया और अंशों या घटकों के बाबत सोचता है। अहंकार कहता है:"ठीक है, बुद्धत्व का घटना संभव है, लेकिन इसके लिए समय की आवश्यकता है", क्योंकि इसके लिए तैयारी करनी होगी और तब ही उस दिशा में कार्य हो सकेगा। यह बहुत तर्कपूर्ण बात है क्योंकि यह सच है कि प्रत्येक कार्य के

लिए समय की आवश्यकता होती है। यदि तुम एक बीज बोते हो तो उसे वृक्ष बनने में समय लगता है। यदि एक बच्चे का जन्म होता है, यदि एक नया शरीर सृजित होता है तो समय लगता है, बच्चे के विकास के लिए गर्भ भी समय लेगा। तुम्हारे चारों ओर प्रत्येक वस्तु विकसित हो रही है, इस विकास के लिए समय की आवश्यकता होती है, इसीलिए यह तर्कपूर्ण प्रतीत होता है कि बाहर के संसार की तरह, भीतर के संसार यानि आत्मिक विकास में भी समय आवश्यक होगा।
लेकिन यह बात महत्त्वपूर्ण है और समझ लेने जैसी है कि वास्तव में आत्मिक विकास ऐसा नहीं है जैसा कि एक बीज का विकास है। बीज को वृक्ष बनना है और बीज से लेकर वृक्ष तक की यात्रा में एक अंतराल है। इस अंतराल को पार करना होता है, वह दूरी तय करनी पड़ती है। परंतु आत्मिक तल पर तुम किसी बीज की भांति विकसित नहीं होते हो, बल्कि तुम स्वयं ही"विकास" हो औरसंसार में केवल उसकाप्रकटीकरण है, एक रहस्योद्घाटन है। जो तुम वास्तव में हो, जो तुम्हारा स्वरूप है और जैसे तुम रूपांतरण के बाद बनोगे, इन दोनों के मध्य बिल्कुल भी दूरी नहीं है, वहां लेशमात्र भी फासला नहीं है। वहां सदैव एक पूर्णता बनी हुई है, वह समग्र ही है।
इसलिए यह प्रश्न विकसित होने का नहीं है, बल्कि प्रश्न केवल अनावरण
का है, एक पर्दा उठाने का है। यह केवल एक खोज है। कुछ जो पर्दे के पीछे छिपा हुआ था, वह वहां पहले से ही था, पर छुपा हुआ था, तुमने उस पर से पर्दा हटा दिया और वह वहां प्रकट हो गया। यह ठीक ऐसा ही है जैसे मानो तुम आंखें बंद करके बैठे हुए हो, सूरज वहां क्षितिज पर है पर तुम्हारी बंद आंखो के कारण तुम अंधकार में हो। अचानक तुम आंखें खोलते हो और उसी क्षण वहां प्रकाश हो जाता है, वहां दिन है ही।
आत्मिक विकास वास्तव में एक विकास नहीं होता, यह शब्द ही ठीक नहीं है,
यह शब्द-भ्रम है। आत्मिक विकास, वास्तव में एक अनावरण है, कुछ ऐसा जो छिपा हुआ था और प्रकट हो गया। जो वहां पहले से ही था पर अब तुमने उसे अनुभव कर लिया है। "वह" वास्तव में कभी खोया ही नहीं था, केवल विस्मृत हो गया था, तुम उसे भूल गए थे, अबतुम्हें याद आ गया है। यही मुख्य कारण है कि रहस्यदर्शी सदैव ही "याद" शब्द का प्रयोग करते हैं:नानक ने कहा "सिमरन" यानि स्मृति, बुद्ध ने कहा "सम्यक स्मृति", कबीर ने कहा "सुरति"... संत कहते हैं:दिव्य सत्ता कोई उपलब्धि नहीं है, वह तो बस अपने वास्तविक स्वरूप का एक सहज स्मरण है, कोई वस्तु जिसे तुम भूल गए थे, तुम्हें उसका स्मरण आ गया है। अतः वास्तविकता यही है कि समय की कोई आवश्यकता नहीं है, लेकिन मन कहता है, अहंकार कहता है कि प्रत्येक वस्तु के विकास के लिए समय की आवश्यकता होती है। यदि तुम इस तर्कपूर्ण विचार से ग्रस्त हो जाते हो, तुम इस विचार के शिकार हो जाते हो तो तुम कभी भी आत्मिक विकास न कर सकोगे। तुम उसे स्थगित करते चले जाओगे। तुम कहोगे कल, परसों और आगे ही आगे, परंतु वह कल कभी नहीं आएगा, क्योंकि कल कभी नहीं आता है।
जो कुछ भी मैं कह रहा हूं, यदि तुम उसे समझ सकते हो तो अहंकार को ठीक इसी क्षण छोड़ा जा सकता है और यदि यह सत्य है तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह क्यों नहीं छूट रहा है? तुम क्यों इसे नहीं छोड़ पाते हो? यदि क्रमिक विकास का कोई प्रश्न ही नहीं है, तब तुम उसे क्यों नहीं छोड़ रहे हो? क्योंकि तुम उसे छोड़ना ही नहीं चाहते। इससे तुम्हें आघात लगेगा, क्योंकि तुम यह सोचते हो कि तुम अहंकार छोड़ना चाहते हो। पुनः विचार करो, फिर से सोचो, तुम छोड़ना ही नहीं चाह रहे हो और इसलिए वह लगातार मौजूद रहता है। यह प्रश्न समय का नहीं है, क्योंकि तुम खुद उसे छोड़ना ही नहीं चाहते, इसलिए कुछ भी नहीं किया जा सकता है।
मन के ढंग बड़े अजीब हैं, रहस्यमयी हैं, तुम सोचते हो कि तुम उसे छोड़ना चाहते हो और अपनी गहराई में तुम भलीभांति जानते हो कि तुम उसे छोड़ना नहीं चाहते हो। हां, हो सकता है कि तुम अपने मन के इस बर्ताव को थोड़ा रंग-रोगन पोतकर, थोड़ा चमका कर, पॉलिश करना पसंद करोगे, तुम उसे परिष्कृत ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास करोगे। लेकिन तुम वास्तव में उसे छोड़ना नहीं चाहते हो। यदि तुम उसे छोड़ना चाहते हो तो वहां ऐसा कोई भी नहीं है, जो तुम्हें रोक रहा हो। कोई भी बाधा मौजूद नहीं है। केवल चाहने भर से ही उसे छोड़ा जा सकता है। यदि तुम छोड़ना ही न चाहो तो कुछ भी नहीं किया जा सकता है,

यहां तक कि हजार बुद्ध भी तुम पर कार्य कर करें, तुम्हें मार्गदर्शन दें, तो तुम उन्हें भी असफल कर दोगे, क्योंकि बाहर से कुछ भी नहीं किया जा सकता है।
क्या सच में तुमने इसके बारे में सोचा है? क्या कभी तुमने इस पर ध्यान दिया है? क्या सचमुच तुम इसे छोड़ना चाहते हो? क्या तुम वास्तव में अस्तित्वहीन और नाकुछ होना चाहते हो? यहां तक कि अपने धार्मिक कृत्यों में भी तुम कुछ विशेष होना चाहते हो, तुम कुछ प्राप्त करना चाहते हो और तुम कहीं पहुंचना चाहते हो। जब तुम विनम्र होते हो, तब तुम्हारी विनम्रता भी अपने अहंकार को छिपाने का केवल एक गुप्त स्थान मात्र है और कुछ भी नहीं है।
तथाकथित विनम्र लोगों की ओर देखो। वे कहते हैं कि वे विनम्र हैं और वे अपने कस्बे में, अपने शहर में और अपने आसपास के स्थानों में यह सिद्ध करने का प्रयास भी करते हैं कि वे सबसे अधिक विनम्र हैं। पर यदि तुम उनसे तर्क करो और कहो-"नहीं, कोई अन्य व्यक्ति आपसे भी अधिक विनम्र है", तो यह सुनकर उन्हें चोट लगेगी। यह चोट लगने का अनुभव किसे हो रहा है?
मैं एक ईसाई संत के बारे में पढ़ रहा था। वह रोज़ अपनी प्रार्थना में परमात्मा से कहता था-"मैं इस पृथ्वी पर सबसे बड़ा दुष्ट और पापी हूं।" देखने में, प्रकट रूप में वह बहुत विनम्र मालूम होगा, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। वह कहता है कि पृथ्वी पर सबसे बड़ा पापी है और यदि इस बात पर परमात्मा विवाद करने लगे तो वह जरूर तर्क-वितर्क करेगा। उसकी गहरी दिलचस्पी, उसकी आंतरिक रूचि पापी बनने में नहीं है बल्कि सबसे बड़ा पापी बनने में है। यदि तुम्हें सबसे बड़ा पापी बनने की अनुमति दी जाती है, तो तुम एक पापी भी बन सकते हो। तुम इसमें प्रसन्नता का अनुभव करोगे- एक महानतम पापी। तब तुम एक शिखर बन जाते हो। सदाचार या पाप दोनों ही महत्त्वहीन है, बस तुम्हें कुछ विशेष बनना है। अतः कारण कोई भी हो, खूंटी कोई भी हो, तुम्हारा अहंकार शीर्ष पर बना रहना चाहिए।
जॉर्ज बर्नाड शॅाकहते थे-"मैं स्वर्ग में द्वितीय स्थान पर रहने की अपेक्षा नर्क में प्रथम बने रहना पसंद करूंगा।" इसका मतलब यही निकलता है कि नर्क कोई बुरा स्थान नहीं हो सकता, यदि तुम वहां प्रथम हो, यदि तुम सबसे आगे हो तो नर्क भी स्वीकार्य है। स्वर्ग भी तुम्हें उदासीन लगेगा, यदि तुम बहुत भीड़ में कहीं किसी कोने में, एक पंक्ति में अनजान की भांति खड़े हो। और बर्नाड शॅा ठीक कहते हैं। मनुष्य का मन इसी तरह से कार्य करता है।
कोई भी व्यक्ति अहंकार को छोड़ना नहीं चाहता अन्यथा कोई समस्या ही नहीं है। तुम बहुत सहजता सेठीक अभी और इसी क्षण उसे छोड़ सकते हो। यदि तुम्हें ऐसा लगता है कि अहंकार छोड़ने के लिए समय की आवश्यकता है, तब यह समय केवल तुम्हारी समझ बढ़ने के लिए चाहिए ताकि तुम जान सको कि तुम ही उसके साथ लिपटे हुए हो, तुम ही उसे पकड़े हुए हो और जिस क्षण तुम यह समझ सको कि यह तुम्हारा ही लगाव है, तुम ही चिपके हो तो बस घटना घट जाएगी।
तुम इस सामान्य सच्चाई को समझने में अनेक जन्म लगा सकते हो। तुमने पहले ही से अनेक जन्म ले लिए हैं और तुम अभी तक नहीं समझे हो। यह बहुत ही विचित्रप्रतीत होता हैकि जो तुम पर एक बोझ है, जो तुम्हें निरंतर एक नर्क में धकेलता है... इस सब के बावजूद भी, तुम उस अहंकार को पकडे़ रहते हो। इसके पीछे जरूर कोई गहरा कारण होना चाहिए। कोई ऐसा कारण, जिसकी जड़ें बहुत गहराई तक जम गई हैं। मैं इस बारे में थोड़ी सी बात कहना चाहूंगा। तुम उससे सचेत हो सकते हो।
मनुष्य के मन का स्वभाव ही ऐसा है कि वह अक्रिया की अपेक्षा सदैव ही क्रिया या व्यस्तता का ही चुनाव करता है। यदि क्रिया पीड़ादायक है, यदि क्रिया में दुख है, तब भी वह वस्तुतः अव्यस्त होने की अपेक्षा व्यस्तता ही चुनाव करता है क्योंकि बिना किसी कार्य में व्यस्त हुए तुम स्वयं के मिटने का अनुभव करने लगते हो।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब लोग अपनी नौकरी, काम-काज और व्यापार आदि
से रिटायर होते हैं तो वे बहुत शीघ्र मर जाते हैं। उनकी आयु तुरंत ही लगभग दस वर्ष कम हो जाती है। वे अपनी मृत्यु से पहले ही मरना शुरू हो जाते हैं। उनके पास अब कोई कार्य नहीं है, वे व्यस्त नहीं हैं। जब तुम व्यस्त नहीं

हो, जब तुम खाली होते हो तो तुम व्यर्थ और अर्थहीन अनुभव करने लगते हो। तुम यह अनुभव करते हो कि अब तुम्हारी जरूरत नहीं है। अब तुम अन्य लोगों के लिए आवश्यक नहीं हो और तुम्हारे बिना भी संसार सुगमता से चलता रहेगा। जब तक तुम व्यस्त बने रहते हो तो तुम्हें अनुभव होता है कि संसार तुम्हारे बिना एक कदम भी नहीं चल सकता है। तुम इस संसार के एक मुख्य हिस्से हो, महत्त्वपूर्ण भाग हो और तुम्हारे बिना यह दुनिया रूक जाएगी।
यदि तुम अव्यस्त हो, खाली हो जाते हो तो अचानक तुम सचेत होते हो कि बिना तुम्हारे भी संसार बहुत सुंदरता से आगे बढ़ रहा है। कुछ भी नहीं बदल रहा है और तुम तिरस्कृत कर दिए गए हो, तुम कहीं कचड़े के ढेर पर फेंक दिए गए हो और तुम्हारी कोई भी आवश्यकता नही है। जिस क्षण भी तुम यह अनुभव करते हो कि तुम्हारी कोई भी आवश्यकता नहीं है तो अहंकार बेचैन हो जाता है, क्योंकि वह केवल तभी अस्तित्व में रह सकता है जब तक तुम्हारी जरूरत होती है। इसलिए चारों तरफ यह अहंकार अपने इसी दृष्टिकोण कोप्रत्येक व्यक्ति पर थोपता चला जाता है कि तुमको होना ही चाहिए, तुम बहुत आवश्यक हो और बिना तुम्हारे कुछ भी नहीं हो सकता है, तुम्हारे बिना यह संसार मिट जाएगा।
खाली होने पर तुम्हें यह अनुभव होता है कि तुम्हारे बिना भी दुनिया
का खेल जारी है। तुम इसके महत्त्वपूर्ण भाग नहीं हो, तुम्हें सरलता से फेंका जा सकता है, कोई भी व्यक्ति तुम्हारी फिक्र नहीं करेगा और न ही कोई तुम्हारे बारे में सोचेगा। वस्तुतः ऐसा भी संभव है कि तुम्हारे न होने पर लोग मुक्ति का अनुभव करें। यह व्यवहार अहंकार को खंड-खंड कर देता है। इसलिए लोग व्यस्त बने रहना चाहते हैं, बल्कि उन्हें व्यस्त बने रहना होगा। उन्हें अपनी इस भ्रांति को बनाए रखना होगा कि वे समाज का अति आवश्यक हिस्सा हैं। ध्यान, मन के खाली होने की स्थिति है। बहुत गहराई में यह सभी कार्यों से मुक्त होने जैसा है। यह मुक्ति हिमालय पर भाग जाने जैसी कोई नकली मुक्ति नहीं है। ऐसी मुक्ति किसी भी कीमत पर मुक्ति हो ही नहीं सकती क्योंकि तुम हिमालय पर जाकर भी एक छोटा संसार बसा लोगे, तुम वहां भी व्यस्तता ढूंढ ही लोगे।
तुम हिमालय पर भी अपनी नई-नई कल्पनाएं सृजित कर सकते हो कि तुम अपनी तपस्या से संसार को नष्ट होने से बचा रहे हो। हिमालय में बैठकर तुम ध्यान कर रहे हो और इसी कारण संसार तृतीय विश्व युद्ध से बच रहा है। चूंकि तुम विधायक तरंगें फैला रहे हो इसी कारण यह संसार "आदर्श समाज" और "शांति प्रिय" समाजबन रहा है। इन सब तरह की कल्पनाओं से तुम अपने आप को हिमालय में भी व्यस्त कर सकते हो। वहां कोई भी तुमसे तर्क नहीं करेगा क्योंकि तुम वहां अकेले हो। कोई भी तुमसे तुम्हारी कल्पना की सत्यता के संदर्भ में विवाद नहीं करेगा और कोई इसकी चिंता नहीं करेगा कि तुम एक विभ्रम अथवा एक भ्रांतिजनक स्थिति में हो। वहां तुम इन कल्पनाओं में पूरी तरह से डूबे रह सकते हो, और एक बार फिर से तुम्हारा अहंकार एक नए और सूक्ष्म रूप में अपने होने का दावा करेगा।
ध्यान एक नकली मुक्ति नहीं है। यह एक गहन, अंतरंग और वास्तविक मिक्त है, यह एक प्रत्याहार है। ऐसा नहीं है कि ध्यान करने के बाद तुम जीवन में कोई काम ही नहीं करोगे, तुम अपने जीवन के क्रियाकलाप पहले जैसे ही जारी रख सकते हो, लेकिन ध्यान के बाद तुम अपने "अहं" को और अपने वर्चस्व कायम करने की प्रवृत्ति को हटा लेते हो। प्रत्येक जगह तुम्हारी जरूरत है, तुम्हारे बिना संसार नहीं चल सकता, ऐसे भ्रमों से तुम मुक्त होने लगते हो। तुम्हें यह अनुभव होने लगता है कि तुम्हारी ऐसी भ्रांतियां केवल तुम्हारी मूर्खता थी। तुम्हारे बिना भी संसार भलीभांति चल सकता है और इसमें निराश होने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। बल्कि यह अच्छा है, यहां तक कि बहुत अच्छा है कि संसार तुम्हारे बिना भी चल सकता है। यदि तुम सही ढंग से समझ सको तो यह एक स्वतंत्रता बन सकता है। यदि तुम नहीं समझते हो, तभी तुम टूटने का, मिटने का, बिखरने का और खंड-खंड होने का अनुभव करते हो।
इसलिए लोग किसी भी कार्य में व्यस्त बने रहना चाहते हैं और उनका अहंकार उन्हें महानतम तथा संभव व्यस्तताएं दे भी देता है। चौबीस घंटे अहंकार व्यक्ति को व्यस्त रखता है। वे लगातार सोच रहे हैं कि कैसे संसद सदस्य बना जाए? वे सोच रहे हैं कि कैसे एक मंत्री अथवा उपमंत्री बना जाए?

कैसे राष्ट्रपति बना जाए? अहंकार सदैव सोचता ही रहता है और योजनाएं बनाता चला जाता है। वह तुम्हें निरंतर व्यस्त रखता है कि कैसे अधिक समृद्धिप्राप्त की जाए और कैसे अपना साम्राज्य निर्मित किया जाए। अहंकार तुम्हें निरंतर सपने देता है, वह इन सपनों के माध्यम से तुम्हें भीतर भी व्यस्त बनाए रखता है और तुम अनुभव करते हो कि तुम्हारे द्वारा बहुत कुछ हो रहा है और आगे भी होना है। व्यस्तता न मिलने पर अथवा खाली होने पर तुम अचानक अपनी आंतरिक रिक्तता के प्रति सचेत होते हो। तुम्हारे सपनों के कारण वह आंतरिक रिक्तता अनुभव नहीं हो पा रही थी।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि एक व्यक्ति बिना भोजन के भी लगभग नब्बे दिनों तक जीवित रह सकता है, लेकिन नब्बे दिन तक वह बिना सपने देखे नहीं रह सकता। वह पागल हो जाएगा। यदि स्वप्न देखने की अनुमति न हो तो तुम तीन सप्ताह में ही पागल हो जाओगे। बिना भोजन के, तीन सप्ताह तक तुम्हें कोई भी हानि नहीं होगी और यहां तक कि ऐसा करना तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए अच्छा हो सकता है। बिना भोजन किए तीन सप्ताह का उपवास तुम्हारी पूरी शारीरिक व्यवस्था को एक नई स्फूर्ति देगा। तुम अधिक जीवंत तथा युवा हो जाओगे, लेकिन तीन सप्ताहों तक बिना सपनों के तुम पागल हो जाओगे।
सपने निश्चित ही मन की किसी गहरी जरूरत को पूरा करते हैं। यह गहरी जरूरत है कि बिना किसी व्यस्तता के भी यह सपने तुम्हें व्यस्त बनाए रखते हैं। तुम अपनी इच्छानुसार सपने देख सकते हो, तुम जो चाहो वह कर सकते हो और कम से कम अपने सपनों में तो जो चाहो कर सकते हो। तुम्हारे सपनों में पूरा संसार तुम्हारे अनुसार ही गतिशील होता है। कोई भी वहां समस्या उत्पन्न नहीं करता है। तुम किसी को भी मार सकते हो, तुम किसी की भी हत्या कर सकते हो, तुम जैसा चाहो परिवर्तन कर सकते हो, तुम अपने सपने के मालिक होते हो। सपनों के दौरान अहंकार अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि वहां कोई दूसरा नहीं होता, जो तुम्हारा विरोध कर सके और तुमसे यह कह सके-"नहीं, यह गलत है।" तब तुम सर्वेसर्वा होते हो। तुम जो भी चाहते हो, तुम उसे अपने सपने में निर्मित कर लेते हो। जो तुम नहीं चाहते हो उसे तुम नष्ट कर देते हो। स्वप्न में तुम पूर्ण रूप से शक्तिशाली होते हो। तुम अपने सपनों में सर्वशक्तिमान होते हो।
सपने केवल तभी बंद होते हैं जब अहंकार मिट जाता है। इसलिए यह एक संकेत है। वास्तव में ऐसा संकेत पुराने योग शास्त्रों में भी मिलता है कि जो व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया हो, वह स्वप्न नहीं देख सकता। उसका स्वप्न देखना बंद हो जाता है, क्योंकि उसे अब सपनों की कोई आवश्यकता ही नहीं है। वह तो अहंकार की आवश्यकता थी। अहंकार को पोषित करने के लिए ही तुम व्यस्त बने रहना चाहते थे। इसी कारण तुम अहंकार कोछोड़ नहीं सके।
जब तक तुम खाली होने को तैयार नहीं हो, जब तक तुम नाकुछ होने को तैयार नहीं हो, जब तक तुम समाज के लिए अनुपयोगी होते हुए भी जीवन में आनंद और उत्सव मनाने के लिए तैयार नहीं हो, तब तक अहंकार को नहीं छोड़ा जा सकता है। समाज में उपयोगी बने रहना, महत्त्वपूर्ण बने रहना ही तुम्हारी गहरी जरूरत है। जब तक कोई तुम्हें महत्त्वपूर्ण समझता है, जब तक तुम किसी के लिए बहुत मूल्यवान होते हो, तब तुम बहुत भराव महसूस करते हो। यदि ज्यादा लोगों के लिए तुम ही एक मात्र केंद्र बन जाओ तो तुम अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव करते हो। यही कारण है कि नेतृत्व करने में इतनी प्रसन्नता मिलती है, क्योंकि इतने अधिक लोगों को तुम्हारी आवश्यकता होती है। एक नेता बहुत अधिक विनम्र हो सकता है। उसे अपने अहंकार को स्थापित करने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती क्योंकि बहुत अधिक लोगों के लिए वह महत्त्वपूर्ण है, बहुत लोग उस पर निर्भर हैं, इसलिए उसके अहंकार की अत्यंत सहजता और गहनता से प्रतिपूर्ति हो जाती है। वह इतने अधिक लोगों का जीवन-स्रोत बन जाता है कि वह प्रसन्न अनुभव करता है, और विनम्र बना रहता है, बल्कि वह विनम्र बने रहने में समर्थ हो जाता है।
तुम्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो लोग अपने अहंकार को बहुत अधिक दृढ़ करते हैं, वे हमेशा ऐसे लोग होते हैं, जो दूसरों कोप्रभावित नहीं कर सकते। तब वे अपने अहंकार को दृढ़तापूर्वक स्थापित करते हैं, क्योंकि उनके पास अपनी बात कहने का केवल यह ही एक रास्ता बचता है। इसी तरह से वे

सिद्ध कर पाते हैं कि वे भी कुछ हैं। यदि वे लोगों कोप्रभावित कर पाते, यदि वे लोगों को अपनी बात पर राजी कर ही पाते, तो उन्हें अहंकार के इस दावे की जरूरत ही नहीं पड़ती। अतः ऐसे लोग केवल दिखावे के लिए ही सही, परंतु बहुत विनम्र होंगे। वे अहंकार कोप्रदर्शित नहीं करेंगे, क्योंकि वे सूक्ष्म रूप से जानते हैं कि बहुत लोग उन पर आश्रित हैं, वे जानते हैं कि अब वे उन लोगों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और इस महत्त्व के कारण ही उन्हें अपना जीवन उन लोगों के प्रति अर्थपूर्ण प्रतीत होता है। यदि इस तरह से किसी और के लिए अर्थपूर्ण होना ही तुम्हारा लक्ष्य है, यदि तुम्हारे अहंकार को पोषित करना ही तुम्हारे जीवन का अर्थ है, तब तुम उस अहंकार को कैसे छोड़ सकते हो?
मुझे सुनते हुए तुम इस अहंकार को छोड़ने के बारे में सोचना शुरू कर देते हो, लेकिन केवल सोचने से ही तुम उसे नहीं छोड़ सकते हो। इस अहंकार को समझने के लिए उसकी जड़ों तक जाना होगा, जहां वह गहरा जमा हुआ है, जहां से उसका वजूद है, और यह भी जानना होगा कि वह वहां क्यों मौजूद है? यह अचेतन शक्तियों का एक प्रवाह है जो तुम्हारी आज्ञा के बिना, तुम्हारी जानकारी के बिना ही तुम पर कार्य करता है। इस प्रवाह को चेतन बनाना होगा। तुम्हें अपने अवचेतन की भूमि से, उस की गहरी पर्तों में जमी अहंकार की सभी जड़ों को उखाड़कर बाहर लाना होगा, जिससे तुम उन्हें देख सको और समझ सको।
यदि तुम खाली बने रह सकते हो, यदि तुम संसार के लिए अनावश्यक होते हुए
भी संतुष्ट रह सकते हो तो अहंकार इसी क्षण छूट सकता है, लेकिन यह "यदि"... बहुत बड़ा यक्ष- प्रश्न हैं और ध्यान तुम्हें इसी यक्ष- प्रश्न के उत्तर हेतु तैयार करता है। अहंकार के गिरने की घटना एक क्षण में ही घटती है परंतु समझ को गहरा होने में समय लग जाता है।

यह लगभग ऐसा है, जैसेजब तुम पानी गर्म करते हो, तो वह धीमे धीमे गर्म होता जाता है, मध्यम गर्म और फिर तेज गर्म हो जाता है तथा सौ डिग्री के विशिष्ट तापक्रम पर आते ही वह भाप बनना शुरू हो जाता है। यह पानी का भाप बन जाना... एक क्षण में ही घटित होता है, यह धीमे-धीमे नहीं होता बल्कि अचानक एक क्षण में होता है। पानी से भाप बनने की प्रक्रिया एक छलांग है। इस प्रक्रिया में अचानक पानी विलुप्त हो जाता है, परंतु पानी से भाप बनने के लिए समय लगता है, पानी धीरे-धीरे गर्म होते हुए उबाल के बिंदु तक पंहुचता है। भाप अचानक एक क्षण में बनती है पर भाप बनने के लिए सही तापमान तक आने में समय लगता है। समझ का गहरे होना, पानी के गर्म होने की तरह है, वह समय लेती है। अहंकार का छूटना भाप बनने की तरह है, वह अचानक घटित होता है। इसलिए अहंकार को छोड़ने का प्रयास मत करो। वस्तुतः अपनी समझ को गहरा बनाने का प्रयास करो। पानी को भाप में बदलने का प्रयास मत करो। केवल पानी को गर्म करो। एक घटना के घटित होते ही दूसरी वस्तुतः स्वयं ही घटित हो जाएगी, वह अनुसरण करेगी। वह निश्चित रूप से घटित होगी ही।
इसलिए समझ को विकसित करो, अपनी समझ को और अधिक सघन करो, इसे केंद्रित करो। अपनी समस्त उर्जा का प्रयोग अपने अहंकार का मूल समझने हेतु करो। अपनी सारी शक्ति अपने अहंकार, अपने मन और अपने अचेतन को समझने में लगा दो। अधिक से अधिक सजग बनो और जो कुछ भी होता है, उसे हर हाल में समझने का प्रत्येक संभव प्रयास करो।
कोई व्यक्ति तुम्हारा अपमान करता है और तुम क्रोध से भर जाते हो। इस अवसर से मत चूको, समझने का प्रयास करो कि क्यों? आखिर यह क्रोध क्यों आता है? इस क्रोध को एक दार्शनिक तथ्य मत बनाओ और पुस्तकालयों में जाकर क्रोध के संबंध में छानबीन मत करो। यह क्रोध तुम्हें घट रहा है, यह तुम्हारा अनुभव है, एक जीवंत अनुभव है। अपनी समस्त ऊर्जा, अपना पूरा ध्यान इस पर केंद्रित कर दो और समझने का प्रयास करो कि यह तुम्हें क्यों घट रहा है? यह कोई दार्शनिक अथवा मनोवैज्ञानिक समस्या नहीं है और इसके बारे में फ्रायड जैसे किसी प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक से परामर्श लेने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। यह बहुत मूर्खतापूर्ण कृत्य है कि क्रोध तुम्हें घट रहा है और तुम दूसरे लोगों से इसका निदान पूछते हो। यह केवल एक मूढ़ता है। तुम क्रोध

के इस अनुभव को महसूस कर सकते हो, तुम क्रोध में छुपे हुए अहंकार का रस ले सकते हो। तुम ही क्रोध के क्षणों के बाद बोझिल और अपमानित भी महसूस करोगे। अतः समझने का प्रयास करो कि यह क्यों हो रहा है? यह क्रोध कहां से आ रहा है? इसकी जड़ें कहां हैं? यह उत्पन्न कैसे होता है? यह कार्य कैसे करता है? यह कैसे तुम पर हावी हो जाता है? और कैसे तुम क्रोध में पागल हो जाते हो? यह क्रोध तुमसे पहले भी हो चुका है और अब भी हो रहा है, लेकिन अब तुम एक नया तत्त्व, एक नया आयाम इसमें जोड़ दो... और वह आयाम है समझ का आयाम, समझ के जुड़ते ही क्रोध के गुण और लक्षण बदल जाएंगे।
तब धीरे-धीरे तुम पाओगे कि जितना अधिक तुम क्रोध को समझते हो, उतना ही
वह कम होता जाता है और जब तुम उसे पूर्ण रूप से समझ लेते हो तो एक दिन वह विलुप्त हो जाता है। समझ को बढ़ाना तापमान को बढ़ाने के समान है। तापमान जैसे ही सौ डिग्री के विशिष्ट बिंदु तक पहुंचता है, तो पानी विलुप्त हो जाता है और भाप बन जाता है। इसी तरह, क्रोध की ही भांति सेक्स है:उसे भी समझने का प्रयास करो। जितनी गहरी समझ होगी, तुम्हारी कामुकता, तुम्हारी वासना उतनी ही क्षीण होती जाएगी। तुम्हारी समझ जैसे ही शिखर पर पंहुचेगी अथवा पूर्णतम होगी वैसे ही उसी क्षण कामुकता पूर्ण रूपेण विलुप्त हो जाएगी।
यही मेरी कसौटी है कि आंतरिक ऊर्जा का कोई भी आयाम यदि उथली और बाहरी समझ से दमित होता है और नकारात्मक ढंग से प्रकट होता है, तो वह पाप है, अपराध है। परंतु गहरी समझ के द्वारा यदि वह आयाम रूपांतरित होता है, तो वही सदाचार है। तुम्हारी समझ की मात्रा जितनी गहरी होती जाएगी, उतना ही मात्रा में तुम्हारे भीतर से व्यर्थ विसर्जित हो जाएगा, नकारात्मकता विदा होती जाएगी और सकारात्मकता या सार्थकता सघन होगी। कामुकता और वासना विलुप्त हो जाएगी और प्रेम गहन होगा। क्रोध विलुप्त होगा और करुणा गहनतम होगी। लोभ मिटेगा और बांटने का भाव गहन होगा।
इसलिए गहरी समझ के द्वारा जो कुछ भी विसर्जित होने लगे, जान लेना कि
वह व्यर्थ है, नकारात्मक है और जो कुछ भी तुम्हारे भीतर गहरी जड़ें जमाने लगे, जान लेना कि वही सार्थक है। मैं इसी तरह से अच्छे और बुरे, सदाचार और व्याभिचार तथा पुण्य और पाप की व्याख्या करता हूं। एक धार्मिक व्यक्ति या पुण्यवान व्यक्ति और कुछ नहीं बल्कि एक गहरी समझ का मालिक होता है। अधार्मिक व्यक्ति या पापी व्यक्ति वही है जिसकी समझ का स्तर बहुत ही उथला है, छिछला है। एक धार्मिक और एक अधार्मिक व्यक्ति में मुख्य अंतर पाप या पुण्य का नहीं होता है अपितु एक गहरे तल की समझ का होता है।
यही गहरी समझ, पानी को गर्म करने की प्रक्रिया की भांति कार्य करती है। जब वह क्षण आता है, जब तापमान उबलने के बिंदु तक पंहुच जाता है तो अचानक जैसे भाप बनती है वैसे ही अचानक अहंकार छूट जाता है। तुम प्रत्यक्ष रूप से, बिल्कुल सीधे ही अहंकार पर प्रहार नहीं कर सकते, हां! तुम उस स्थिति को अवश्य तैयार कर सकते हो, जिसमें अहंकार स्वतः ही नष्ट हो जाता है। वह स्थिति निर्मित होने में समय लगेगा।
इस संदर्भ में सदैव से ही दो विचारधाराएं रहींहैं:पहली यह कि बुद्धत्व अचानक घटित होता है, यह समय के पार है। दूसरी यह है कि बुद्धत्व अचानक नहीं बल्कि धीरे-धीरे क्रमिक रूप से घटित होता है। यह दोनों विचारधाराएं परस्पर विपरीत हैं। एक के अनुसार बुद्धत्व अचानक ही, अनायास ही घटता है और दूसरी के अनुसार बुद्धत्व अचानक नहीं बल्कि धीमी प्रक्रिया में घटता है और दोनों ही सही हैं क्योंकि दोनों ने सिक्के के एक-एक पहलू को चुन लिया है, धीमी प्रक्रिया वाली विचारधारा ने गहरी समझ को विकसित करने वाला भाग चुन लिया और उनके अनुसार इसमें समय लगेगा, गहरी समझ समय के साथ ही विकसित होगी। और वे सही हैं, उनके अनुसार अचानक होने वाली घटना के बारे में चिंतित नहीं होना चाहिए क्योंकि यह धीमी प्रक्रिया है। वे कहते हैं कि तुम केवल प्रक्रिया का अनुसरण करो और इस प्रक्रिया में जब पानी ठीक बिंदु तक गर्म हो जाएगा तो वह स्वतः ही वाष्प बन जाएगा। तुम्हें वाष्प के बारे में फिक्र करने की आवश्यकता ही नहीं है। तुम वाष्प से संबंधित सभी विचार अपने दिमाग से निकाल दो और तुम अपना पूरा ध्यान केवल और केवल पानी के गर्म करने पर लगा दो।

इसके विपरीत, दूसरी विचारधारा जो कहती है कि बुद्धत्व अचानक घटता है, उसने अंत वाला भाग चुन लिया है। वह कहते हैं कि प्रक्रिया इतनी सारभूत नहीं है, मुख्य बात यह है कि बिना किसी समय-अंतराल के ही घटना घट जाती है, बस एक क्षण में ही विस्फोट होता है। पहली जोधीमी प्रक्रिया है, वह केवल परिधि है, परंतु दूसरी तरफ जो अचानक विस्फोट है, वही वास्तविक बिंदु है, वह केंद्र है।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि दोनों ही ठीक हैं। बुद्धत्व अचानक घटता
है और हमेशा अचानक ही घटित हुआ है। लेकिन समझ समय लेती है। दोनों ही सही हैं परंतु दोनों की व्याख्या गलत ढंग से की जा सकती है। तुम मन की चाल में फंस सकते हो, तुम स्वयं को ही धोखा दे सकते हो। यदि तुम कुछ भी नहीं करना चाहते हो, कोई भी प्रयास नहीं करना चाहते हो तो अचानक घटने वाले बुद्धत्व पर विश्वास करना एक आकर्षण होगा, क्योंकि तब तुम कहोगे कि यदि यह अचानक ही घटता है तो कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, यह अचानक घट ही जाएगा और मैं इसमें कर ही क्या सकता हूं? मैं तो बस उस क्षण की प्रतीक्षा कर सकता हूं। यह स्वयं के प्रति धोखा हो सकता है।
इसी कारण, विशेषतः जापान में धर्म पूरी तरह विलुप्त हो गया। जापान में अचानक बुद्धत्व घटने की एक प्राचीन परंपरा है। झेन कहता है कि बुद्धत्व अचानक घटता है। इसी कारण से पूरा देश गैर-धार्मिक बन गया। लोगों में यह विश्वास प्रचलित हो गया कि अकस्मात बुद्धत्व ही एक मात्र संभावना है। इसके अलावा कुछ भी नहीं किया जा सकता है और वह जब भी घटना होगा... तब ही घटेगा। यदि वह होना है तो होगा ही और यदि नहीं होना है तो नहीं होगा। हम इसके लिए कुछ भी नहीं कर सकते हैं, इसलिए कुछ किया ही क्यों जाए? कुछ करने की चिंता ही क्यों की जाए?
पूरब में जापान सबसे अधिक भौतिकवादी देश है। पूरब में जापान, पश्चिम
के एक भाग की भांति अस्तित्व में है। यह बड़ी अजीब बात है कि जापान की ध्यान और झाझेन जैसी अत्यंत सुंदर परंपराएं विलुप्त हो गईं? ऐसा क्यों हुआ? इस अचानक बुद्धत्व घटने की धारणा के कारण ऐसा हुआ। इसी धारणा के फलस्वरूप वह सुंदर परंपराएं विलुप्त हुईं। लोगों ने स्वयं को धोखा देना शुरू कर दिया। भारत में एक दूसरी चीज़ घटित हुई... और इसीलिए मैं बार-बार यह कहता रहता हूं कि मनुष्य का मन बहुत अधिक धोखेबाज और चालबाज है। तुम्हें निरंतर सजग बने रहना होगा अन्यथा तुम धोखा खाओगे।
भारत में हमारे पास एक अन्य परंपरा है:क्रमिक बुद्धत्व की। भारत का योग-विज्ञान वही धीमी प्रक्रिया है। तुम्हें योग की इस प्रक्रिया के अंतर्गत कार्य करना पड़ता है, यहां तक कि अनेक जन्मों तक कठोर श्रम करना पड़ सकता है। अनुशासन की आवश्यकता होती है, अभ्यास की आवश्यकता होती है। जब तक तुम कठोर श्रम नहीं करते, तब तक तुम योग में कुशलता प्राप्त नहीं करोगे। इसलिए यह एक अत्यंत लंबी प्रक्रिया है, इतनी अधिक लंबी है कि भारत में माना जाता है कि इसके लिए एक जन्म पर्याप्त नहीं है और तुम्हें अनेक जन्मों की आवश्यकता होगी। अत्यंत सूक्ष्म और जटिल योग साधना के संबंध में यह बात गलत भी नहीं है। जहां तक समझ का संबंध है, यह सत्य है, लेकिन तब भारत ने माना कि यदि यह प्रक्रिया इतनी अधिक लंबी है तो फिर जल्दी क्या है? इतनी शीघ्रता क्यों? तब संसार का भरपूर आनंद लो क्योंकि कोई जल्दबाजी नहीं है और पर्याप्त समय है। यह इतनी अधिक लंबी प्रक्रिया है कि तुरंत ही, आज ही इसका परिणाम मिल पाना संभव नहीं है। यदि परिणाम शीघ्रता से प्राप्त नहीं किया जा सकता है, तब क्रिया के प्रति रूचि ही समाप्त हो जाती है। कोई भी व्यक्ति इतनी गहन अभीप्सा नहींरखता है कि वह कई जन्मों तक प्रतीक्षा कर सके और इसलिए वह बुद्धत्व की बात ही भूल जाता है।
अतः क्रमिक बुद्धत्व की धारणा ने भारत को नष्ट किया और अचानक बुद्धत्व की धारणा ने जापान को नष्ट कर दिया। मेरे लिए दोनों ही सत्य हैं, क्योंकि दोनों ही एक संपूर्ण प्रक्रिया के आधे-आधे भाग हैं। तुम्हें निरंतर सजग बने रहना होगा कि तुम स्वयं को धोखा न दे सको। यह विरोधाभासी दिखाई देगा, परंतु मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि यह ऐसा है जोअभी "इसी क्षण" घटित हो सकता है, लेकिन"इसी क्षण" को आने में कई जन्म लग सकते हैं। इसलिए कठोर श्रम करो, प्रयास ऐसे करो जैसे यह ठीक इसी क्षण घटित होने जा रहा हो

और धैर्य से प्रतीक्षा भी करो, क्योंकि इस संबंध में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। यह कोई नहीं बता सकता है कि वह कब घटित होगा? हो सकता है कि वह अनेक जन्मों तक घटित ही न हो। इसलिए धैर्य से प्रतीक्षा करो, ऐसी प्रतीक्षा जैसे कि संपूर्ण प्रक्रिया स्वयं में एक लंबा और धीमा विकास हो और जितना संभव हो सके उतना कठोर श्रम भी करते रहो, जैसे कि बुद्धत्व अभी इसी क्षण घटित हो सकता है।

दूसरा प्रश्नः
ओशो! काम-ऊर्जा के प्रयोग द्वारा हमारे विकास के संबंध में कुछ कहने
की कृपा करें, क्योंकि पश्चिमी देशों की अनेक समस्याओं में से यह भी एक मुख्यचिंता का विषय है।

सेक्स या काम, ऊर्जा है। इसलिए मैं इसे काम-ऊर्जा नहीं कहूंगा, क्योंकि कोई दूसरी ऊर्जा है ही नहीं। केवल सेक्स ही वह मूलभूत ऊर्जा है, जो तुम्हें प्राप्त हुई है। ऊर्जा का रूपांतरण किया जा सकता है, यह एक उच्चतम और श्रेष्ठतम ऊर्जा बन सकती है। यह जितनी अधिक ऊंचाई पर गतिशील होती है, उतनी ही काम-वासना निम्नतर हो जाती है और अंत में जब यह अपने चरम शिखर पर पंहुचती है तोप्रेम और करुणा में रूपांतरित हो जाती है। यह इसकी सर्वोच्च खिलावट है, हम इसे दिव्य अथवा आलौकिक ऊर्जा भी कह सकते हैं, परंतु इसका आधार, इसका मूल और इसका गढ़ सेक्स ही है। इसलिए सेक्स प्रथम है, सेक्स इस ऊर्जा की सबसे निचली परत है और दिव्यता या भगवत्ता इसकी सबसे ऊंची परत है। इन दोनों परतों के बीच यह एक ही ऊर्जा गतिशील होती है, केवल ध्रुवों पर इसका गुण बदल जाता है।
पहली बात जो समझनी होगी, वह यह है कि मैं ऊर्जा को विभाजित नहीं करता हूं। एक बार यदि विभाजन हो जाए तो द्वैत निर्मित हो जाता है, इस विभाजन से तनाव और संघर्ष उत्पन्न होता है। यदि तुम इस ऊर्जा को विभाजित करते हो, तो तुम भी विभाजित हो जाते हो, ऐसे में या तो तुम सेक्स के पक्ष में हो जाओगे या सेक्स के विरोध में हो जाओगे। मैं न तो पक्ष में हूं और न ही विपक्ष में हूं, क्योंकि मैं उसे विभाजित नहीं करता हूं। मैं कहता हूं कि सेक्स एक ऊर्जा है, सेक्स या काम केवल इस ऊर्जा का एक नाम है। तुम उस ऊर्जा को कोई भी नाम दे सकते हो, तुम इसे "एक्स" या "वाई" या "ए" या "बी" कुछ भी कह सकते हो। जब तुम इस ऊर्जा का उपयोग जैव-वैज्ञानिक ढंग से, एक प्रजनन-शक्ति के रूप में करते हो, तब इस "एक्स" ऊर्जा का, इस अज्ञात ऊर्जा का नाम सेक्स या कामुकता है। यही "एक्स" ऊर्जा जब वह जैव-वैज्ञानिक बंधन से मुक्त होती है तब यह दिव्यता में रूपांतरित हो जाती है। एक बार यदि यह ऊर्जा शारीरिक बंध से, वासना से और उन्माद से मुक्त हो जाए तो यही ऊर्जा जीसस का प्रेम है और बुद्ध की करुणा है।
आज ईसाईयत के कारण पूरा पश्चिम एक तरह के सनकीपन से पीड़ित है, मनोग्रसित है। दो हजार वर्षों से ईसाईयत द्वारा दमित की गई काम-ऊर्जा ने पश्चिमी मन को सेक्स के प्रति विक्षिप्त बना दिया है। पहली बात-दो हजार वर्षों से यह प्रयास किया जा रहा था कि इस ऊर्जा को कैसे नष्ट किया जाए? तुम इसे नष्ट नहीं कर सकते। कोई भी ऊर्जा नष्ट नहीं की जा सकती, वह केवल रूपांतरित की जा सकती है। ऊर्जा को आमूल रूप से नष्ट करने का कोई उपाय ही नहीं है, इस संसार में किसी भी चीज़ को नष्ट नहीं किया जा सकता है, उसे केवल बदला जा सकता है, रूपांतरित किया जा सकता है और एक नई सत्ता में या एक नूतन आयाम में परिवर्तित किया जा सकता है। ऊर्जा का पूर्ण विनाश असंभव है। तुम एक नई ऊर्जा को निर्मित नहीं कर सकते हो, और न ही तुम किसी पुरानी ऊर्जा को नष्ट कर सकते हो। सृजन और विनाश दोनों ही तुम्हारे हाथ में नहीं है, यह तुम्हारी प्रत्येक संभव सीमा के बाहर की बात है। इसलिए निर्माण और विनाश असंभव है। अब वैज्ञानिक भी इस बात से सहमत हैं कि एक छोटे से छोटा अणु भी नष्ट नहीं किया जा सकता है।
ईसाईयत दो हजार वर्षों से सेक्स ऊर्जा को नष्ट करने का प्रयास कर रही है। वह धर्म-पूर्ण ढंग से सेक्स के बिना अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहती है। इससे एक पागलपन उत्पन्न हो गया। तुम इस सेक्स ऊर्जा से जितना अधिक

लड़ते हो, तुम उतना ही अधिक इसका दमन करते हो और इसी दमन के कारण तुम और अधिक कामुक बन जाते हो। तब सेक्स तुम्हारे अवचेतन में गहरे तक प्रवेश कर जाता है और वह तुम्हारे पूरे अस्तित्व को विषैला बना देता है। इसलिए यदि तुम ईसाई संतों के जीवन चरित्र को पढ़ो तो तुम पाओगे कि वे सेक्स के प्रति मनोग्रसित हैं। वे प्रार्थना नहीं कर सकते हैं, वे ध्यान नहीं कर सकते हैं। वे जो कुछ भी करते हैं, उसमें सेक्स प्रवेश कर जाता है। तब वे सोचते हैं कि कोईशैतान उनके साथ छल-कपट कर रहा है, शैतान उनसे धूर्तता कर रहा है। कोईशैतान नहीं है, कोई छल-कपट नहीं कर रहा है। यदि तुम सेक्स ऊर्जा का दमन कर रहे हो तो तुम ही वह शैतान हो।
निरंतर दो हजार वर्षों तक सेक्स का दमन करने के बाद, पश्चिम इससे दुखी
हो गया, थककर चूर हो गया। सेक्स की अति हो गई। तब अचानक सबकुछ पलट गया। अब दमन के स्थान पर सेक्स के प्रति आसक्ति पैदा हो गई और इसके भोग का एक नया उन्माद उत्पन्न हुआ। मन एक छोर से दूसरे छोर पर, एक अति से दूसरी अति पर गतिशील हो गया। परंतु बीमारी ज्यों की त्यों बनी रही। एक बार वह दमन के रूप में थी, अब उसी बीमारी ने अतिशय भोग का रूप ले लिया। यह दोनों ही रुग्ण दृष्टिकोण हैं। न तो सेक्स का दमन करना है और न ही विक्षिप्त की तरह उसका भोग करना है, बल्कि सेक्स का तो रूपांतरण करना है। सेक्स को कामुकता से दिव्यता की ओर रूपांतरित करने का एकमात्र संभव उपाय यह है कि काम-क्रीड़ा में गहन ध्यानमयी सजगता के साथ उतरा जाए। यह ठीक वैसे ही है, जैसा मैं क्रोध के बारे में कह रहा था। सेक्स में उतरो परंतु एक जागरूक, होशपूर्ण और सचेतन ढंग से इसका उपभोग करो। इसे एक अचेतन शक्ति के रूप में हावी होने की आज्ञा मत दो। इसके प्रभाव में मत आओ, इसके द्वारा संचालित मत होवो। समग्र जागरूकता के साथ, जानते-समझते हुए, प्रेमपूर्ण ढंग से इसमें सहभागी बनो। अपने सेक्स के अनुभव को ध्यान का एक गहन अनुभव बनाओ। इसमें ध्यानपूर्ण बने रहो। ध्यानपूर्ण ढंग से और सजगता से सेक्स में उतरने की प्रक्रिया को ही पूरब ने तंत्रयोग कहा है।
यदि एक बार सेक्स के अनुभव में तुम ध्यानपूर्ण हो सको तो तुम पाओगे कि उसकी गुणवत्ता ही बदल गई है। वह ऊर्जा जो काम वासना के अनुभव में गतिशील हो रही थी, अब वही ऊर्जा चेतना की ओर गतिशील होना प्रारंभ कर देती है। तुम कामोन्माद के सर्वोच्च शिखर पर पूर्ण जागरूक और पूर्ण सजग रह सकते हो, जो किसी अन्य प्रकार से कभी भी संभव नहीं है, क्योंकि कोई दूसरा अनुभव इतना अधिक गहन, इतना अधिक तल्लीन करने वाला और इतना अधिक समग्र नहीं होता। संभोग के सर्वोच्च शिखर पर तुम पूर्ण रूप से ऊर्जा द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हो, तुम्हारी समस्त जड़ें उस ऊर्जा को पी लेती हैं, तुम्हारा पूरा अस्तित्व इस ऊर्जा से आविष्ट हो जाता है और उस ऊर्जा में तरंगायित होने लगता है। तुम्हारा शरीर और मन दोनों ही तल्लीन हो जाते हैं। इस क्षण में विचार की प्रक्रिया पूर्णतः रुक जाती है। जब तुम संभोग के आनंद-शिखर पर पहुंचते हो तो चाहे एक क्षण के लिए ही सही, तुम्हारी पूरी विचार प्रक्रिया रूक जाती है, क्योंकि इस क्षण में तुम समग्र होते हो, इसलिए तुम विचार कर ही नहीं सकते।
संभोग के सर्वोच्च शिखर तुम विशुद्ध चेतन सत्ता के रूप में होते हो। वहां तुम चेतनता के रूप में, ऊर्जा के रूप में होते हो और तुम्हारा अस्तित्व विचार रहित होता है। इस क्षण में यदि तुम सजग और सचेत हो सको, तो यही सेक्स एक द्वार बन सकता है, दिव्यता के जगत में प्रवेश करने के लिए। यदि इस क्षण में तुम सजग बने रह सकते हो तो अन्य क्षणों में भी और जीवन के अन्य अनुभवों में भी वह सजगता आ सकती है। यह सजगता तुम्हारा एक मुख्य अंग बन सकती है। तब भोजन करते हुए, टहलते हुए और कोई भी कार्य करते हुए, तुम सजग बने रह सकते हो। सेक्स के माध्यम से सजगता ने तुम्हारे अंतरतम और गहनतम केंद्र को अथवा आत्मा को स्पर्श किया है। सजगता ने तुम्हारी समस्त परतों को भेदकर, अंदर गहराई तक प्रवेश किया है। अब तुम सजगता ही हो।
यदि तुम ध्यानपूर्ण हो जाते हो तो तुम एक नवीन तथ्य को अनुभव करोगेकि सेक्स तुम्हें परम आनंद नहीं देता है, सेक्स तुम्हें परम उन्माद नहीं देता है, वस्तुतः मन की निर्विचार स्थिति और काम-कृत्य में तुम्हारा समग्र रूप से तल्लीन हो जाना ही तुम्हें परमानंद का पूर्ण अनुभव देता है।

एक बार यदि तुम इस रहस्य को समझ जाते हो तब सेक्स की आवश्यकता निम्नतम
हो जाती है, क्योंकि मन की वह निर्विचार स्थिति सेक्स के बिना भी निर्मित की जा सकती है। और ध्यान करने का ठीक यही अर्थ होता है कि निर्विचार स्थिति को उपलब्ध हुआ जा सके। अस्तित्व के साथ समग्र रूपेण एक होने की स्थिति, बिना सेक्स के भी सृजित की जा सकती है। एक बार तुम जान जाते हो कि यह अनुभव सेक्स के बिना भी हो सकता है, तब सेक्स की आवश्यकता कम हो जाएगी। एक क्षण ऐसा आएगा जब सेक्स की आवश्यकता बिल्कुल भी महसूस नहीं होगी। स्मरण रहे, सेक्स हमेशा दूसरे पर आश्रित है, इसलिए सेक्स में एक बंधन
और एक गुलामी बनी रहती है। तुम किसी अन्य व्यक्ति पर आश्रित हुए बिना, यदि एक बार भी संभोग के सर्वोच्च शिखर-आनंद को या समग्रता की उस स्थिति को निर्मित कर पाते हो, तो वह ऊर्जा तुम्हारे लिए अंतरस्रोत बन गई। अब तुम स्वतंत्र हो और मुक्त हो।
इसी स्वतंत्रता को, इसी मुक्ति को, भीतरी ऊर्जा और ब्रह्माण्डीय उर्जा के इस निराश्रित संयोग को ही भारत में ब्रह्मचर्य कहा गया है। ब्रह्मचर्य अर्थात पूर्ण रूप से कुंवारा... ऐसा व्यक्ति जो मुक्त रह सकता है क्योंकि अब वह किसी अन्य व्यक्ति पर आश्रित नहीं है, उसका परमानंद केवल उसी के भीतर से उपजता है।
ध्यान के द्वारा सेक्स विलुप्त हो जाता है, लेकिन यह ऊर्जा का विनाश नहीं है। ऊर्जा कभी भी नष्ट नहीं होती है, केवल ऊर्जा का रूप बदल जाता है। ध्यान के द्वारा, अब वह ऊर्जा काम-वासना नहीं है और जब उसका रूप कामुक नहीं है, वासनामय नहीं है, तब तुम एकदम प्रेमपूर्ण हो जाते हो।
वास्तव में, जो व्यक्ति कामुक होता है, वह प्रेमल नहीं हो सकता। उसका प्रेम केवल एक दिखावा हो सकता है, उसका प्रेम केवल एक छल-कपट हो सकता है। उसका प्रेम केवल और केवल सेक्स की ओर जाने का एक साधन है। कामातुर व्यक्तिप्रेम का उपयोग सेक्स के लिए एक तकनीक की भांति करता है। उसके लिए प्रेम एक मार्ग है, सेक्स तक जाने का। एक कामातुर व्यक्ति सचमुच प्रेम कर ही नहीं सकता है। वह केवल दूसरे का शोषण कर सकता है। उसके लिए प्रेम केवल दूसरे तक पंहुचने का और दूसरे को पाने का या दूसरे पर कब्ज़ा करने का एक साधन मात्र है।
एक व्यक्ति जो वासना से मुक्त हो गया है और उसकी काम ऊर्जा उसके ही भीतर, उसकी चेतना की ओर गतिशील हो रही है, तो वह स्वतः ही परम आनंद बन जाता है। उसका परमानंद कुंवारा है, निराश्रित है, वह स्वयं से ही जन्मा है। ऐसा व्यक्ति ही वास्तव में प्रेमल होगा। उसका प्रेम निरंतर बरसेगा, उसका प्रेम निरंतर बंटेगा और निरंतर उसका प्रेम दूसरों में वितरित होता रहेगा। लेकिन इस स्थिति कोप्राप्त करने के लिए तुम्हें सेक्स-विरोधी बनने कीआवश्यकता नहीं है। इस स्थिति कोप्राप्त करने के लिए तुम्हें सेक्स को जीवन के एक अभिन्न अंग की भांति स्वीकार करना होगा। सेक्स को एक स्वाभाविक और प्राकृतिक जीवन शैली की भांति स्वीकार करना होगा। सेक्स में अत्यंत सहजता और सचेतनता से गतिशील होना होगा। चेतन तत्व एक पुल की तरह है, एक स्वर्ण-सेतु की तरह है जो इस लौकिक संसार और उस आलौकिक संसार; स्वर्ग एवं नरक तथा अहंकार एवं दिव्यता के जगत को आपस में जोड़ता है।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
छठवां प्रवचन

दमन या रूपांतरण?

पहला प्रश्नः
ओशो! दो भिक्षुओं के बारे में एक झेन कथा है, जो अपने मठ में वापस लौट रहे थे। मार्ग पर आगे बढ़ते हुए प्रौढ़ भिक्षु एक नदी के तट पर पंहुचा। वहां एक सुंदर युवा लड़की खड़ी थी, जो अकेले नदी पार करने से डर रही थी। इस प्रौढ़ भिक्षु ने उसकी ओर देखते ही, तेज़ी से अपनी दृष्टि दूसरी तरफफेर ली और नदी पार करने लगा। जब वह दूसरे किनारे पंहुचा तो उसने मुड़कर वापस पीछे की ओर देखा और यह देखकर दंग रह गया कि युवा भिक्षु उस लड़की को अपने कंधों पर उठाकर नदी पार कर रहा है।
बाद में, दोनों भिक्षुओं ने साथ-साथ चुपचाप चलते हुए अपनी यात्रा जारी रखी। जब वे लोग अपने मठ के द्वार पर पंहुचे तोप्रौढ़ भिक्षु ने युवा भिक्षु से कहा:"वह उचित नहीं था और वह नियमों के विरुद्ध था। हम भिक्षु यह कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि हम लोग किसी स्त्री का स्पर्श करेंगे।" युवा भिक्षु ने उत्तर दिया-"मैंने तो उस लड़की को नदी के तट पर ही छोड़ दिया था, लेकिन आप उसे अभी भी अपने साथ लिए हुए चल रहे हैं"
ओशो, क्या आप हमें भावों की अभिव्यक्ति अथवा भावों के दमन के बारे में कोई विकल्प बताने की कृपा करेंगे?

केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो अपनी ऊर्जाओं का दमन कर सकता है
और उन्हें रूपांतरित भी कर सकता है। कोई भी अन्य प्राणी ऐसा नहीं कर सकता है। दमन और रूपांतरण, एक ही सिक्के के दो पहलुओं की भांति हैं और इन दोनों पहलुओं के संदर्भ में मनुष्य स्वयं ही कुछ कर सकता है।
वृक्ष मौजूद हैं, जानवर मौजूद हैं, पक्षी विद्यमान हैं, लेकिन वे अपने अस्तित्व के संदर्भ में कुछ नहीं कर सकते हैं, वे इस सृष्टि का एक भाग हैं, वे इससे बाहर खड़े हो ही नहीं सकते। वे कर्ता नहीं बन सकते हैं। वे अपनी ऊर्जा के साथ इतने अधिक तल्लीन होते हैं कि वे स्वयं को पृथक नहीं कर पाते हैं। परंतु मनुष्य कर सकता है। मनुष्य स्वयं के बारे में अवश्य ही कुछ कर सकता है। वह एक दूरी से स्वयं का निरीक्षण कर सकता है, वह स्वयं की ऊर्जा को इस प्रकार देख सकता है कि जैसे वह उससे दूर है। इसी कारण मनुष्य दमन और रूपांतरण दोनों ही कर सकता है। दमन का अर्थ है कि किसी विशिष्ट ऊर्जा को छिपाने का प्रयास करना, उसे अपने प्राकृतिक और शुद्ध रूप में रहने की अनुमति न देना और न ही उसे अभिव्यक्त करने की अनुमति देना। रूपांतरण का अर्थ है कि ऊर्जा को रूपांतरित करके, उसकी दिशा बदलकर उसे एक नया आयाम देना।
उदाहरण के लिए, सेक्स एक ऊर्जा है। सेक्स में ऐसा क्या है जो तुम्हें लज्जित अनुभव कराता है? तुम्हारे भीतर यह लज्जा, यह शर्मिंदगी केवल समाज की सिखावन से ही नहीं आई है। पूरे संसार में कई तरह के समाज अस्तित्व में रहे हैं और आज भी अस्तित्व में हैं परंतु किसी भी समाज ने, किसी भी मनुष्य ने सेक्स को सरलता और सहजता से नहीं लिया है। सेक्स के मूल तथ्य में ही कुछ ऐसी बात है जो तुम्हें लज्जित, अपराधी और सतर्क बनाती है। यह क्या चीज़ है? यदि सेक्स के बारे में तुम्हें कुछ भी न सिखाया जाए, सेक्स के बारे में कोई नैतिकता तुम पर न थोपी जाए, सेक्स के बारे में तुम्हें कोई भी पूर्व धारणा न दी जाए, तब भी बहुत गहरे में तुम सेक्स के साथ सहज नहीं हो पाते हो। वह क्या है?
एक-सेक्स तुम्हारी गहनतम निर्भरता कोप्रदर्शित करता है। वह प्रदर्शित करता है कि तुम्हारे सुख के लिए कोई अन्य व्यक्ति अति आवश्यक है। बिना किसी अन्य व्यक्ति के वह सुख संभव ही नहीं है। इसलिए तुम आश्रित हो जाते हो और तुम्हारी स्वतंत्रता खो जाती है। इससे अहंकार को चोट लगती है। इसलिए एक व्यक्ति जितना अधिक अहंकारी होता है, वह उतना ही अधिक सेक्स के विरुद्ध होगा। तुम्हारे सभी तथाकथित संत सेक्स के विरोधी हैं:इसलिए

नहीं कि सेक्स बुरा है, बल्कि इसलिए कि वे स्वयं अहंकारी हैं। वे किसी अन्य व्यक्ति पर आश्रित होने की बात सोच भी नहीं सकते, वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि वे किसी व्यक्ति से अपने सुख के लिए भीख मांग रहे हैं। अतः सेक्स, अहंकार पर सबसे अधिक चोट करता है।
दूसरा-सेक्स की घटना में इंकार की भी संभावना है। दूसरा व्यक्ति तुम्हें अस्वीकार भी कर सकता है। यह निश्चित नहीं है कि तुम स्वीकार किए जाओगे अथवा अस्वीकार किए जाओगे, दूसरा तुम्हें न भी कह सकता है। जब तुम प्रेम-निवेदन करते हो और अस्वीकार कर दिए जाते हो तो यह संभवतः एक गहनतम तिरस्कार होता है। इस तिरस्कार से, इस अस्वीकृति से भय उत्पन्न होता है। अहंकार कहता है कि अस्वीकृत किए जाने की अपेक्षा यही सही है कि प्रयास ही न किया जाए।
आश्रित होना, अस्वीकृत होना और इंकार की संभावना... फिर भी गहनतम आकांक्षा। सेक्स की गहराई में व्यक्ति ठीक जानवरों के समान बन जाता है। यह बात मनुष्य के अहंकार को बहुत अधिक चोट पहुंचाती है, क्योंकि तब तो एक कुत्ते की प्रेम-क्रीड़ा और तुम्हारे प्रेमालाप में कोई भी अंतर नहीं रह जाता है। अंतर है भी क्या? अचानक तुम जानवर के समान बन जाते हो। सभी उपदेशक और नैतिकतावादी लोग मनुष्य से यही कहे चले जाते हैं:"एक जानवर मत बनो, जानवरों के समान व्यवहार मत करो।" यह मनुष्य की सबसे अधिक और बड़ी से बड़ी निंदा है।
सेक्स के अलावा, अन्य किसी भी कार्य में तुम पशुओं जैसा व्यवहार नहीं करते हो, क्योंकि अन्य कार्यों में तुम प्राकृतिक नहीं रह पाते हो। अन्य प्रत्येक क्रिया में तुम अप्राकृतिक हो सकते हो। जैसे भोजन करने के दौरान; भोजन करने की क्रिया में मनुष्य ने अत्याधिक शिष्टाचार एवं सभ्यता को विकसित कर लिया है, जिससे वह पशु-तुल्य नहीं लगता। मौलिक बात है कि पशु जैसा व्यवहार नहींझलकता है क्योंकि तुम्हारी सुंदर मेज़, सुंदर पकवान, मेज़ पर खाने का सलीका और तौर-तरीके... यह पूरी सभ्यता और शिष्टाचार जो तुमने अपने भोजन बनाने और ग्रहण करने के ढंग के ईर्द-गिर्द निर्मित किया है, यह निश्चित ही जानवरों से भिन्न दिखने के लिए ही किया है।
जानवर अकेले भोजन करना पसंद करते हैं, इसलिए प्रत्येक समाज ने व्यक्ति के मन में यह धारणा निर्मित कर दी है कि अकेले भोजन करना ठीक नहीं होता है। भोजन बांट कर खाओ, परिवार और मित्रों के साथ मिल-बांटकर भोजन करो और संभव हो तो भोजन पर मेहमानों को आमंत्रित करो। कोई भी जानवर भोजन करते समय परिवार, मित्रों और मेहमानों में रूचि नहीं लेता है। जब कभी एक जानवर भोजन करता है, तो वह चाहता है कि कोई भी उसके निकट न आए और वह अपना भोजन लेकर एकांत में चला जाता है, एकांत में उसका आनंद लेता है।
यदि एक मनुष्य अकेला भोजन करना चाहे तो तुम कहोगे कि वह पशु जैसा है,
वह मिल-बांटकर नहीं खाना चाहता और उसकी भोजन करने की आदत प्राकृतिक ही बनी हुई है, उसमें सभ्यता और शिष्टाचार विकसित नहीं हुआ है। भोजन के चारों ओर हमने इतने अधिक मिथ्या आडम्बर और शिष्टाचार के कायदे-कानून सृजित कर लिए हैं कि भूख अब कम महत्त्वपूर्ण होगई है और स्वाद प्रमुख बन गया है। कोई भी जानवर स्वाद के बारे में फिक्र नहीं करता है। जानवर की आधारभूत आवश्यकता भूख है, जैसे ही उसकी भूख मिट जाती है वह संतुष्ट हो जाता है। लेकिन मनुष्य संतुष्ट नहीं होता है क्योंकि उसका प्रयोजन भूख नहीं बल्कि कुछ और है। मनुष्य का मुख्य प्रयोजन स्वाद है, उसके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण खाने के तौर-तरीके हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि तुम क्या खाते हो बल्कि महत्त्व इस बात का है कि तुम कैसे खाते हो?
जीवन के लगभग प्रत्येक आयाम में मनुष्य ने अपने चारों ओर, अपने अनुसार एक कृत्रिम संसार सृजित कर लिया है। जानवर नग्न घूमते हैं और इसी कारण मनुष्य नग्न नहीं रहना चाहता है। यदि कोई व्यक्ति नग्न होता है तो अचानक ही वह पूरी मनुष्य सभ्यता पर आघात करता है, वह वास्तविक जड़ों को ही काट देता है। इसी कारण पूरे संसार में नग्न व्यक्तियों के प्रति इतना अधिक विरोध है।
यदि तुम गलियों में नग्न होकर घूमते हो तो तुम किसी को चोट या हानि नहीं पहुंचा रहे हो, तुम किसी के प्रति कोई हिंसा भी नहीं कर रहे हो, बल्कि

तुम पूरी तरह से निर्दोष हो। लेकिन तुरंत ही पुलिस आ जाएगी और चारों ओर का पूरा वातावरण उत्तेजित हो उठेगा। तुम पकड़ लिए जाओगे, तुम्हें पीटा जाएगा और यहां तक कि जेल में डाल दिया जाएगा। मगर तुमने तो कुछ भी नहीं किया है। अपराध तब होता है, जब तुम कोई गलत कार्य करते हो। पर तुम कुछ भी तो नहीं कर रहे हो, तुम सामान्य रूप से नग्न टहल रहे हो, लेकिन इससे पूरा समाज इतना अधिक क्रोधित क्यों हो जाता है? समाज एक हत्यारे के प्रति भी इतना अधिक क्रोधित नहीं होता है, वह इतना विरोध किसी हत्यारे का भी नहीं करता है। यह बड़ी अजीब बात है। लेकिन एक मनुष्य नग्न हो जाता है और समाज पूरी तरह से क्रोधित है। इसका कारण यही है, कि हत्या करना फिर भी एक मानवीय कृत्य है। कोई भी जानवर किसी की हत्या नहीं करता है। जानवर केवल अपने भोजन के लिए किसी का शिकार करता है, यह खाद्य-चक्र का नियम है। पर जानवर किसी को मारता नहीं है, वे हत्या नहीं करता है। कोई भी जानवर अपनी ही प्रजाति के किसी भी जानवर की हत्या नहीं करता है, ऐसा केवल मनुष्य करता है। इसलिए यह मानवीय कृत्य है, समाज इसे स्वीकार कर सकता है, लेकिन समाज नग्नता को स्वीकार नहीं कर सकताक्योंकि नग्न व्यक्ति अचानक तुम्हें याद दिला देता है कि तुम सब भी जानवर हो। हालांकि सुंदर कपड़ों के पीछे भी एक छुपा हुआ, एक नग्न जानवर मौजूद होता है, वहां एक मूल वानर, वह पूर्वज अभी भी छुपा हुआ है। तुम एक नग्न व्यक्ति के विरुद्ध इसलिए नहीं होकि वह नग्न है, बल्कि तुम इसलिए विरुद्ध हो कि उसकी नग्नता तुम्हें तुम्हारी नग्नता के प्रति सचेत कर देती है और इससे तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है। सुंदर वस्त्र पहने हुए एक मनुष्य कदापि जानवर नहीं है। सुस्वादु भोजन और भोजन करने की सभ्यता के साथ मनुष्य कदापि जानवर नहीं है। भाषा, नैतिकता, दर्शन और धर्म के साथ, मनुष्य कदापि एक जानवर नहीं है। गिरजाघर और मंदिर में प्रार्थना हेतु जाना उसकाप्रमुख धार्मिक कृत्य है। यह धार्मिक इसलिए है क्योंकि कोई भी जानवर चर्च या मंदिर में नहीं जाता है और न ही कोई जानवर प्रार्थना करता है। अतः यह पूर्ण रूप से मानवीय कृत्य है। मंदिर में जाकर प्रार्थना करना... यह मनुष्य को पूरी तरह से पशुता से भिन्न करता है और आदमी तथा जानवर में एक अंतर उत्पन्न करता है, इससे स्पष्ट झलक मिलती है कि तुम जानवर नहीं हो।
लेकिन सेक्स एक नैसर्गिक प्राणी प्रक्रिया है। तुम जो कुछ भी करते हो, जितना भी छिपाते हो, तुम अपने चारों ओर जितना भी कृत्रिम वातावरण उत्पन्न करते हो, तुम्हारे भीतर के मूलभूत जानवर की मौजूदगी बनी ही रहती है। जब तुम सेक्स में उतरते हो तो इसी मूलभूत प्रवृत्ति के कारण पशु-तुल्य हो जाते हो। इसी कड़वी सच्चाई के कारण अनेक लोग सेक्स का आनंद ही नहीं ले पाते, वे लोग पूर्ण रूप से जानवर या दूसरे शब्दों में कहें तो पूर्ण रूप से सहज नहीं बन पाते हैं क्योंकि उनका अहंकार उन्हें इसकी अनुमति नहीं देता है।
इसलिए अहंकार और सेक्स में इतना संघर्ष है:सेक्स बनाम अहंकार। कोई व्यक्ति जितना अधिक अहंकारी होता है, वह उतना ही अधिक सेक्स विरोधी होता है। जो निरअहंकारी होता है, वह सेक्स में उतना ही अधिक तल्लीनता से सम्मलित होता है। लेकिन निरअहंकारी व्यक्ति भी अपराध या पाप जैसा अनुभव करता है, हालांकि वह कम मात्रा में ऐसा अनुभव करता है, लेकिन तब भी उसे यह अनुभव होता है कि उसने कुछ गलत कर दिया है। जब कोई सेक्स में गहराई से प्रविष्ट होता है तो वहां अहंकार खो जाता है और जब अहंकार के पूर्ण रूप से विलुप्त होने का क्षण आता है तो तुम्हें भय जकड़ लेता है।
इसलिए लोग प्रेम करते हैं, सेक्स करते हैं, परंतु वे इसकी गहराई तक नहीं उतरते, वे इसमें वास्तविक नहीं होते। वे प्रेम करने का केवल एक नकली प्रदर्शन करते हैं, क्योंकि यदि तुम वास्तव में प्रेम करते हो तो पूरी सभ्यता को ही छोड़ देना पड़ता है। तुम्हारे मन, तुम्हारे धर्म, दर्शन और प्रत्येक धारणा को उठाकर अलग रख देना होगा। अचानक तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारे अंदर एक जंगली जानवर उत्पन्न हो गया है। उसकी गर्जना तुम तक आएगी। तुम वास्तव में जंगली जानवर की तरह, गर्जना, गुर्राना और चीखना शुरू कर दोगे। यदि तुम ऐसा होने दोगे तो भाषा विलुप्त हो जाएगी और वहां केवल वे ही ध्वनियां बचेंगी जिन्हें पक्षी और जानवर उत्पन्न करते हैं। अचानक

लाखों वर्षों की पूरी सभ्यता चरमराकर गिर पड़ेगी और तुम पुनः एक जंगली संसार में, एक जंगली जानवर की भांति स्वयं को खड़े पाओगे।
वहां एक भय है और इसी भय के कारण ही प्रेम करना बहुत कठिन हो गया है।
वह भय वास्तविक है, क्योंकि जब तुम अहंकार खो देते हो तो तुम लगभग पागल और जंगली बन जाते हो और तब कुछ भी हो सकता है। तुम भलीभांति जानते हो कि कुछ भी हो सकता है। तुम किसी को मार सकते हो, तुम अपनी प्रेमिका की हत्या कर सकते हो और तुम उसके शरीर का भक्षण भी कर सकते हो, क्योंकि तब सब नियंत्रण हट जाते हैं। इसलिए इन सब से बचने के लिए दमन करना ही सबसे अधिक सरलतम मार्ग प्रतीत होता है। या तो दमन करो या स्वयं को केवल उतनी ही अनुमति दो, जिससे तुम किसी खतरे में न पड़ जाओ। केवल उतना ही हिस्सा भोगो, जिसे तुम सदैव ही पूरी तरह नियंत्रित कर सको। और जब तुम नियंत्रणकर्ता हो, जब तुम संचालक हो तो तुम एक निश्चित सीमा तक ही अनुमति देते हो, और उसके बाद तुम अनुमति नहीं देते हो। तुम स्वयं को सिकोड़ लेते हो, बंद कर लेते हो।

यह दमन एक सुरक्षा कवच की भांति कार्य करता है, यह चौकन्ना रहने का एक उपाय है, यह सुरक्षा का एक मापदण्ड बन जाता है और धर्मों ने इस मापदण्ड का भरपूर उपयोग किया है। उन्होंने सेक्स के इस भय का शोषण किया है और तुम्हें अत्याधिक भयभीत बनाया है। उन्होंने तुम्हारे भीतर भय की एक तरंग उत्पन्न कर दी है। उन्होंने सेक्स को एक मौलिक अपराध अथवा पाप बना दिया है और वे कहते हैं:"जब तक सेक्स विलुप्त नहीं हो जाता, तब तक तुम परमात्मा के राज्य में प्रवेश करने में समर्थ न हो सकोगे।" एक अर्थ में वे ठीक हैं, परंतु फिर भी गलत हैं। मैं भी यही कहता हूं कि जब तक सेक्स विलुप्त नहीं होता, तब तक तुम परमात्मा के राज्य में प्रवेश करने में समर्थ न हो सकोगे, लेकिन सेक्स केवल तभी विलुप्त होगा जब तुमने उसे समग्रता से स्वीकार कर लिया होगा और दमन के बिना उसका रूपांतरण कर लिया होगा।
धर्मों ने मनुष्य के भय का और मनुष्य की अहंकार-प्रवृत्ति का शोषण किया है। धर्मों ने दमन की कई अनगिनत तकनीकें निर्मित की हैं। दमन करना बहुत कठिन नहीं है, लेकिन यह बहुत महंगा है, कीमत चुकानी पड़ती है, क्योंकि तुम्हारी पूरी ऊर्जा स्वयं से लड़ने में ही विभाजित हो जाती है और तब तुम्हारा पूरा जीवन बर्बाद हो जाता है।
मैं कहता हूं कि तुम्हारे पास सेक्स ही एकमात्र ऊर्जा है जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस मूलभूत ऊर्जा से लड़ो मत, इससे लड़ना या संघर्ष करना तुम्हारे जीवन और समय दोनों की ही बर्बादी होगी। वस्तुतः इसका रूपांतरण करो। परंतु यह कैसे करें? रूपांतरण कैसे किया जाए? हम इसके लिए क्या कर सकते हैं? यदि तुमने भय को समझ लिया है, तब तुम उस संकेत-सूत्र को भी समझ सकते हो कि क्या किया जा सकता है?
तुम्हारे भीतर भय मौजूद है, तुम अनुभव करते हो कि तुम्हारा नियंत्रण
खो जाएगा और यदि एक बार नियंत्रण खो गया तो फिर तुम कुछ भी नहीं कर सकते हो। मैं तुम्हें एक नई तरह का नियंत्रण सिखलाता हूं, वह नियंत्रण है स्वयं के साक्षी हो जाने का। यह नियंत्रण मन को दमित करने वाला नियंत्रण नहीं है, बल्कि यह तो स्वयं का साक्षी हो जाने वाला नियंत्रण है। मैं तुमसे कहता हूं कि यह संभवतः श्रेष्ठतम नियंत्रण है और इतना सहज है, स्वाभाविक है, प्राकृतिक है, कि तुम कभी भी यह अनुभव नहीं करते कि तुम नियंत्रणकर्ता हो। साक्षी होने के साथ ही यह नियंत्रण सहजता से घटित होता है।
सेक्स में गतिशील हो जाओ, लेकिन साक्षी बने रहो। केवल एक ही चीज़ स्मरण रखनी है कि मुझे पूरी प्रक्रिया का अवलोकन करते रहना होगा। मुझे पूरी प्रक्रिया से गुज़रकर उसे देखना होगा। मुझे पूरी प्रक्रिया का साक्षी बने रहना होगा। मुझे अचेत नहीं होना चाहिए, बेहोश नहीं होना चाहिए। बस इतना ही ख्याल रखो। जंगली बनो, लेकिन अचेत मत बनो। तब उस जंगलीपन में भी कोई खतरा नहीं है, तब वह जंगलीपन भी सुंदर है। वास्तव में, एक जंगली मनुष्य ही सुंदर हो सकता है। एक स्त्री जो सेक्स में जंगली नहीं है, वह सुंदर नहीं हो सकतीक्योंकि वह जितनी अधिक जंगली या प्राकृतिक होती है, वह उतनी ही अधिक जीवंत होती है। तब तुम जंगल में भागते हुए ठीक एक जंगली चीते अथवा एक जंगली हिरण के समान होते हो, उसमें भी एक सौंदर्य होता है।

लेकिन समस्या यह है कि अचेतन नहीं होना है। यदि तुम अचेतन में चले जाते हो, तब तुम अचेतन शक्तियों के दबाव में हो और कर्मबन्ध के प्रभाव में हो। अतीत में तुमने जो कुछ भी किया है, वह वहां एकत्रित है, वह वहां संग्रहित है। वही संग्रहण... वही कंडीशनिंग तुम्हें अपनी पकड़ में ले सकती है और तुम्हें अपनी मनचाही दिशाओं में गतिशील कर सकती है, जो तुम्हारे लिए और दूसरों के लिए खतरनाक होगा। लेकिन यदि तुम साक्षी बने रहते हो तो अतीत की कंडीशनिंग हस्तक्षेप नहीं कर सकती।
इसलिए साक्षी बनने की पूरी विधि अथवा साक्षी रहने की पूरी प्रक्रिया
ही सेक्स ऊर्जा के रूपांतरण की एक प्रक्रिया है। सेक्स में पूर्णता से गतिशील होते हुए भी सजग बने रहो। जो कुछ भी घट रहा है उसका निरीक्षण करो, उसे देखते रहो और एक भी क्षण को चूको मत। जो कुछ भी तुम्हारे शरीर में, तुम्हारे मन में और तुम्हारी आंतरिक ऊर्जा में घटित हो रहा है, जो एक नया वर्तुल उत्पन्न हो रहा है, शरीर की ऊर्जा जो नये ढंग से गतिशील हो रही है और एक नई चक्राकार गति कर रही है, केवल उसके साक्षी बने रहो। अब तुम्हारे शरीर की ऊर्जा तुम्हारे साथी या पत्नी की ऊर्जा के साथ एक हो गई है। अब एक आंतरिक वर्तुल निर्मित हो गया है और तुम उसका अनुभव कर सकते हो। यदि तुम सजग हो तो तुम उसका अनुभव कर सकते हो। तुम अनुभव करोगे कि अब तुम उस महत्त्वपूर्ण और गतिशील काम-ऊर्जा के एक वाहन बन गए हो।
सजग बने रहो। शीघ्र ही तुम अनुभव करोगे कि जितना अधिक यह वर्तुल निर्मित होता जाता है, उतने ही अधिक विचार गिरने लगते हैं, सभी विचार वृक्ष के सूखे पीले पत्तों की भांति नीचे गिर जाते हैं। विचार विलुप्त हो रहे हैं, मन अधिक से अधिक खाली हो रहा है। सजग बने रहो और तुम शीघ्र ही पाओगे कि तुम तो वहां हो, पर वहां कोई भी अहंकार नहीं है। तुम इसे "मैं" नहीं कह सकते। तुम्हें इस "मैं" से भी अधिक सघन और महान, कुछ असाधारण अनुभव घटित हुआ है। तुम और तुम्हारा साथी, दोनों ही उस असाधारण ऊर्जा में घुल-मिलकर एक हो गए हैं।
लेकिन यह एक-दूसरे में लीन होना अचेतन रूप से नहीं होना चाहिए, अन्यथा तुम उद्देश्य से चूक जाओगे। तब यह एक सुंदर सेक्स कृत्य तो होगा, लेकिन रूपांतरण नहीं होगा। यह सुंदर है और इसमें कुछ भी गलत नहीं है, लेकिन यह रूपांतरण नहीं है। यदि यह अचेतन में हुआ है, तब तुम हमेशा ही उस चक्राकार मार्ग पर घूमते रहोगे। बार-बार तुम इसी एक अनुभव से गुज़रना पसंद करोगे। भले ही अपने आप में वह अनुभव बहुत सुंदर है, लेकिन वह एक आदत बन जाएगा। प्रत्येक बार जब भी तुम इस अनुभव का आनंद लोगे तो तुम्हारे भीतर और अधिक कामना उत्पन्न होगी। तुम जितना इस अनुभव का भोग करोगे, उतना ही अधिक कामना से ग्रसित होते जाओगे और इस तरह एक दुष्चक्र में घूमते रह सकते हो। तुम इससे विकसित नहीं होते, तुम केवल चक्र में घूमते रहते हो। चक्राकार गति में लगातार घूमते रहना बुरा है, क्योंकि तब विकास नहीं हो रहा है। तब ऊर्जा पूरी तरह से नष्ट हो रही है। जबकि अनुभव सुखद है परंतु फिर भी समस्त ऊर्जा नष्ट हो गई। इससे कहीं अधिक, इससे कहीं बेहतर, कुछ घटने की संभावना थी। जो अभी घटा है वह तो केवल एक कोना, एक मोड़, एक अंश मात्र था और इससे कहीं अधिक की संभावना थी। इसी ऊर्जा से दिव्य अनुभव को भी प्राप्त किया जा सकता था। इसी ऊर्जा से सर्वोच्च परमानंद को पाना भी संभव था, परंतु तुम उस ऊर्जा को क्षणिक अनुभवों में नष्ट कर रहे हो। धीरे-धीरे ये क्षणिक अनुभव भी, चाहे वे कितने ही सुंदर क्यों न हों, तुम्हें ऊबाउ लगने लगेंगे, क्योंकि प्रत्येक चीज़ की पुनरावृत्ति अंततः एक ऊब बनकर रह जाती है। जब नयापन खो जाता है तो ऊब उत्पन्न होती है।
यदि तुम सजग बने रहते हो, साक्षी बने रहते हो, तो पहला-तुम शरीर में ऊर्जा के परिवर्तनों को देखोगे, दूसरा-तुम मन से विचारों का मिटना देखोगे और तीसरा-तुम हृदय से अहंकार का गिरना देखोगे। इन तीनों चीज़ों का सावधानी से निरीक्षण करना है और जैसे ही यह तीनों स्थितियां घटित हो जाती हैं, तीसरी स्थिति के घटित होते ही, तुम्हारी काम-ऊर्जा पूर्ण रूप से ध्यान ऊर्जा बन जाती है। अब तुम सेक्स की प्रक्रिया में नहीं हो, तुम अपने साथी के साथ, शारीरिक रूप से उपस्थित हो सकते हो परंतु तुम वहां होते ही नहीं हो, तुम एक नूतन संसार में प्रतिरोपित हो जाते हो, केवल तुम्हारा

शुद्ध"होना" ही बचता है। यह तुम्हारा शुद्ध"होना" वही है, जिसके बारे में भगवान शिव "विज्ञान भैरव-तंत्र" और तंत्र की अन्य पुस्तकों में कहते हैं। भगवान शिव निरंतर इस तथ्य के बारे में बात करते हैं कि तुम्हारा स्वरूप ही बदल जाता है और तुम आमूल रूपांतरित हो जाते हो, परिवर्तन घटित होता है। और यह परिवर्तन साक्षी के द्वारा घटित होगा।
यदि तुम दमन का अनुसरण करते हो तो दमन के द्वारा तुम एक तथाकथित मनुष्य बन सकते हो, जो भीतर से नकली होगा, खोखला होगा, उथला होगा, दिखावटी होगा, झूठा होगा और अप्रामाणिक होगा। यदि तुम दमन का अनुसरण नहींकरते हो और विलासिता तथा अतिशय भोग का अनुसरण करते हो तो तुम जानवर की भांति हो जाओगे, प्राकृतिक एवं वास्तविक। ऐसे में तुम तथाकथित सभ्य और खोखले मनुष्य की अपेक्षा प्रामाणिक तो बन पाओगे, लेकिन फिर भी वहां पशुता ही रहेगी, जिसे मनुष्य में छुपी हुई संभावित शक्ति और उसके विकास की संभावना का बोध ही नहीं है... पशुता जो सजग नहीं है, जागरूक नहीं है।
यदि तुम ऊर्जा का रूपांतरण करते हो, तब तुम दिव्य और आलौकिक बनते हो
और स्मरण रहे, जब मैं कहता हूं-"दिव्य" तो इसमें दोनों ही बातें समाहित हैं... वहां एक जंगली जानवर भी मौजूद है जो अपने अस्तित्व के, अपने होने के, समग्र सौंदर्य के साथ है और यह जंगली जानवर अस्वीकृत और तिरस्कृत नहीं है। वह अपनी पूर्ण समृद्धि के साथ वहां मौजूद है, क्योंकि वह अब सजग भी है। इसलिए भीतर का वह नैसर्गिक जानवर, उसकी प्रचंडता और उसका सौंदर्य वहां मौजूद है। और थोपी हुई सभ्यता जो अब तक दमन कर रही थी, वह भी स्वतंत्र है, वह अब स्वयं प्रवर्तित है, वह विवश नहीं है। एक बार यदि ऊर्जा का रूपांतरण हो जाता है, तो तुम्हारे भीतर ही प्रकृति और परमात्मा दोनों का मिलन होता है, शिव और शक्ति दोनों का मिलन होता है। तुम्हारे भीतर ही प्रकृति की ऊर्जा अपने पूर्ण सौंदर्य के साथ और परमात्मा की ऊर्जा अपनी पूर्ण अनुकंपा के साथ एकदूसरे में विलय हो जाते हैं।
ऋषि, ज्ञानी या साधु का यही अर्थ होता है कि वह प्रकृति और परमात्मा
का सम्मिश्रण है, उसके भीतर सृष्टि और सृष्टा का मिलन हुआ है, उसके भीतर शरीर और आत्मा का मिलन हुआ है। साधु वही है जिसके भीतर निम्नतम और श्रेष्ठतम दोनों ही सध गए हैं, सम हो गए हैं। ज्ञानी के भीतर पृथ्वी और आकाश का मिलन घटित होता है।
लाओत्सु ने भी यही कहा है:"ताओ तब घटित होता है जब पृथ्वी और आकाश मिलते हैं।" यही सच्चा मिलन है।
मौलिक स्रोत है:साक्षी होना। परंतु सेक्स के कृत्य में साक्षी होना बहुत कठिन प्रतीत होगा, यदि तुम जीवन के अन्य कृत्यों में साक्षी होने का प्रयास नहीं करोगे। इसलिए पूरे दिन-भर इसका प्रयास करो अन्यथा तुम स्वयं को ही धोखा दोगे, आत्म-प्रवंचना में पड़ जाओगे। यदि तुम सड़क पर टहलते हुए साक्षी नहीं रह पाते हो, तो स्वयं को धोखा देने का प्रयास मत करो क्योंकि तब तुम प्रेमालाप के समय भी साक्षी नहीं रह सकते हो। यदि सड़क पर टहलने जैसी एक सामान्य प्रक्रिया के प्रति भी तुम साक्षी नहीं रह सकते और तुम उसमें बेहोश हो जाते हो, अचेतन हो जाते हो, तोप्रेम जैसे कृत्य में फिर तुम कैसे साक्षी बने रह सकते हो? प्रेम तो एक गहरी प्रक्रिया है, इसमें तुम्हारे गिरने की, बेहोशी में जाने की संभावना अधिक है।
तुम सड़क पर टहलते समय भी जागरूक नहीं रह पाते हो। प्रयास करके देखो, कुछ ही क्षणों में तुम भूल जाते हो कि तुम चल रहे हो। सड़क पर टहलते हुए बस इतना प्रयास करो कि मैं यह याद रखूंगा कि मैं चल रहा हूं, केवल चल रहा हूं, मैं केवल चल ही रहा हूं। परंतु कुछ ही क्षणों में तुम यह भूल जाते हो और मन में कुछ अन्य विचार चलने लगते हैं, विचारों का विस्फोट हो जाता है और तुम किसी दूसरी ही दिशा का अनुसरण कर लेते हो, और अपनी क्रिया को पूरी तरह भूल जाते हो। अचानक तुम्हें याद आता है कि मैं भूल गया था, भटक गया था, साक्षी होना भूल गया हूं। इसलिए यदि टहलने जैसे छोटे से कृत्य में तुम सचेत नहीं रह सके, तोप्रेमालाप जैसे गहन कृत्य को सचेतन ध्यान बनाना मुश्किल होगा। इसलिए सामान्य चीज़ों से और साधारण क्रिया-कलापों से प्रयास शुरू करो। भोजन करते हुए इसका प्रयास करो। टहलते हुए इसका प्रयास करो। बातचीत के दौरान अथवा कुछ भी सुनते वक्त इसका प्रयास करो। प्रत्येक दिशा में

इसका प्रयास करो। तुम्हारे भीतर निरंतर एक चोट होती रहे, तुम्हारे संपूर्ण शरीर और मन को यह जान लेने दो कि तुम निरंतर सजग बने रहने का प्रयास कर रहे हो। केवल तभी, किसी दिन प्रेम में भी साक्षी घटित हो सकेगा। और जब ऐसा होगा तो तुम्हें परमानंद की झलक मिलेगी। उस क्षण में दिव्यता की पहली झलक तुम पर अवतरित होती है। उस क्षण के बाद, फिर कामक्रीड़ा किसी भी प्रकार से केवल कामक्रीड़ा नहीं रह जाती है, तब कभी न कभी, यह विलुप्त हो ही जाएगी। सेक्स का इस प्रकार, बिना किसी दमन के विलुप्त होना ही ब्रह्मचर्य है और तब तुम एक ब्रह्मचारी बन जाते हो।
कैथोलिक मठों में साधु और साध्वियां, जैन धर्म के परंपरावादी मुनि और ऐसे ही कई अन्य तथाकथित संन्यासी केवल नाम के ही ब्रह्मचारी होते हैं, क्योंकि उनके मन में, एक साधारण संसारी की अपेक्षा कहीं अधिक प्रेम-संबंधी विचार चलते रहते हैं। उनके लिए सेक्स एक मानसिक-चिंतन बन जाता है जो मनुष्य मन की सर्वाधिक हानिप्रद संभावना है क्योंकि यह एक विकृति है, एक विकार है, एक दोष है। यदि तुम सेक्स के बारे में चिंतन करते रहते हो तो यह एक विकृति है। प्रेमालाप करना सहज है, स्वाभाविक है, लेकिन निरंतर, मन में उसका विचार करते रहना, उसमें उलझे रहना, एक विकृति है। ये तथाकथित साधु विकृत चित्त के लोग हैं, इसलिए नहीं कि वे साधु हैं, बल्कि इसलिए कि उन्होंने दमन का मार्ग चुना है, जो एक गलत मार्ग है, जो कहीं भी नहीं ले जाता है।
जीसस, महावीर और बुद्ध ने साक्षी के मार्ग का अनुसरण किया। तभी ब्रह्मचर्य सहजता से घटित होता है। यह ब्रह्मचर्य शब्द बहुत सुंदर है। इस प्रामाणिक शब्द का अर्थ है:दिव्य सत्ता का आचरण या ब्रह्म का आचरण अर्थात वह आलौकिक दिव्य सत्ता या ब्रह्म सत्ता जिस ढंग से आचरण करती है, वही ब्रह्मचर्य है। यह शब्द "ब्रह्मचर्य" कदापि सेक्स के विरुद्ध नहीं है, इसमें कुछ भी सेक्स के विरुद्ध नहीं है। यह शब्द साधारण रूप से केवल इतना ही भाव व्यक्त करता है कि वह परम तत्व या ब्रह्म तत्व किस प्रकार कार्य करता है, आचरण करता है और गतिशील होता है। यदि एक बार तुम सतोरी के अनुभव को जान लेते हो, जो सेक्स कृत्य में साक्षी होने के द्वारा जाना जा सकता है, तो तुम्हारा पूरा जीवन रूपांतरित हो जाएगा और तुम परमात्मा की भांति आचरण करना शुरू कर दोगे।
परमात्मा के आचरण के क्या लक्षण होते हैं, परमात्मा के व्यवहार की क्या विशेषताएं होती हैं? वह दिव्य तत्व कैसे आचरण करता है? पहली बातः वह आश्रित नहीं है, वह पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। वह अपना प्रेम तुम्हें देता है, लेकिन यह उसकी आवश्यकता नहीं है। वह अपने अथाह भंडार से तुम्हें बेशर्त देता है। उसके पास प्रचुर मात्रा में है, बस इसलिए वह बांटता है। यदि तुम उसके प्रेम को ग्रहण करते हो तो तुम निश्चित ही उसे भारहीन करते हो, लेकिन यह भी उसकी आवश्यकता नहीं है। परमात्मा एक सृष्टा है, जब तुम्हारी सेक्स ऊर्जा रूपांतरित होकर एक दिव्य-शक्ति बनती है, तब तुम्हारा जीवन सृजनात्मक बन जाता है। सेक्स एक सृजनात्मक शक्ति है। साधारणतः यह जैव-विज्ञान के ढंग से गतिशील होती है, यह नए प्राणियों का सृजन करती है, यह नए जीव को जन्म देती है। परंतु जब सेक्स नहीं होता है तो वही ऊर्जा रूपांतरित हो रही है, ऊर्ध्वगामी हो रही है और तब वह सृजनात्मकता के एक नए संसार में गतिशील हो जाती है और सृजनात्मकता के अनेक नए आयाम तुम्हारे लिए खुल जाते हैं।
ऐसा नहीं है कि तुम अचानक चित्र बनाना शुरू कर दोगे या कविता लिखने लगोगे या ऐसा ही कोई अन्य कार्य करोगे। ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी। लेकिन तुम जो कुछ भी करोगे, वह एक सृजनात्मक कार्य बन जाएगा। तुम जो कुछ भी करोगे वह कलात्मक हो जाएगा। यहां तक कि जब बुद्ध बोधि-वृक्ष के नीचे बैठे हैं और कुछ भी कार्य नहीं कर रहे हैं, तब भी उनका वह बैठना ही सृजनात्मक है। वह जिस ढंग से बैठे हैं, जिस प्रामाणिकता से बैठे हैं, उससे उनके चारों ओर एक सृजनात्मक शक्ति, एक ऊर्जा और एक विधायक तरंग निर्मित होती है।
अभी हाल ही में मिस्र के पिरामिडों पर बहुत शोध किया गया है और उस शोध में अनेक रहस्यमय तथ्यों का पता चला है। उन तथ्यों में से एक यह है कि पिरामिड की आकृति, उसकी विशिष्ट आकृति अत्यंत रहस्यात्मक है। अचानक,

वैज्ञानिक इस सत्य के प्रति सचेत हुए हैं कि यदि पिरामिड में एक मुर्दा शरीर रख दिया जाए तो वह बिना किसी रसायनिक लेप के भी संरक्षित रह सकता है, केवल उस पिरामिड की आकृति ही उसे सुरक्षित और संरक्षित रखने में मदद करती है।
तब जर्मनी के एक वैज्ञानिक ने सोचा कि यदि आकृति द्वारा इतना कुछ संभव है कि एक मुर्दा तक संरक्षित रह सकता है। केवल आकृति के प्रभाव से ही संरक्षण संभव है... तब उसने अपने रेज़़र ब्लेड पर इस तकनीक को आजमाया। उसने गत्ते का एक छोटा-सा पिरामिड बनाया और अपने इस्तेमाल किए हुए रेज़र ब्लेड को उसमें रखा। कुछ ही घंटों में वह रेज़र ब्लेड पुनः धारदार हो गया और प्रयोग के लिए पुनः तैयार भी। पिरामिड की आकृति ने ही ब्लेड को वह पैनापन दिया था। तब उस जर्मन वैज्ञानिक ने इस प्रयोग को पेटेंट कराया। एक ही रेज़र ब्लेड पूरे जीवन भर प्रयोग किया जा सकता है, केवल यदि तुम उसे पिरामिड में रख दो, अन्य कुछ भी नहीं करना है, केवल पिरामिड की आकृति ही उसे बार-बार पैनापन देती है। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रत्येक विशिष्ट आकृति, एक विशिष्ट वातावरण को... एक विशिष्ट परिवेश को सृजित करती है।
भगवान बुद्ध जो बोधि वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं; वह जिस ढंग से बैठते हैं, वह जिस मुद्रा और भाव-भंगिमा से बैठते हैं, उनके अस्तित्व की वह निरअहंकारी और प्रामाणिक स्थिति ही, चारों ओर लाखों तरंगों को सृजित कर रही है। ये तरंगें चारों ओर फैलती चली जाएंगी। यहां तक कि जब बुद्ध इस वृक्ष के नीचे से विलुप्त हो गए, तब भी ये तरंगें दूर-दूर तक फैलती रहेंगी, ये तरंगे अन्य ग्रहों और सितारों तक का स्पर्श करेंगी। जहां कहीं भी एक बुद्ध की तरंगें स्पर्श करती हैं, वहां एक सृजन होगा, वहां उमंग होगी, वहां रोमांच होगा और एक ताजी हवा का झोंका होगा।
जब सेक्स की ऊर्जा रूपांतरित होती है तो तुम्हारा पूरा जीवन सृजनात्मक हो जाता है:मुक्त, स्वतंत्र और रचनात्मक हो जाता है। तुम जो कुछ भी करते हो, इसी ऊर्जा के द्वारा सृजित होता है। यदि तुम कुछ भी नहीं करते हो तो वह अक्रिया भी सृजनात्मक बन जाती है। केवल तुम्हारा शुद्धतम होना ही, तुम्हारा अस्तित्व मात्र ही ऐसा अद्भुत सृजन कर देता है, जो सत्यम्-शिवम्-सुंदरम होता है।
अब उसी कहानी पर लौट चलते हैं जिसमें प्रौढ़ भिक्षु उस युवा भिक्षु से कहता है:"तुम्हें नदी तट पर उस लड़की का स्पर्श नहीं करना चाहिए था और यह मठ के नियमों के विरुद्ध है। यह केवल कहने के लिए नहीं है, बल्कि ऐसा नियम बनाया गया है।" इस कथन में अनेक चीज़ें निहित हैं, वह तर्क संगत व्याख्या कर रहा है क्योंकि वह ईर्ष्या का अनुभव कर रहा है। मनुष्य का मन इसी तरह से काम करता है। तुम प्रत्यक्ष रूप से कभी नहीं कह सकते कि तुम ईर्ष्या का अनुभव कर रहे हो।
एक युवती, एक सुंदर युवती नदी के तट पर खड़ी हुई थी। धीरे-धीरे सूर्यास्त हो रहा है, वह युवतीभयभीत थी, तभी वह प्रौढ़ भिक्षु आया, जो अपने मठ की ओर जा रहा था। उसने लड़की की ओर देखाक्योंकि एक भिक्षु के लिए भी एक सुंदर लड़की की उपस्थिति को नज़रअंदाज करना और उसकी ओर न देखना बहुत कठिन होता है। भिक्षु के लिए ऐसा करना कठिन था क्योंकि बहुत गहरे में वह स्त्री के प्रति आवेशित था। वह स्वयं से संघर्ष कर रहा है। वह निरंतर सचेत है कि स्त्री के रूप में सामने एक शत्रु मौजूद है। तुम यदा-कदा एक मित्र से चूक सकते हो, लेकिन तुम एक शत्रु से कभी भी नहीं चूक सकते, तुम उसे अवश्य ही देखोगे। यदि तुम एक सड़क से गुज़र रहे हो और शत्रु वहां सामने खड़ा है तो उसकी ओर न देखना असंभव है। तुम जागरूक हुए बिना, उस सड़क पर उपस्थित मित्रों को अनदेखा कर सकते हो परंतु शत्रु को नहीं क्योंकि शत्रु के साथ भय है। और एक सुंदर युवती, बिल्कुल अकेली खड़ी हुई है, वहां कोई अन्य व्यक्ति नहीं है और वह युवती सहायता भी चाह रही है, क्योंकि नदी उसके लिए अनजानी थी और वह उसे पार करने में भयभीत हो रही थी।
इस प्रौढ़ भिक्षु ने अनिवार्य रूप से अपनी आंखों को बंद करने का प्रयास किया होगा, उसने अनिवार्य रूप से अपने हृदय के द्वार को भी बंद करने का प्रयास किया होगा और उसने अनिवार्यतः अपने कामकेंद्र को भी अवरूद्ध करने का प्रयास किया होगा, क्योंकि युवती के रूप में उस शत्रु के

विरुद्ध केवल यह ही सुरक्षा की जा सकती थी। वह निश्चित ही तेजी से आगे बढ़ गया होगा और उसने पीछे मुड़कर देखने का साहस नहीं किया होगा। परंतु जब तुम बचना चाहते हो तब ही बार-बार देखते हो। तुम प्रयास करते हो कि न देखा जाए पर तब भी तुम देख रहे होते हो। उस भिक्षु का पूरा मन उस युवती के प्रति आवेशित था। उसका पूरा अस्तित्व युवती के चारों ओर ही घूम रहा था। वह नदी को पार तो कर रहा था, लेकिन वह उस समय नदी के प्रति सचेत नहीं था और वह हो भी नहीं सकता था। वह मठ की ओर तो जा रहा था लेकिन अब उसे मठ में कोई रुचि नहीं थी, उसकी गहन रूचि तो पीछे ही छूट गई थी।
तब अचानक उसे याद आता है कि उसका दूसरा साथी, दूसरा भिक्षु, युवा भिक्षु भी पीछे आ रहा है। वे दोनों भिक्षा मांगने के लिए मठ से निकले थे। वह तत्काल ही पीछे मुड़ता है और देखता है कि उस युवा भिक्षु के कंधो पर वह सुंदर युवती नदी पार कर रही है। उन दोनों की इस नज़दीकी ने अनिवार्य रूप से उस प्रौढ़ भिक्षु के मन में एक गहन ईर्ष्या उत्पन्न कर दी। यही कृत्य वह स्वयं करना चाहता था परंतु नियमों के बंधन के कारण वह ऐसा नहीं कर सका। इसलिए उसमें प्रतिशोध का बीज पैदा हो गया। वे दोनों वापिस मठ की ओर आते हुए, मीलों तक साथ-साथ चले परंतु मौन बने रहे और मठ के द्वार पर पंहुचते ही वह प्रौढ़ भिक्षु बोल उठा- "वह ठीक नहीं था, वह नियम के विरूद्ध था।"
उसका वह मौन नकली था। मीलों तक एक साथ चलते हुए वह प्रौढ़ भिक्षु केवल प्रतिशोध लेने के बारे में ही सोच रहा था कि कैसे बदला लिया जाए? कैसे इस युवा भिक्षु को निंदित किया जाए? वह निरंतर प्रतिशोध के उन्माद में था अन्यथा अचानक कुछ भी घटित नहीं होता है। मन एक श्रंखला निर्मित करता है, मन में विचारों की निरंतरता बनी रहती है। उन दो अथवा तीन मीलों की यात्रा में वह निरंतर यही सोच रहा था कि आखिर क्या किया जाए? और तब वह अचानक बोल उठता है। यह बोलना अचानक नहीं है। अंदर विचारों का एक लगातार और तीव्र प्रवाह बना ही हुआ था और तब वह कहता है:"यह ठीक नहीं है। यह नियमों के विरुद्ध है और मुझे मठाधीश से, मठ के संचालक से और गुरु से इसकी शिकायत करनी होगी। तुमने एक नियम को तोड़ा है, जो एक प्रामाणिक और आधारभूत नियम है कि किसी भी भिक्षु को एक स्त्री का स्पर्श नहीं करना चाहिए। तुमने न केवल उसका स्पर्श किया है, बल्कि तुमने उसे अपने कंधों पर भी उठाए रखा है।" युवा भिक्षु ने अनिवार्य रूप से आश्चर्य किया होगा, उसे हैरत हुई होगी क्योंकि अब वहां कोई भी युवती थी ही नहीं, न ही कोई नदी थी और न कोई किसी को उठाए हुए था। वह पूरी घटना तो अतीत में घटित हुई थी। तीन मील तक निरंतर चलते हुए तो वे मौन बने रहे थे।
तब उस युवा भिक्षु ने कहा:"मैंने तो उस युवती को नदी के पार दूसरे तट
पर तभी छोड़ दिया था, लेकिन लगता है आप उसे अभी भी साथ लिए हुए चल रहे हैं।" यह एक गहन अंतर्दृष्टि है। तुम उन चीज़ों को भी साथ लिए हुए चल सकते हो,
जो वास्तव में अभी है ही नहीं; तुम उन चीज़ों के व्यर्थ भार को भी ढोए चले जाते हो, जिनका अस्तित्व ही नहीं है; तुम स्वयं को उन सब चीज़ों से कुचल डालते हो जिनका कोई वजूद ही नहीं है। वह प्रौढ़ भिक्षु दमन के मार्ग पर है। वह युवा भिक्षु रूपांतरण की ओर किए गए प्रयास का एक प्रतीक हैक्योंकि रूपांतरण स्त्री, पुरुष अथवा किसी को भी स्वीकार करता है। चूंकि रूपांतरण दूसरे के द्वारा ही घटित होना है, दूसरा रूपांतरण के लिए माध्यम बनता है, इसलिए दूसरा भी उसमें अवश्य भाग लेगा। दमन करने पर या संवेगों पर प्रतिबंध लगाने से दूसरे का अर्थात उस माध्यम का तिरस्कार होता है। दमन, दूसरे को अस्वीकार करता है। दमन, दूसरे का विरोध करता है। उस दूसरे को नष्ट होना ही होगा।
यह कहानी बहुत सुंदर है। युवा भिक्षु की गहन अंतरदृष्टि ही वास्तव में सही मार्ग है। प्रौढ़ और वृद्ध भिक्षु की भांति मत बनो, युवा और नूतन बनो। जीवन जैसा भी है, उसे स्वीकार करो और साथ ही सजग बने रहने का भी प्रयास करो। यह युवा भिक्षु निश्चित रूप से उस युवती को अपने कंधों पर लिए हुए भी सजग और सचेत रहा होगा और यदि तुम सजग हो तो वह युवती भला क्या कर सकती है? वह दूसरा माध्यम भला क्या कर सकता है?
इस बारे में एक छोटा सा प्रसंग और भी है। एक भिक्षु बुद्ध को छोड़कर, उनके संदेशों का प्रसार करने के लिए यात्रा पर जा रहा है। इसलिए वह बुद्ध

से पूछता है कि स्त्रियों के बारे में मुझे क्या करना चाहिए? भिक्षुओं के साथ हमेशा से ही यह बात एक समस्या बनी रही है।
बुद्ध कहते हैं:"उनकी तरफ देखो ही मत।" यह एक अत्याधिक सरल मार्ग है।
बस स्वयं को बंद कर लो। उनकी ओर जाओ ही मत, बस तुम अपने को मोड़ लो। अपने को बंद करने का अर्थ है कि स्वयं के भीतर उठते संवेगों का दमन कर लेना और भूल जाना कि कोईस्त्री मौजूद है। लेकिन विडम्बना यही है कि यह इतना आसान नहीं है। यदि ऐसा कर पाना इतना ही आसान होता तो वे सभी लोग जो अपने को बंद कर लेना जानते हैं, अभी तक रूपांतरित हो गए होते।
बुद्ध का एक शिष्य "आनंद" जानता है कि यह समस्या इतनी अधिक सरल नहीं है। बुद्ध के लिए यह सरल हो सकती है, लेकिन अन्य भिक्षुओं के लिए यह एक विकट समस्या है। यदि तुम मेरे पास एक समस्या के साथ आते हो तो वह मेरे लिए बहुत ही आसान सी बात हो सकती है, लेकिन उससे तुम्हें कोई भी सहायता नहीं मिलेगी। अतः आनंद जानता है कि बुद्ध ने सहज रूप से उत्तर दिया है:"उनकी ओर देखो ही मत" और यह बुद्ध के लिए बहुत सरल है। इसलिए आनंद कहता है कि यह इतना आसान तो नहीं है। इसीलिए वह पूछता है:"भगवान! यदि कभी ऐसी स्थिति हो, जहां हमें स्त्री को देखना ही पड़े और हम उसे देखने से बच न पाएं, तब क्या करना होगा"
बुद्ध कहते हैं:"उनको स्पर्श मत करो।" क्योंकि देखना भी आंखों के द्वारा स्पर्श करना है। तुम आंखों के द्वारा किसी के पास पहुंचकर मन ही मन उन्हें छूते हो। इसी कारण यदि तुम किसी स्त्री की ओर टकटकी लगाकर, उसे तीन क्षणों से अधिक देर तक देखते हो तो वह स्त्री बेचैन हो उठेगी। देखने की अधिकतम सीमा की अनुमति तीन सेकेंड तक की है। यह अनुमति इसलिए है, क्योंकि जीवन के क्रिया-कलापों में हमें एक दूसरे को देखना होता है, लेकिन तीन क्षणों से अधिक देखे जाने पर स्त्री बेचैन हो उठेगी क्योंकि तुम उसे आंखों के द्वारा गहनतम गहराई से छू रहे हो। अब तुम अपनी आंखों का प्रयोग अपने हाथों की भांति कर रहे हो। बुद्ध इसलिए कहते हैं:"उनका स्पर्श मत करना।"
लेकिन आनंद दृढ़तापूर्वक, अनवरत पूछता ही रहा। आनंद ने पूरी मनुष्यता
के लिए एक महान कार्य किया है, क्योंकि वह बुद्ध से हमेशा दृढ़तापूर्वक आग्रह करते हुए प्रश्न पूछता था। अब वह कहता है:"कभी-कभी ऐसी भी स्थितियां हो सकती हैं, जब हमें उनका स्पर्श करना ही पड़े, तब आप क्या कहेंगे? यदि एक स्त्री रुग्ण है अथवा एक स्त्री चोट खाकर सड़क पर गिर पड़ी है और वहां सहायता करने के लिए अन्य कोई नहीं है और हमें उसका स्पर्श करना ही पड़े, ऐसी परिस्थिति में क्या करना चाहिए"
बुद्ध हंसते हैं और कहते हैं:"तब सजग बने रहना।" बुद्ध जो अंतिम बात कहते हैं, दरअसल वही प्रथम है। केवल आंखें बंद करने से कुछ भी नहीं होगा, केवल न छूने से कुछ भी नहीं होगा क्योंकि तुम कल्पना में देख सकते हो, तुम कल्पना में ही स्पर्श कर सकते हो। तब एक वास्तविक स्त्री या वास्तविक पुरूष की आवश्यकता ही नहीं है। केवल आंखें बंद कर लेने मात्र से ही तुम अपने भीतर स्त्रियों और पुरुषों का एक काल्पनिक संसार निर्मित कर सकते हो, उन्हें देख सकते हो और उन्हें स्पर्श भी कर सकते हो। अंतिम रूप से, केवल एक ही चीज़ सहायता कर सकती है और वह है:सजग बने रहो।
हो सकता है, इस वृद्ध भिक्षु ने बुद्ध के तीन उत्तरों वाली यह कहानी पूरी न सुनी हो। वह प्रथम दो उत्तरों के साथ ही अडिग बना रहा। युवा भिक्षु ने पूरी बात समझ ली थी कि सजग बने रहना है। वह युवा भिक्षु निश्चित ही उस युवती के समीप आया होगा, यह भी स्वाभाविक है कि कामना उत्पन्न हुई होगी परंतुफिर भी वह जागरूक बना रहा कि उसके भीतर कामना उत्पन्न हो गई है। मुख्य समस्या वह युवती नहीं है, क्योंकि एक युवती कैसे तुम्हारी समस्या बन सकती है? वह युवती स्वयं अपने लिए समस्या बन सकती है परंतु वह तुम्हारी समस्या नहीं है। कामना तो तुम्हारे अंदर उत्पन्न होती है, स्त्री के लिए वासना तुम्हारे भीतर उत्पन्न होती है:यही समस्या है। युवती का तो कहीं कोई प्रश्न ही नहीं उठता। कोई भी युवती, कोई भी स्त्री हो तो यही समस्या होगी। यहां युवती तो केवल प्रासंगिक है। मुख्य बात तो यह है कि युवती के माध्यम से तुम्हारे भीतर कामना उत्पन्न हो गई और ऐसे में सजग बने रहने का

अर्थ है, इस उठती हुई कामना के प्रति सजग बने रहना कि यह कामना मेरे भीतर उत्पन्न हो गई है।
अब एक व्यक्ति जो अपने संवेगों का प्रतिरोध कर रहा है, जो दमन के मार्ग पर है, वह इस कामना का दमन करेगा, वह उस विषय-वस्तु के प्रति अपनी आंखें बंद कर लेगा, वह दूर भागेगा। यह पीछा छुड़ाने की या पलायन की विधि है। लेकिन तुम भागकर कहां जा सकते हो? क्योंकि तुम तो स्वयं से ही भाग रहे हो। तुम नदी के तट पर खड़ी हुई उस स्त्री से दूर भाग सकते हो, लेकिन तुम उस कामना से दूर नहीं भाग सकते, जो तुम्हारे ही भीतर उत्पन्न हो रही है। तुम जहां कहीं भी जाते हो, वह कामना वहां तक तुम्हारा पीछा करेगी। अब केवल इस तथ्य के प्रति जागो कि कामना उत्पन्न हो गई है। वास्तव में, उस स्त्री के साथ कुछ भी नहीं करना है। यदि वह कहती है:"मेरी सहायता कीजिए" तो उसकी सहायता करो। यदि वह कहती है:"मैं भयभीत हूं और मैं इस नदी को पार नहीं कर सकती हूं, कृपया मुझे अपने कंधों पर बिठाकर ले चलिए" तो उसे कंधों पर बिठाकर नदी के पार ले जाओ। वह तुम्हें सजग बने रहने का एक सुनहरा अवसर दे रही है। उसके प्रति कृतज्ञ बनो। और उस युवती के माध्यम से, जो कुछ भी तुम्हारे अंदर घटित हो रहा है, उसका अनुभव करो, उसके प्रति सजग और सचेत बने रहो। तुम्हारे अंदर क्या घटित हो रहा है? तुम युवती को कंधों पर उठाकर ले जा रहे हो तब तुम्हारे अंदर क्या हो रहा है?

यदि तुम सजग और सचेत हो तो वहां कोई भी स्त्री नहीं है, केवल तुम्हारे कंधों पर थोड़ा सा भार है और कुछ भी नहीं है। यदि तुम सजग नहीं हो पाते हो, तब वहां एक स्त्री है। यदि तुम सजग हो तो वह केवल हड्डियों का एक ढांचा है, एक दबाव है, एक भार है। यदि तुम सजग नहीं हो, तब वहां वह सब कुछ है, जिसे कामना सृजित कर सकती है:कल्पना, माया या भ्रांति... सब कुछ वहां है। इस प्रकार एक युवती को कंधों पर ले जाते हुए, ये दोनों संभावनाएं मौजूद हैं। यदि तुम एक क्षण के लिए भी अपनी सजगता खोते हो तो अचानक पाओगे कि माया तुम्हारे कंधों पर बैठी हुई है। यदि तुम सजग हो तो केवल थोड़ा सा भार ढो रहे हो और कुछ भी नहीं है।
यह युवा भिक्षु जो नदी पार कर रहा था, वह एक महान अनुशासन से होकर गुज़र रहा था। वह स्थिति से बचकर दूर नहीं भाग रहा था, वह जीवन की घटना से दूर नहीं भाग रहा था। बल्कि वह सजग और सचेत मन के साथ उस घटना से होकर गुज़र रहा था। हो सकता है कि कई बार वह इस प्रयोग में विफल हुआ हो। हो सकता है कि कई बार वह पूरी तरह से इस सजगता को भूल ही गया हो। कभी वह संपूर्ण भ्रांति और माया के साम्राज्य से घिर गया हो। ऐसा भी हो सकता है कि कई बार चेतनता के प्रकाश की अचानक कौंध से उसने अपनी सजगता को पुनः प्राप्त किया हो और अंधकार विलुप्त हो गया हो। परंतु निश्चित रूप से इस सजगता का अनुभव करना बहुत ही सुंदर रहा होगा।
तब उस युवा भिक्षु ने उस लड़की को दूसरे किनारे पर पहुंचा दिया, उसे कंधे से नीचे उतारा और उसने अपने मठ की ओर चलना प्रारंभ कर दिया, पर वह अभी भी सजग थाक्योंकि प्रश्न यह नहीं है कि कोईस्त्री मौजूद है या नहीं क्योंकि स्मृति में भी स्त्री का अनुसरण किया जा सकता है। नदी पार करते हुए यह हो सकता है कि उसने उस स्त्री के स्पर्श का सुख न लिया हो, लेकिन अब बाद में, अपनी स्मृतियों में वह उसका सुख ले सकता है।
पर वह अनिवार्य रूप से, हर क्षण में सजग बना रहा। वह मौन था और उसका मौन प्रामाणिक था। सच्चा मौन हमेशा सजगता के द्वारा ही आता है। इसी कारण उसने कहा:"मैंने तो उस लड़की को बहुतपीछे नदी पर ही छोड़ दिया। मैं उसे अभी भी अपने ऊपर लादकर नहीं चल रहा हूं, पर आप अभी भी उसे अपने साथ लिए हुए चल रहे हैं।" वृद्ध भिक्षु के मन में विचारों की श्रंखला निरंतर चल रही थी जबकि उसने कुछ भी नहीं किया था, यहां तक कि उसने उस युवती का स्पर्श भी नहीं किया था।
इसलिए प्रश्न कुछ करने का नहीं है, प्रश्न है मन का... कि तुम्हारा मन कैसे कार्य कर रहा है? सजग बने रहो और धीरे-धीरे ऊर्जा रूपांतरित होती है।
जो पुराना है, वह मरता है और उसके स्थान पर नए का जन्म होता है।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
सातवां प्रवचन

संबंधों का रहस्य

पहला प्रश्नः
ओशो! अपने जीवन साथियों जैसे पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका के बारे में कब तक हमें धैर्य के संगउसका साथ निभाते हुए, संबंध में दृढ़ता से बने रहना चाहिए और कब हमें उस संबंध को निराश अथवा विध्वंसात्मक मानकर छोड़ देना चाहिए? क्या हमारे संबंध हमारे पिछले जन्मों से भी प्रभावित होते हैं?

संबंध अनेक रहस्यों में से एक हैं और क्योंकि वे दो व्यक्तियों के मध्य होते हैं, इसलिए वह दोनों पर निर्भर करते हैं। जब भी दो व्यक्ति मिलते हैं, एक नया संसार सृजित होता है। केवल उनके मिलन के द्वारा ही एक नवीन तथ्य सृजित हो जाता है, जो पहले वहां नहीं था, जो कभी भी अस्तित्व मेंनहीं था। और इस नई घटना के द्वारा दोनों व्यक्ति बदलकर, रूपांतरित हो जाते हैं।
किसी से संबंधित न होने पर तुम एक भिन्न व्यक्तित्व होते हो और किसी
से संबंधित हो जाने पर तुम अचानक ही कुछ और हो जाते हो, जैसे कुछ नयापन घटित होता है। एक स्त्री जब प्रेमिका बनती है तो वह वही पहले वाली स्त्री नहीं रह जाती है। एक पुरुष, जब एक पिता बनता है, तो वह पहले जैसा पुरूष नहीं रहता है। एक बच्चा जब जन्म लेता है, तब हम एक महत्त्वपूर्ण बिंदु को बिल्कुल भूल जाते हैं कि जिस क्षण बच्चा जन्म लेता है उसी क्षण में एक मां का भी तो जन्म होता है। वह पहले केवल एक साधारण स्त्री थी, लेकिन वह मां कभी भी नहीं थी। मां बनते ही वह स्त्री पूर्णतः बदल जाती है, वह पूरी तरह से एक नईस्त्री होती है।
संबंध तुम्हारे द्वारा सृजित होते हैं परंतु बाद में, उन्हीं संबंधों
के द्वारा तुम्हारा सृजन होता है। दो व्यक्ति मिलते हैं, इसका अर्थ है कि दो संसार मिलते हैं। यह कोई सरल चीज़ नहीं है, बल्कि बहुत ही जटिल, यहां तक कि अत्याधिक जटिल चीज़ है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में एक अवर्णित संसार होता है, उसके पास एक लंबे अतीत और एक शाश्वत भविष्य का जटिल रहस्य होता है।
प्रारंभ में केवल परिधियां अथवा बाह्य भाग ही मिलते हैं, लेकिन यदि कोई संबंध आत्मीयता में विकसित हो, उसमें निकटता घनिष्ठ हो जाए, वह संबंध गहरा होने लगे तोधीरे-धीरे उनके केंद्र भी मिलना शुरू हो जाते हैं। जब केंद्र मिलते हैं तो उसे प्रेम कहा जाता है। जब परिधियां मिलती हैं तो वह जान-पहचान होती है। जब तुम केवल बाहर से, औपचारिक रूप से, केवल बाहरी सीमा से किसी व्यक्ति के साथ परिचित होते हो, तब वह जान-पहचान होती है। कई बार तुम इसी जान-पहचान कोप्रेम कहने लग जाते हो। तब तुम एक भ्रम में हो। बाहरी जान-पहचान, प्रेम नहीं है।
प्रेम बहुत दुर्लभ है। एक व्यक्ति से उसके केंद्र पर पंहुचकर मिलना, स्वयं को एक क्रांति से गुज़ारने जैसा है, क्योंकि यदि तुम एक व्यक्ति को उसके केंद्र पर मिलना चाहते हो, तो तुम्हें भी उस व्यक्ति को अपने केंद्र तक पहुंचने की अनुमति देनी होगी। तुम्हें आघात सहने योग्य बनना होगा, तुम्हें अति संवेदनशील होना होगा, तुम्हें उसके लिए पूर्ण रूप से खुले रहना होगा। यह जोखिम उठाने जैसा है। किसी व्यक्ति को अपने केंद्र तक पहुंचने की अनुमति देना बहुत खतरनाक है, यह खतरा मोल लेने जैसा है, क्योंकि तुम यह भी नहीं जानते हो कि वह व्यक्ति तुम्हारे साथ क्या करेगा? और यदि एक बार तुम्हारे सभी गुप्त रहस्य जान लिए जाएं, एक बार तुम्हारा छुपा हुआ व्यक्तित्व अनावृत हो जाए, यदि एक बार तुम पूरी तरह अनाश्रित कर दिए जाओ तो तुम नहीं जानते कि अब दूसरा व्यक्ति तुम्हारे साथ क्या व्यवहार करेगा? वहां एक भय बना रहता है और इसी कारण हम कभी भी किसी के साथ पूर्ण रूप से नहीं खुलते हैं।

केवल एक ऊपरी जान-पहचान हो गई और हम सोचते हैं कि प्रेम घटित हो गया। केवल परिधियां मिलती हैं और हम सोचते हैं कि हमारा मिलन हो गया। तुम केवल अपनी परिधि मात्र ही नहीं हो। वास्तव में परिधि तो तुम्हारा वह घेरा है, जहां तुम्हारा अंत होता है। परिधि तो केवल तुम्हारे चारों ओर की घेराबंदी है, वह बाड़ा है। वह तुम नहीं हो। परिधि वह स्थान है जहां तुम्हारा अंत होता है और संसार शुरू होता है। यहां तक कि अनेक वर्षों तक एक साथ रहने वाले पति-पत्नी के मध्य भी केवल जान-पहचान ही हो सकती है। हो सकता है कि वे केंद्र के तल पर एक-दूसरे को न जानते हों। तुम किसी व्यक्ति के साथ जितना अधिक रहते हो, तुम उतना ही यह भूल जाते हो कि तुम्हारे केंद्र एक-दूसरे से अनजाने हैं।
इसलिए समझ लेने जैसी पहली बात यह है कि जान-पहचान कोप्रेम की भांति मत लो। हो सकता है कि तुम आपस में प्रेम कर रहे हो, हो सकता है तुम्हारे बीच शारीरिक संबंध भी हों, लेकिन सेक्स भी केवल परिधि पर है। जब तक केंद्रों का मिलन नहीं होता, तब तक सेक्स भी केवल दोशरीरों का ही मिलन है। और दोशरीरों का मिलन तुम्हारा वास्तविक मिलन नहीं है। सेक्स भी मात्र एक भौतिक और शारीरिक जान-पहचान ही है। तुम किसी व्यक्ति को अपने केंद्र में प्रवेश करने की केवल तभी अनुमति दे सकते हो, जब तुम्हें कोई डर न हो, जब तुम भयभीत न हो।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि दो तरह के संबंध होते हैं। एक भयोन्मुख
और दूसरा प्रेमोन्मुख। भयोन्मुखी जीवन शैली, कभी भी तुम्हें किसी गहन संबंध में नहीं ले जा सकती है। तुम सदा भयभीत बने रहोगे और तुम्हारा भय दूसरे को केंद्र तक पंहुचने की अनुमति नहीं दे पाएगा। तुम दूसरे को अपने गहनतम और प्रामाणिक केंद्र में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दे सकोगे। तुम किसी एक विशिष्ट सीमा तक ही दूसरे कोप्रवेश करने की अनुमति देते हो और उसके बाद दीवार आ जाती है... सब कुछ वहीं रूक जाता है।
प्रेम की ओर उन्मुख व्यक्ति धार्मिक व्यक्ति होता है। प्रेमोन्मुख व्यक्ति का अर्थ है कि जो भविष्य के प्रति भयभीत नहीं है, जोप्रभाव और परिणाम के बारे में न डरते हुए यहीं और अभी में जीता हो।
यही बात भगवान श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैं:"परिणाम की चिंता मत करो"। मत सोचो कि कल क्या परिणाम होगा? केवल यहीं बने रहो और अभी इस क्षण में समग्रता से अपना कर्म करो। जोड़-तोड़ मत करो। भयोन्मुखी व्यक्ति हमेशा गणना, जोड़-तोड़, हिसाब-किताब कर रहा है, वह योजना बना रहा है, वह सुरक्षित होने की पूरी व्यवस्था कर रहा है। इस तरह से उसका पूरा जीवन नष्ट हो जाता है।
मैंने एक वृद्धझेन फकीर के बारे में सुना है। वह मृत्यु शैया पर पड़ा हुआ था। उसकी अंतिम श्वासें चल रही थीं। उसने घोषणा कर दी थी कि शाम तक वह नहीं रहेगा। इसलिए उसके शिष्यों, मित्रों, प्रेमियों और कई चाहने वालों का आना-जाना शुरू हो गया। दूर-दूर से अनेक लोग एकत्रित हो गए।
उसके पुराने शिष्यों में से एक ने जब यह सुना कि सदगुरु की मृत्यु होने जा रही है, तो वह बाजार की ओर दौड़ा। किसी ने उससे पूछा:"सदगुरु तो अपनी झोपड़ी में हैं, फिर तुम बाजार क्यों जा रहे हो"
उस शिष्य ने उत्तर दिया-"मेरे सदगुरु एक विशेष तरह के केक को बहुत पसंद करते हैं, इसलिए मैं वही केक खरीदने जा रहा हूं।"
उस केक को खोज पाना बहुत कठिन था, क्योंकि अब वह चलन से बाहर हो गया था, कहीं भी आसानी से मिलता नहीं था। लेकिन किसी प्रकार उसने शाम तक उस केक की व्यवस्था कर ली। वह केक लेकर दौड़ता हुआ आया। प्रत्येक व्यक्ति चिंतित था, ऐसा लग रहा था जैसे मानोसदगुरु किसी व्यक्ति के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे अपनी आंखें खोलकर देखते थे और फिर आंखें बंद कर लेते थे। जब उनका यह शिष्य आया तो उन्होंने कहा:"तो तू आ ही गया। केक कहां है"
शिष्य ने केक प्रस्तुत कर दियाऔर वह बहुत प्रसन्न था कि सदगुरु ने केक के लिए पूछा। मरते हुए सदगुरु ने केक अपने हाथों में लिया, लेकिन उनके हाथ बिल्कुल भी नहीं कांप रहे थे। वे बहुत वृद्ध थे, लेकिन फिर भी उनका हाथ नहीं कांप रहा था। इसलिए किसी व्यक्ति ने उनसे पूछा:"आप इतने अधिक वृद्ध

हैं और मृत्यु की कगार पर खड़े हैं। आपकी आखिरी सांस बस छूटने ही वाली है, लेकिन आपका हाथ नहीं कांप रहा है"
सदगुरु ने कहा:"क्योंकि मैं कभी भी नहीं कांपा, चूंकि मुझे कभी कोई भय नहीं रहा। मेरा शरीर बूढ़ा हो गया है, लेकिन मैं अभी भी युवा हूं और मैं तब तक युवा बना रहूंगा, जब तक यह शरीर न मर जाए।"
तब गुरु ने केक का एक टुकड़ा खानाशुरू कर दिया। किसी व्यक्ति ने उनसे पूछा:"प्यारे सदगुरु! आपका अंतिम संदेश क्या है? आप शीघ्र ही हमसे विदा ले लेंगे। आप हमसे क्या चाहते हैं जिसका हम स्मरण रखें।"
सदगुरु मुस्कराए और कहा:"ओह! यह केक कितना अधिक स्वादिष्ट है"
यह एक ऐसा व्यक्ति है, जो यहीं और अभी में जीता है:"यह केक बहुत स्वादिष्ट है।" मृत्यु भी उसके लिए असंगत है। अगला क्षण अर्थहीन है। इस क्षण में तो बस... यह केक बहुत अधिक स्वादिष्ट है।
यदि तुम इस क्षण में, वर्तमान क्षण में, उस क्षण की उपस्थिति में प्रचुर समृद्धि के साथ बने रह सकते हो, केवल तभी तुम प्रेम कर सकते हो। प्रेम एक दुर्लभ खिलावट है और वह केवल कभी-कभी ही घटती है। लाखों-करोड़ों लोग इस झूठी दृष्टि के साथ जीते हैं कि वे प्रेमी हैं। वे विश्वास करते हैं कि वे प्रेम करते हैं, लेकिन यह केवल उनका विश्वास है।
प्रेम का होना एक दुर्लभ खिलावट है। यह कभी-कभी ही घटती है। यह दुर्लभ इसलिए है, क्योंकि यह केवल तभी घटित हो सकती है जब कोई भय न हो और पहले भी कभी न रहा हो। इसका अर्थ है कि प्रेम केवल उन्हीं लोगों को घटित हो सकता है, जो बहुत गहराई तक आध्यात्मिक और धार्मिक हों। सेक्स सभी के लिए संभव है, सभी के लिए जान-पहचान भी संभव है, पर प्रेम नहीं।
जब तुम भयभीत नहीं हो, तब वहां छिपाने को कुछ भी नहीं होता है, तब तुम
एक खुली किताब की तरह हो सकते हो, तब तुम सभी दीवारों और सीमाओं को हटा सकते हो और ऐसे में तुम दूसरे को अपने भीतर के प्रामाणिक केंद्र तक प्रविष्ट होने के लिए आमंत्रित कर सकते हो। स्मरण रहे: यदि तुम किसी व्यक्ति को अपने गहराई में प्रवेश करने की अनुमति देते हो तो दूसरा व्यक्ति भी तुम्हें स्वयं के अंदर प्रवेश करने की अनुमति देगा, क्योंकि जब तुम किसी व्यक्ति को अपने अंदर प्रवेश करने की अनुमति दे देते हो तो एक आस्था और एक विश्वास निर्मित होता है। जब तुम भयभीत नहीं हो तो दूसरा भी निर्भय हो जाता है।
साधारणतः तुम्हारे प्रेम में, हमेशा भय बना रहता है। पति, पत्नी से भयभीत है और पत्नी पति से भयभीत है। प्रेमी हमेशा भयभीत रहते हैं। तब यह प्रेम नहीं है, यह केवल दो भयभीत व्यक्तियों के मध्य एक व्यवस्था है, जिसमें दोनों ही एक-दूसरे पर आश्रित हैं, इस सुविधाजनक व्यवस्था में वे लड़ रहे हैं, एक-दूसरे का शोषण कर रहे हैं, एक-दूसरे को नियंत्रित कर रहे है, जोड़-तोड़ कर रहे हैं, प्रभुत्व और अधिकार स्थापित कर रहे हैं, लेकिन यह प्रेम नहीं है।
यदि तुम प्रेम को घटित होने की अनुमति दे सकते हो तोप्रार्थना और ध्यान की भी कोई आवश्यकता नहीं है और न ही मंदिर अथवा चर्च जाने की कोई आवश्यकता है। यदि तुम सही मायने में प्रेम कर सको तो तुम परमात्मा को भी पूर्णतः भुला सकते हो, क्योंकि प्रेम के द्वारा तुम्हें वह सब कुछ स्वतः ही घटित होगा-ध्यान, प्रार्थना और परमात्मा सहज ही घटित होंगे। यह सब कुछ तुम्हें मिलेगा ही। जीसस जब कहते हैं कि प्रेम ही परमात्मा है... तो इस कथन से उनका यही आशय है कि प्रेम के द्वारा ही परमात्मा मिलेगा।
लेकिन ऐसा दिव्य प्रेम कर पाना कठिन है। समस्त भय को छोड़ना होगा। यह बड़ी अजीब सी बात है कि तुम अत्याधिक भयभीत हो और तुम्हारे पास खो देने लायक भी कुछ नहीं है।
कबीर ने कहा है:"मैं लोगों के अंदर देखता हूं कि वे इतने अधिक भयभीत हैं, लेकिन मैं समझ नहीं पाता हूं कि आखिर क्यों, क्योंकि उनके पास खोने के लिए तो कुछ भी नहीं है।" कबीर कहते हैं कि लोग उस नग्न व्यक्ति के समान हैं, जो कभी भी नदी में नहाने के लिए नहीं जाता है, क्योंकि वह डरता है कि वह अपने कपड़े कहां सुखाएगा? यही तुम्हारी स्थिति है, तुम नग्न हो, कपड़े हैं ही नहीं, लेकिन फिर भी हमेशा कपड़ों के लिए भयभीत बने रहते हो।

तुम्हारे पास खोने के लिए है क्या? कुछ भी तो नहीं। यह शरीर एक दिन मृत्यु का ग्रास बन जाएगा। इससे पहले कि मृत्यु इस शरीर को ले जाए, इसे प्रेम को समर्पित कर दो। जो कुछ भी तुम्हारे पास है, वह तुमसे ले ही लिया जाएगा। इससे पहले कि वह तुमसे छिन जाए, तुम उसे बांटते क्यों नहीं? तुम्हारा भय केवल परिग्रह करने का एक ढंग है। यदि तुम उसे दे सकते हो, बांट सकते हो तो तुम स्वामी हो जाते हो, मालिक बन जाते हो। एक दिन सब कुछ तुमसे ले लिया जाएगा। ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे तुम सदैव अपने पास रख सको। मृत्यु प्रत्येक चीज़ को नष्ट कर देगी।
इसलिए यदि तुम मुझे ठीक से समझ पा रहे हो तोमृत्यु और प्रेम के बीच में एक संघर्ष है। यदि तुम दे सकते हो तो तब कोई मृत्यु नहीं होगी। इससे पहले कि कोई भी चीज़ तुमसे छीनी जा सके तुम उसे दे देना होगा। तुम्हें उसे एक उपहार बना देना होगा।
तब कोई मृत्यु नहीं हो सकती है। एक प्रेमी के लिए कोई मृत्यु नहीं है। प्रेम न करने वाले के लिए प्रत्येक क्षण ही एक मृत्यु है क्योंकि प्रत्येक क्षण जैसे उससे कुछ छीना जा रहा है। शरीर मिट रहा है, वह प्रत्येक क्षण उसे खो रहा है और तब एक दिन मृत्यु होगी तथा प्रत्येक चीज़ नष्ट हो जाएगी।
भय क्या है? तुम इतने अधिक भयभीत क्यों हो? यदि तुम्हारे संदर्भ में प्रत्येक चीज़ ज्ञात है और तुम एक खुली हुई किताब के समान हो, तो फिर भयभीत क्यों हो? कोई कैसे तुम्हारी हानि कर सकता है? यह सब केवल झूठी धारणाएं हैं, मिथ्या सोच है और समाज के द्वारा दी गई एक कंडीशनिंग हैं, कि तुम्हें स्वयं को छिपाना है, तुम्हें स्वयं अपनी सुरक्षा करनी है और इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारा शत्रु है, प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारा विरोधी है, तुम्हें मानसिक रूप से निरंतर इन शत्रुओं से जूझते रहना है। वास्तव में, कोई भी तुम्हारा विरोधी नहीं है। यहां तक कि जब तुम सोचते हो कि कोई तुम्हारे विरोध में है तो तब भी वह विरोधी नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के प्रति ही चिंतित है, उसे तुमसे कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए भयभीत होने लायक कुछ भी नहीं है। संबंध निर्मित करने से पहले यह बात अनुभव कर लेनी होगी। तब फिर कोई भय नहीं रहता है।
इस बात पर ध्यान करो और तब किसी अन्य को अपने अंदर प्रवेश की अनुमति दो, तब ही किसी अन्य को भीतर आमंत्रित करो। कहीं भी कोई अवरोध पैदा मत करो, सदैव एक सुगम और सहज मार्ग की भांति दूसरे को अपने पर से गुज़रने दो, कहीं कोई ताला न हो, यहां तक कि कोई दरवाज़ा न हो, सदैव स्वागत भाव से बांहे फैलाए रहो, तुम तक आने को कोई भी द्वार बंद न हो... केवल तभी प्रेम संभव है।
जब दो केंद्रों का मिलन होता है, तभी प्रेम घटित होता है। प्रेम एक रसायनिक प्रक्रिया के जैसा है, जैसे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के मिलने पर, रसायनिक क्रिया द्वारा, पानी जैसी एक नई चीज़ निर्मित होती है, वैसा ही प्रेम है। तुम्हारे पास ऑक्सीजन हो सकती है, तुम्हारे पास हाइड्रोजन हो सकती है, लेकिन यदि तुम प्यासे हो तो यह दोनों ही रसायन व्यर्थ हैं। तुम्हारे पास पर्याप्त मात्रा में या जितनी तुम चाहते हो उतनी ही हाइड्रोजन और ऑक्सीजन हो सकती है, परंतु उससे प्यास नहीं बुझेगी।
जब दो केंद्र मिलते हैं तो एक नवीनता का जन्म होता है। वह नवीनताप्रेम है, यह ठीक पानी के समान होता है, उससे अनेक जन्मों की प्यास तृप्त हो जाती है। अचानक तुम संतुष्ट हो जाते हो। यह प्रेम का एक प्रत्यक्ष संकेत है कि तुम संतोष से भर जाते हो, जैसे तुम्हें सबकुछ मिल गया हो और अब प्राप्त करने लायक कुछ भी न बचा हो। जैसे तुम अपने लक्ष्य तक पहुंच गए हो, मंज़िल मिल गई है और अब कोई अन्य लक्ष्य बाकी नहीं है। बीज अंकुरित हो गया है तथा विकसित होकर पुष्प भी बन गया है... जैसे बीज अपनी संपूर्ण और संभव खिलावट तक पंहुच गया है।
गहन संतोष ही प्रेम का दृश्यमान चिन्ह है। जब एक व्यक्तिप्रेम में होता है तो वह गहन संतोष में होता है। प्रेम को देखा नहीं जा सकता है लेकिन उससे उत्पन्न गहन संतोष को अनुभव किया जा सकता है। उस व्यक्ति के चारों ओर, उसकी प्रत्येक श्वास में, उसकी प्रत्येक गतिविधि में और उसके पूरे अस्तित्व में वह संतृप्ति दिखाई देती है।

तुम्हें अत्यंत आश्चर्य होगा, जब मैं कहता हूं कि प्रेम तुम्हें कामना मुक्त बनाता है। कामना के साथ असंतोष होता है। तुम कामना करते हो क्योंकि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, तुम कामना करते होऔर सोचते हो कि यदि तुमने कुछ पा लिया तोतुम्हें संतोष मिलेगा। असंतोष से ही कामना उत्पन्न होती है। जब प्रेम होता है और दो केंद्र मिलते हैं तो घुलकर एक-दूसरे में विलय हो जाते हैं और एक नए रासायनिक गुण का जन्म होता है, तभी वहां संतोष होता है। ऐसा लगता है जैसे मानो पूरा अस्तित्व रुक गया है और कोई भी गतिविधि नहीं हो रही है। तब वर्तमान का वह क्षण मात्र ही वहां होता है। तब तुम कह सकते हो-"ओह! यह केक बहुत स्वादिष्ट है।" जोप्रेम में है, उस व्यक्ति के लिए मृत्यु भी कोई अर्थ नहीं रखती है।
इसीलिए मैं तुमसे कहता हूं कि प्रेम तुम्हें कामनाविहीन बनाएगा। निर्भीक बनो, सभी डरों को छोड़ दो और मुक्त हो जाओ। किसी अन्य केंद्र को अनुमति दो कि वह तुम्हारे अंदर के केंद्र से मिल सके और उसके द्वारा तुम्हारा पुनर्जन्म होगा तथा तुम्हारी आत्मा में नए गुण और लक्षण उत्पन्न होंगे। तब यह नए गुण कहते हैं कि यही परमात्मा है। परमात्मा तर्क-वितर्क नहीं है, परमात्मा तो एक पूर्णता है, वह पूर्णता का एक अनुभव है। तुमने अवश्य ही यह निरीक्षण किया होगा कि जब कभी भी तुम असंतुष्ट होते हो तो तुम परमात्मा से इंकार करना चाहते हो। जब कभी तुम असंतुष्ट होते हो तो तुम्हारा पूरा अस्तित्व यह कहना चाहता है कि कोई परमात्मा नहीं है।
यह नास्तिकता, तर्क-वितर्क के कारण नहीं है, यह असंतोष के कारण है। यह
और बात है कि तुम अपनी बात कोप्रमाण सहित सिद्ध कर सकते हो। तुम यह नहीं कह सकते हो कि तुम अपनी असंतुष्टता के कारण नास्तिक हो। तुम शायद यही कहोगे कि कोई भी परमात्मा नहीं है और मेरे पास उसके प्रमाण हैं। लेकिन यह सत्य नहीं है। यदि तुम पूर्णतः संतुष्ट हो तो अचानक तुम्हारा पूरा अस्तित्व कहता है:"हां! परमात्मा है।" अचानक तुम उसे अनुभव करने लगते हो। पूरा अस्तित्व दिव्यबन जाता है। यदि वास्तव में प्रेम है तो पहली बार तुम यह अनुभव करोगे कि यह अस्तित्व दिव्य और आलौकिक है और सृष्टि की प्रत्येक चीज़ एक वरदान है। ऐसा अनुभव करने के लिए तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। ऐसा घटित हो सके, उससे पहले तुम्हें बहुत कुछ नष्ट करना होगा। तुम्हें वह सभी कुछ नष्ट करना होगा जो तुम्हारे अंदर अवरोध उत्पन्न करता है।
प्रेम को एक साधना बना लो, प्रेम को एक आंतरिक अनुशासन बना लो। प्रेम
को बेहूदा, हल्का और असार बनने की अनुमति मत दो। प्रेम को केवल मन के बहलावे की वस्तु मत बनने दो। प्रेम को केवल शारीरिक संतुष्टि का साधन बनने की अनुमति मत दो। प्रेम को एक आंतरिक खोज बनाओ और दूसरे व्यक्ति को एक सहायक अथवा एक मित्र की भांति लो।
यदि तुमने तंत्र के बारे में सुना है तो तुम्हें मालूम होगा, तंत्र कहता है कि यदि तुम एक सहगामी, एक मित्र, एक स्त्री अथवा एक ऐसा पुरुष खोज सको, जो तुम्हारे साथ तुम्हारे आंतरिक केंद्र तक जाने को तैयार हो, जो तुम्हारे साथ संबंध के सर्वोच्च शिखर तक गतिशील होने के लिए तैयार हो, तब यह संबंध ध्यानपूर्ण बन जाएगा। तब इस संबंध के द्वारा तुम परम-संबंध कोप्राप्त कर लोगे। तब यह दूसरा व्यक्ति केवल एक द्वार बन जाता है।
मुझे यह बात और स्पष्ट करने दो। यदि तुम एक व्यक्ति से प्रेम करते हो
तो धीरे-धीरे उस व्यक्ति की परिधि विलुप्त होती है अर्थात उस व्यक्ति की रूप और आकृति मिटती है। तब तुम उस आकारहीन के, उस अरूप के, घनिष्ठतम संपर्क में आते हो। रूप और आकार धीरे-धीरे धुंधले होते हुए, विलुप्त हो जाते हैं। यदि तुम और अधिक गहराई में जाते हो तो यह अरूप व्यक्तित्व भी पिघलने लगता है, मिटने लगता है, और तब उस पार का झरोखा खुलता है। तब वह विशिष्ट व्यक्ति जो केवल एक द्वार था, एक सुअवसर बन जाता है और अपने प्रेमी के द्वारा तुम उस आलौकिक को खोज लेते हो।
क्योंकि हम प्रेम नहीं कर सकते, इसलिए हमें अनेक धार्मिक कर्म-कांडों
और आडम्बरों की आवश्यकता होती है। वे केवल प्रतिस्थापन हैं, विकल्प हैं और वे बहुत ही क्षुद्र विकल्प हैं। मीरा को मंदिर में जाने की कोई भी आवश्यकता नहीं है, पूरा अस्तित्व ही उसका मंदिर है। वह एक वृक्ष के सामने भी नृत्य कर सकती है और वृक्ष ही उसके लिए कृष्ण बन जाता है। वह एक पक्षी

के सामने भी गीत गा सकती है और वह पक्षी ही उसके लिए कृष्ण बन जाता है। वह प्रत्येक स्थान पर, अपने चारों ओर अपने कृष्ण को सृजित कर लेती है। उसका प्रेम ऐसा प्रगाढ़ है कि वह जहां कहीं भी देखती है वहां से ही द्वार खुल जाता है और कृश्ण प्रकट हो जाते हैं। परम प्रेमी कृष्ण प्रकट हो जाता है। लेकिन इस प्रेम की पहली झलक हमेशा एक व्यक्ति के द्वारा ही आएगी। पूरे ब्रह्माण्ड के साथ, सार्वजनिक रूप से संपर्क साधना बहुत कठिन है। ब्रह्माण्ड इतना अधिक बड़ा है, इतना अधिक विराट है, उसका न आरंभ है और न ही कोई अंत है, वह अगम है। उसके साथ संबंध कहां से प्रारंभ किया जाए? कहां से उसके भीतर गतिशील हुआ जाए! तब एक व्यक्ति ही द्वार है। उस एक के साथ प्रेम में डूबो।
इस प्रेम को संघर्ष मत बनाओ। इसे दूसरे के लिए एक आमंत्रण की भांति बनने दो, उसे एक गहन स्वीकृति का आधार बनने दो। दूसरे को अपने अंदर प्रवेश करने की बेशर्त अनुमति दो और अचानक दूसरा विलुप्त हो जाता है तथा वहां परमात्मा ही बचता है। यदि तुम्हारा प्रेमी अथवा प्रेमिका आलौकिक नहीं बन सकते तो इस संसार में कुछ भी दिव्य अथवा अलौकिक नहीं बन सकता है। तब तुम्हारी सारी धार्मिक बातचीत निरर्थक है, ढोंग है, पाखण्ड है। यह एक बच्चे के साथ भी घट सकता है। यह एक पशु के साथ भी घट सकता है। यदि अपने पालतू कुत्ते के साथ तुम एक गहरा संबंध बना सकते हो तो यह उसके माध्यम से भी हो सकता है, वह कुत्ता भी आलौकिक बन सकता है। अतः यह स्त्री अथवा पुरूष का प्रश्न नहीं है। कोई भी उस दिव्यता के मूल स्रोत तक पंहुचने का मार्ग बन सकता है। यह माध्यम तुम्हें सहजता से, प्राकृतिक ढंग से स्रोत तक पंहुचा देता है। यह कहीं से भी, किसी के द्वारा भी घटित हो सकता है। आधारभूत कुंजी यही है कि तुम्हें दूसरे को अपने भीतर के गहनतम केंद्र तक, तुम्हारे अस्तित्व के मूल आधार तक प्रवेश करने की अनुमति देनी चाहिए। लेकिन हम स्वयं को धोखा दिए चले जाते हैं। हम सोचते हैं कि हम प्रेम करते हैं और यदि तुम सोचते हो कि तुम भी प्रेम कर पाते हो, तब तो वहां तनिक भी संभावना नहीं है। क्योंकि यदि यह प्रेम है तोप्रत्येक चीज़ समाप्त ही हो जाती है। पुनः नए प्रयास करो। दूसरे व्यक्ति के भीतर छुपी हुईप्रामाणिक आत्मा को खोजने का प्रयास करो। किसी भी व्यक्ति को हल्के में मत लो। प्रत्येक व्यक्ति एक रहस्य है, यदि तुम उसके अंदर गहरे उतरते जाओगे तो पाओगे कि वह अंतहीन है।
लेकिन हम दूसरे व्यक्ति के साथ जल्दी ही ऊब जाते हैं, क्योंकि हम केवल परिधि पर देखते हैं और हमेशा परिधि पर ही घूमते रहते हैं।
मैं एक कहानी पढ़ रहा था...
एक व्यक्ति बहुत बीमार था और उसने सभी तरह के उपचारों और पद्धितयों
का प्रयोग कर लिया था। परंतु उन सब से उसे कोई सहायता नहीं मिली। तब वह एक सम्मोहनकर्ता के पास गया और उस सम्मोहनकर्ता ने उसे एक मंत्र दिया तथा उस मंत्र को निरंतर दोहराने का सुझाव भी दिया कि मैं रुग्ण नहीं हूं। उसने कहा कि प्रत्येक सुबह पंद्रह मिनट और प्रत्येक शाम पंद्रह मिनट तक यही दोहराना है कि मैं बीमार नहीं हूं, मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं। दिन में भी जब कभी याद आ जाए तो यह दोहराते रहो। कुछ ही दिनों में वह व्यक्ति सच में ठीक होना शुरू हो गया और कुछ सप्ताह में तो वह पूरी तरह से स्वस्थ हो गया। तब उसने अपनी पत्नी से कहा:"यह तो चमत्कार हो गया। क्या मुझे उस सम्मोहनकर्ता के पास किसी दूसरे चमत्कार के लिए जाना चाहिए? क्योंकि पिछले कुछ समय से मैं अपने भीतर कामवासना की उत्तेजना का अनुभव नहीं कर रहा हूं और हमारे संबंध लगभग समाप्त हो गए है। कोई इच्छा ही नहीं बची है।" पत्नी बहुत खुश हुई और उसने कहा:"आप अवश्य जाइए", क्योंकि वह भी बहुत निराशा का अनुभव कर रही थी।
वह व्यक्ति सम्मोहनकर्ता के पास गया। जब वह वहां से वापस लौटा तो उसकी पत्नी ने उससे पूछा:"अब उन्होंने कौन सा मंत्र दिया है" उस व्यक्ति ने कुछ नहीं बताया, लेकिन कुछ ही सप्ताह के अंदर उसकी कामवासना पुनः लौट आई। पत्नी बहुत अधिक उलझन में थी, परेशान थी। वह उस मंत्र को जानने का निरंतर आग्रह करती थी, लेकिन वह व्यक्ति हंसकर टाल देता था। एक दिन सुबह

जब वह बाथरूम में पंद्रह मिनट मंत्र का जाप कर रहा था तो पत्नी ने उसे सुनने का प्रयास किया कि वह क्या कह रहा है?

वह कह रहा था -"वह मेरी पत्नी नहीं है, वह मेरी पत्नी नहीं है, वह मेरी पत्नी नहीं है।"

हम अपने संबंधों को बहुत हल्के में ले लेते हैं। कोईस्त्री तुम्हारी पत्नी है और बस संबंध समाप्त हो जाता है। कोई व्यक्ति तुम्हारा पति है और बस प्रेम समाप्त हो जाता है। अब वहां कोई रोमांच नहीं है, कोई नयापन नहीं है। अब दूसरा व्यक्ति एक वस्तु बन गया है, वह उपयोग की सामग्री बन जाता है। अब उस दूसरे व्यक्ति में कोई भी रहस्य नहीं है, जिसे खोजा जाए, क्योंकि वह अब तुम्हारे लिए नया नहीं है।

स्मरण रहे, बढ़ती आयु के साथ प्रत्येक चीज़ मृत बन जाती है। परिधि हमेशा पुरानी ही होती है परंतु भीतर का केंद्र हमेशा नूतन रहता है। बाहर की परिधि नूतन नहीं बनी रह सकती, क्योंकि प्रत्येक क्षण वह पुरानी हो रही है, बासी हो रही है, मुरझा रही है। केंद्र हमेशा नूतन और युवा बना रहता है। तुम्हारी आत्मा न तो एक बच्चा है, न ही एक युवा है और न ही वह वृद्ध है। तुम्हारी आत्मा तो पूरी तरह से निर्लेप है, वह शाश्वत है, वह नित-नूतन है। आत्मा की कोई आयु नहीं है। तुम एक प्रयोग कर सकते हो। तुम एक युवा हो और हो सकता है कि तुम वृद्ध हो, केवल अपनी आंखें बंद करो और अपने भीतर खोजने का प्रयास करो कि तुम्हारा अंतरतम, तुम्हारी आत्मा, तुम्हारा केंद्र कैसा है? वह वृद्ध है अथवा युवा? तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारा केंद्र इनमें से कुछ भी नहीं है। वह तो हमेशा ही नूतन और ताजा है। वह कभी भी पुराना नहीं होता। क्यों? क्योंकि केंद्र समय में बंधा हुआ नहीं है, वह समय से पार है, समयातीत है।

समय की प्रक्रिया में, समय के बंधन में प्रत्येक चीज़ पुरानी हो जाती है। एक मनुष्य जन्म लेता है और उसी क्षण से पुराना होना शुरू हो जाता है। जब हम कहते हैं कि बच्चा एक सप्ताह का हो गया है तो इसका अर्थ है कि बुढ़ापे का एक सप्ताह बच्चे के अंदर प्रविष्ट कर गया है। बच्चे ने मृत्यु की ओर, अपने पहले सात दिन की यात्रा कर ली है, उसने मृत्यु की प्रक्रिया के सात दिन पूरे कर लिए हैं। वह धीरे-धीरे मृत्यु की ओर गतिशील हो रहा है और एक न एक दिन मर ही जाएगा।

समय की प्रक्रिया में जो कुछ भी आता है, वह पुराना हो जाता है। जैसे ही कोई समय में प्रवेश करता है, वह उसी क्षण से पुराना होना शुरू हो जाता है। तुम्हारा शरीर पुराना है और तुम्हारी बाह्य परिधि भी पुरानी है। तुम इसके साथ शाश्वत रूप से प्रेम में नहीं रह सकते, लेकिन तुम्हारा केंद्र तो हमेशा नूतन है, वह शाश्वत है, चिर-युवा है। एक बार तुम इस केंद्र के साथ संपर्क में आते हो तोप्रत्येक क्षण में प्रेम एक गहरी खोज बन जाता है और तब मधु-यामिनी का, प्रेमालाप का कभी भी अंत नहीं होता है। यदि उसका अंत हो जाता है तो वह किसी भी प्रकार से प्रेम था ही नहीं, वह केवल एक बाहरी जान-पहचान थी।

और अंतिम बात, जो हमेशा याद रखने की है कि प्रेम के संबंध में, यदि कोई चीज़ गलत हो जाती है तो तुम सदैव दूसरे को दोष देते हो। यदि सब कुछ वैसा नहीं चल रहा है जैसा कि चलना चाहिए तो दूसरा ही उसके लिए जिम्मेदार है। यह बात भविष्य के विकास की पूरी संभावना को नष्ट कर देगी। स्मरण रहे-हमेशा तुम ही जिम्मेदार होते हो, तुम स्वयं को बदलो। उन लक्षणों को छोड़ दो, जो समस्या उत्पन्न करते हैं। प्रेम को एक आत्म रूपांतरण बनाओ। जैसा कि कुशल विक्रेता के प्रशिक्षण में सिखाया जाता है कि ग्राहक हमेशा ठीक होता है। वैसे ही मैं तुमसे कहना चाहूंगा कि प्रेम और संबंधों के संसार में भी दूसरा सदा ठीक होता है, तुम ही हमेशा गलत होते हो। और प्रेमी बिल्कुल ऐसा ही अनुभव करते हैं। यदि प्रेम है और चीज़ें ठीकनहीं चल पा रही हैं, जैसा कि उन्हें चलना चाहिए तो वास्तविक प्रेमी हमेशा यही अनुभव करते हैं कि मुझ से कुछ गलत हो रहा है। दोनों ही समान रूप से यह अनुभव करते हैं। तब चीज़ें विकसित होती हैं, तब सीमाएं विलीन होती हैं और केंद्र खुलते हैं।

परंतु यदि तुम सोचते हो कि दूसरा गलत है, तो तुम स्वयं और दूसरे को, दोनों को ही बंद कर रहे हो। दूसरा भी यही सोचता है कि तुम गलत हो। विचार

छूत की बीमारी की तरह होते हैं। यदि तुम सोचते हो कि दूसरा गलत है, भले ही तुमने ऐसा कहा नहीं है और यदि तुम मुस्कराते हुए यह प्रदर्शित भी कर रहे हो कि तुम ऐसा नहीं सोचते हो तो भी दूसरा तुम्हारे चेहरे के द्वारा, तुम्हारी मुद्राओं के द्वारा, तुम्हारे हाव-भाव के द्वारा और तुम्हारी आंखों के द्वारा संकेत पा लेता है। यदि तुम एक महान अभिनेता हो और तुमने अथक अभ्यास द्वारा स्वयं को साध लिया है तो भी तुम्हारा अचेतन निरंतर संकेत भेज रहा है कि दूसरा गलत है। जब तुम यह कहते हो कि दूसरा गलत है तो दूसरा भी यह महसूस करने लगता है कि तुम गलत हो।
इस सही-गलत की चट्टान से टकराकर संबंध नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं और तब दोनों लोग अपने द्वार बंद कर लेते हैं। यदि तुम कहते हो कि कोई व्यक्ति गलत है, तो वह अपनी सुरक्षा और बचाव करना शुरू कर देता है। इसी प्रहार और बचाव के संघर्ष में सब समाप्त हो जाता है।
सदा स्मरण रहे, प्रेम में हमेशा तुम ही गलत होते हो और तब यह संभावना बनती है कि दूसरा भी ठीक इसी ढंग से सोचेगा और अनुभव करेगा। दूसरे के अंदर हम ही विचारों और भावों का सृजन करते हैं। जब प्रेमी एक-दूसरे के निकट होते हैं, तो उनके विचार निरंतर बदलते रहते हैं। यदि वे कोई बात नहीं कर रहे हैं और बिल्कुल खामोश हैं, तो भी वे मौन संवाद करते रहते हैं। जो लोग प्रेम में नहीं हैं, जोप्रेमी नहीं हैं, उनके लिए भाषा का उपयोग होता है। प्रेमियों के लिए तो मौन ही पर्याप्त भाषा है। बिना कुछ कहे-सुने भी वे परस्पर संवाद कर लेते हैं।
यदि तुम प्रेम को एक साधना की भांति लेते हो तब कभी यह मत कहो कि दूसरा गलत है। केवल यह खोजने का प्रयास करो कि तुम्हारे भीतर कहीं पर क्या गलत चल रहा है? उस गलत को छोड़ दो। यह बहुत कठिन लगेगा और यह एक मुसीबत बन जाएगी, क्योंकि कुछ तुम्हारे अहंकार के विरूद्ध खड़ा हो रहा है। बहुत कठिनाई मालूम होगी क्योंकि तुम्हारे गौरव को ठेस पंहुचेगी। बहुत खतरा मालूम पड़ेगा क्योंकि तुम प्रभुत्व नहीं जमा पाओगे और अधिकार नहीं रख सकोगे। दूसरों पर अधिकार जमा कर तुम अधिक शक्तिशाली कभी नहीं बन पाओगे। इन सभी कारणों से, वह गलत बात छोड़ना, तुम्हारे लिए कठिन होने जा रहा है क्योंकि उसे छोड़ना यानि तुम्हारे अहंकार का आमूल रूप से नष्ट हो जाना... इसीलिए वह बहुत दुष्कर मालूम होगी।
लेकिन अहंकार का नष्ट होना ही मुख्य बात है, मुख्य प्रयोजन है। तुम जहां कहीं से भी अपने अंतर जगत में प्रवेश करना शुरू करो, चाहे प्रेम से, चाहे ध्यान से, चाहे योग से अथवा प्रार्थना से, तुम कोई भी मार्ग चुनो पर लक्ष्य समान है और वह है:अहंकार को नष्ट करना और अहंकार को दूर फेंक देना। प्रेम के द्वारा यह बहुत सरलता से किया जा सकता है और यह स्वाभाविक हो जाता है। प्रेम एक नैसर्गिक धर्म है, प्रेम प्राकृतिक है, अन्य कोई भी चीज़ इतनी नैसर्गिक नहीं हो सकती, वह अप्राकृतिक हो जाएगी। यदि तुम प्रेम के द्वारा अपने भीतर कार्य नहीं कर सकते हो तो अन्य किसी भी साधन से तुम्हारे लिए, अपने भीतर उतरना बहुत कठिन होगा।
अपने पिछले जन्मों के बारे में और भविष्य के बारे में बहुत अधिक मत सोचो। वर्तमान ही पर्याप्त है। यह मत सोचो कि संबंध अतीत से आ रहा है। निश्चित ही वह अतीत से आ रहा है, लेकिन उसके बारे में ज्यादा सोचो मत क्योंकि तब तुम और अधिक उलझन में पड़ जाओगे। चीज़ों को सरल और सहज बनाओ। तुम्हारे पिछले जन्मों की ही श्रंखला आज चल रही है, इसलिए मैं इस तथ्य
से इंकार नहीं करता लेकिन उसे एक बोझ मत बनाओ और यही श्रंखला भविष्य में भी जारी रहेगी, लेकिन इसके बारे में ज्यादा सोचो मत। वर्तमान का यह एक क्षण पर्याप्त से भी कहीं ज्यादा है। केवल "केक" को चबाओ और कहो-"यह केक बहुत स्वादिष्ट है।"
अतीत के बारे में मत सोचो और न ही भविष्य के बारे में सोचो। वे अपनी परवाह स्वयं करेंगे। सबकुछ जुड़ा हुआ है, कुछ भी अलग नहीं है। तुम अतीत में किन्हीं संबंधों के साथ रहे हो। तुमने प्रेम किया है, तुमने घृणा की है, तुमने मित्र बनाए हैं, तुमने शत्रु बनाए हैं और जाने-अनजाने में यह क्रम निरंतर चलता आ रहा है। ऐसा हमेशा से ही हो रहा है। लेकिन यदि तुम उसके बारे में चिंतन करना शुरू कर दोगे तो तुम वर्तमान क्षण से चूक जाओगे।

इसलिए इस भांति सोचो, जैसे कोई भी अतीत नहीं है और कोई भी भविष्य नहीं है। यह क्षण ही सब कुछ है जो तुम्हें दिया गया है। इस क्षण पर कार्य करो... जैसे यह क्षण ही सब कुछ है। इस तरह व्यवहार करो, जैसे यह क्षण ही जीवन-मृत्यु का प्रश्न है। वर्तमान के इसी वास्तविक क्षण में यह प्रयास करो कि कैसे तुम अपनी ऊर्जा कोप्रेमपूर्ण बना सकते हो? कैसे इसी क्षण में इसे रूपांतरित कर सकते हो?
लोग मेरे पास आते हैं और वे अपने पूर्वजन्मों के बारे में जानना चाहते हैं। उनके पूर्वजन्म थे, लेकिन अब वह असंगत है। यह जांच-पड़ताल क्यों? तुम अपने अतीत के बारे में जानकर क्या करोगे? अब कुछ भी नहीं किया जा सकता है? अतीत, अतीत है और उसमें अब बदलाव नहीं हो सकता है। तुम किसी भी कीमत पर पीछे वापस नहीं लौट सकते हो। इसी कारण प्रकृति और इसकी प्रज्ञा तुम्हें पूर्वजन्मों को याद रखने की अनुमति नहीं देती है, अन्यथा तुम पागल हो जाते।
हो सकता है कि तुम एक लड़की के प्रेम में हो और अचानक तुम्हें पता लगता
है कि पूर्वजन्म में यह लड़की तुम्हारी मां थी, तो चीज़ें बहुत अधिक जटिल बन जाएंगी। तब करोगे क्या? वह लड़की पूर्वजन्म में तुम्हारी मां रही है और अब उसी के साथ प्रेम करना, तुम्हारे भीतर एक अपराध बोध पैदा होगा। उससे प्रेम न करना या उसे छोड़ देना भी पीड़ादायक होगा, क्योंकि आज तुम उससे प्रेम करते हो।
इसी कारण मैं कहता हूं कि प्रकृति की अपनी प्रज्ञा है कि वह तुम्हें पूर्वजन्म का स्मरण रखने की अनुमति नहीं देती है, जब तक कि तुम उस स्थिति तक, उस बिंदु तक नहीं पंहुच जाते हो जहां उसकी अनुमति दी जा सके। जब तुम इतने अधिक ध्यानपूर्ण हो जाते हो कि तुम्हें कुछ भी परेशान नहीं कर सकता है, तभी वह द्वार खुलते हैं और तुम्हारे सभी पूर्वजन्म तुम्हारे सामने होते हैं। लेकिन यह एक स्वचालित यंत्रवत प्रक्रिया है। यद्यपि यह यांत्रिक प्रक्रिया कभी कभी ठीक काम नहीं करती है। संयोग से कुछ ऐसे बच्चे जन्म लेते हैं, जो पूर्व जन्म को स्मरण कर सकते हैं, हालांकि उनके वह जीवन नष्ट हो चुके हैं।
कुछ वर्षों पूर्व एक लड़की मेरे पास लाई गई थी। उसे अपने पिछले दो जन्मों का स्मरण था। उस समय वह केवल तेरह वर्ष की थी, लेकिन यदि तुम उसकी आंखों में झांकते तो वे लगभग सत्तर वर्ष की दिखाई देती थीक्योंकि उसे दो पूर्वजन्मों का, लगभग पिछले सत्तर वर्षों का स्मरण था। उसका शरीर तेरह वर्ष का था, लेकिन उसका मन सत्तर वर्ष पुराना था। वह दूसरे बच्चों के साथ नहीं खेल पाती थी क्योंकि एक सत्तर वर्ष की बूढ़ी महिला बच्चों के साथ कैसे खेल सकती थी? वह एक बूढ़ी स्त्री की भांति ही बातचीत और व्यवहार करती थी और उसका मन उन बीते वर्षों की चिंताओं से भारग्रस्त था, बोझिल था। उसे इतने सही ढंग से अपने पूर्वजन्मों का स्मरण था कि उसके अतीत के उन दोनों परिवारों को भी खोजा जा सका। एक परिवार आसाम में था और दूसरा मध्य प्रदेश में। जब वह अपने पुराने परिवारों के संपर्क में आई तो वह उनके प्रति इतनी आसक्त हो उठी कि एक समस्या खड़ी हो गई कि अब उसे कहां रहना चाहिए?
मैंने उसके माता-पिता से कहा:"इस लड़की को कम से कम तीन सप्ताह के लिए मेरे पास छोड़ दीजिए। मैं उसे इन पूर्व जन्मों को भुलाने में सहायता करने का प्रयास करूंगा, अन्यथा इस लड़की का जीवन एक विकृति बन जाएगा।" वह किसी व्यक्ति के साथ प्रेम में नहीं डूब सकती क्योंकि वह मन से बहुत बूढ़ी है। तुम्हारी वृद्धावस्था का संबंध तुम्हारी स्मृति के साथ होता है। यदि स्मृति का फैलाव सत्तर वर्ष का है, तब तुम सत्तर वर्ष के समान अनुभव करोगे। उसके चेहरे और उसकी शक्ल से ऐसा प्रतीत होता था जैसे उसे बहुत यातना दी गई हो। वह अपने केंद्र पर रुग्ण, बेचैन और बहुत असहज प्रतीत होती थी। उसके साथ प्रत्येक चीज़ गलत हो रही लगती थी।
लेकिन उसके माता-पिता उसकी इन बातों का आनंद ले रहे थे, क्योंकि लोगों
का उनके पास आना-जाना शुरू हो गया था और समाचारपत्रों ने भी खबर छापना शुरू कर दिया था। वे इसप्रपंच का रस ले रहे थे। वे मेरी बात क्यों सुनते? और मैंने उनसे कहा था-"यह लड़की पागल हो जाएगी।"

वे लोग फिर उस लड़की को कभी भी मेरे पास लेकर नहीं आए, लेकिन सात वर्षों बाद वे लोग आए और लड़की पागल हो गई थी। उन्होंने कहा:"अब आप कुछ कीजिए।" मैंने कहा:"अब कोई भी कार्य करना असंभव है। अब केवल मृत्यु ही उसकी सहायता करेगी।"
तुम याद नहीं रख पाते, क्योंकि उन यादों को व्यवस्थित करना तुम्हारे लिए कठिन होगा। यहां तक कि केवल इस जीवन की यादों के साथ ही तुम इतनी अधिक अव्यवस्था उत्पन्न कर लेते हो तो कई जन्मों को याद रखने से तुम पूरी तरह पागल हो जाओगे। इसलिए इसके बारे में सोचो ही मत। यह बिल्कुल असगंत भी है। संगत बात यही है कि यहीं और अभी में जियो और अपने ढंग से कार्य करो। यदि तुम किसी संबंध के द्वारा स्वयं पर कार्य कर सकते हो तो यह बहुत सुंदर है, परंतु यदि तुम किसी संबंध के द्वारा रूपांतरण नहीं कर सकते हो तब उसी प्रयास को एकांत में करो। यही दो मार्ग हैं:एक है प्रेम, प्रेम का अर्थ है कि तुम स्वयं पर संबंधों के माध्यम से कार्य कर रहे हो। दूसरा है ध्यान-ध्यान का अर्थ है कि तुम एकांत में स्वयं पर कार्य कर रहे हो। प्रेम और ध्यान ये दो मार्ग हैं। अनुभव करो, महसूस करो कि तुम्हारे लिए कौन-सा अनुकूल होगा? तब अपनी समस्त ऊर्जा को उसमें लगा दो और उसी मार्ग पर आगे बढ़ो।

दूसरा प्रश्नः
ओशो! आपके शब्द अत्याधिक सुंदर हैं और जब आप हमसे बातचीत करते हैं तो लगता है कि इस शाब्दिक चर्चा के पार भी कोई अदृश्य संवाद घट रहा है, हमें उस मौन संवाद के बारे में बताएं कि हम मौन संवाद के लिए पूर्णता एवं समग्रता से कैसे उपलब्ध हो सकते हैं?

मौन सदा ही यहां है। जब मैं तुमसे बात कर रहा हूं तो मैं शरीर के साथ साथ, अस्तित्वगत रूप से भी तुम्हारे लिए उपस्थित हूं। बातचीत करना अर्थात बुद्धि के माध्यम द्वारा तुमसे संबंध जोड़ना और अस्तित्वगत रूप से उपस्थित होना यानि अपनी समग्रता में तुमसे संबंध जोड़ना है। जब तुम मुझे सुन रहे हो, यदि तुम वास्तव में मुझे समग्रता से सुन रहे हो, तब यह केवल शब्दों का सुनना नहीं है। मुझे सुनते हुए तुम्हारा मन रुक जाता है, मुझे सुनते हुए तुम सोच-विचार नहीं कर रहे हो और जब तुम सोच-विचार में नहीं उलझे हो, तब तुम खुले हुए हो, ग्राह्य हो। जब तुम सोच-विचार नहीं कर रहे हो और तुम्हारा मन कार्य नहीं कर रहा है तो तुम भावना के तल पर उतर आते हो, तुम अनुभव की दुनिया में उतर आते हो। तब उस भावमय पराकाष्ठा में मैं तुम पर छा सकता हूं, तुम्हें अभिभूत कर सकता हूं। ऐसे में, मैं तुम्हारे भीतर गतिशील होकर तुम्हें आच्छादित कर सकता हूं, तुम्हें भर सकता हूं। शब्द तो केवल एक युक्ति या एक उपकरण की भांति प्रयुक्त हो रहे हैं। यहां तक कि मैं स्वयं भी शब्दों में अत्याधिक इच्छुक नहीं हूं। परंतु मुझे बोलना होता है, क्योंकि मेरा यह अनुभव रहा है कि जब मैं बोल रहा होता हूं तो तुम मौन हो जाते हो। यदि मैं नहीं बोल रहा हूं तो तुम अपने भीतर ही मन की बातचीत में व्यस्त हो जाते हो और तब तुम मौन नहीं हो। यदि तुम मेरे बोले बिना ही मौन हो सको तोमुझे बोलने की कोई भी आवश्यकता नहीं होगी और मैं उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा हूं जब तुम मेरे निकट, ठीक मेरे पास निर्विचार होकर बैठ सकोगे। तब वहां बातचीत करने की कोई भी आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि बातचीत करना पक्षपातपूर्ण होगा, आंशिक होगा। तब उस मौन में, मैं प्रत्यक्ष रूप से अपनी समग्रता में तुम्हारे भीतर प्रवेश कर सकता हूं और शब्दों के इस माध्यम की कोई भी आवश्यकता नहीं होगी।
लेकिन यदि मैं तुम्हें अपने समीप शांत और मौन होकर बैठने के लिए कहता हूं तो तुम शांत और मौन बैठने में समर्थ नहीं हो पाते हो। तुम मन ही मन, भीतर ही भीतर बातचीत किए चले जाओगे, तुम्हारी व्यर्थ मानसिक बकबक जारी रहेगी। तुम्हारी इसी अंतर वार्ता को रोकने के लिए मुझे तुम्हारे सामने बोलना पड़ता है। जब तक मैं बोलता हूं तुम व्यस्त बने रहते हो। मेरा बोलना ठीक ऐसा ही है जैसे एक बच्चे का ध्यान बंटाने के लिए उसे खिलौना दे दिया जाए। वह खिलौने में मग्न हो जाता है और खेलते हुए खामोश बना रहता है। मैं

अपने शब्द तुम्हें खिलौनों की भांति ही देता हूं। तुम उनके साथ खेलते हो और खेलते हुएतुम इतने अधिक तल्लीन हो जाते हो कि तुम सहजता से खामोश हो जाते हो। और जब यह खामोशी घटित होती है, तब उस निर्विचार मौन में, मैं तुम्हारे अंदर प्रवाहित हो सकता हूं।
शब्द सुंदर हो सकते हैं, लेकिन वे कभी भी सत्य नहीं हो सकते हैं। सुंदरता एक सौंदर्यबोधक मूल्य है। तुम किसी सुंदर चित्र की भांति इसका आनंद ले सकते हो, लेकिन उस आनंद से कुछ सार्थक घटित होने वाला नहीं है। जब तक शब्द हैं, वह अच्छे हैं, परंतु वह कभी भी सत्य नहीं होते हैं और अपनी मूलभूत प्रकृति के कारण शब्द कभी सत्य हो भी नहीं सकते। सत्य तो केवल मौन में ही सम्प्रेषित किया जा सकता है। परंतु यह एक विरोधाभास है क्योंकि जिन लोगों ने भी इस बात पर बल दिया है कि सत्य केवल मौन में ही सम्प्रेषित किया जा सकता है, उन सब लोगों ने स्वयं ही शब्दों का खूब प्रयोग किया है। यह एक लज्जापूर्ण बात है, लेकिन इस बारे में कुछ भी नहीं किया जा सकता है। तुम्हें शांत और मौन बनाने के लिए ही शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। मुझे सुनते हुए तुम मौन हो जाते हो। यह मौन महत्त्वपूर्ण है और यही मौन तुम्हें सत्य की झलक देगा।
यदि मेरे शब्दों के माध्यम से, तुम्हें सत्य की छोटी सी झलक भी मिल जाए, तो यह झलक तुम्हारे निर्विचार मौन से ही आ रही है, वह मेरे शब्दों से नहीं आ रही है। यदि तुम सुनिश्चित होकर, पूर्णता से यह अनुभव करते हो कि जो कुछ भी मैं कह रहा हूं वह सत्य है तो यह पूर्णता और सुनिश्चितता की अनुभूति भी मेरे शब्दों से नहीं बल्कि तुम्हारे मौन से घटित हो रही है। जब कभी भी तुम निर्विचार और मौन होते हो तो सत्य वहां मौजूद होता है। जब भी तुम अपने भीतर, मन की व्यर्थ बकबक में उलझे हो, जब भी तुम्हारा मन एक नटखट बंदर की तरह बड़बड़ा रहा है, तब तुम सत्य से चूक जाते हो, जबकि सत्य हमेशा हीमौजूद है।
मैं जो कुछ भी करता हूं, जो भी बातचीत करता हूं, वह केवल एक सहयोग है कि तुम मेरे साथ ध्यान में उतर सको। मैं तुम्हें रेचने करने के लिए विवश करता हूं अथवा नृत्य और उत्सव मनाने के लिए राजी करता हूं... मैं जो भी करता हूं, उसका केवल एक ही प्रयोजन है कि किसी भी तरह से शांत और मौन होने में तुम्हारी सहायता कर सकूं। क्योंकि जब तुम निर्विचार और मौन होते हो तो तुम्हारे हृदय के द्वार खुलते हैं तुम ग्रहणशील बन जाते हो और उस क्षण में जैसे तुम्हारा मंदिर में प्रवेश हो जाता है। यह प्रासंगिक नहीं है कि तुम कैसे पूर्णतया मौन हो पाते हो? बस तुम मौन होते हो और उसी क्षण मैं तुम्हारे भीतर प्रवेश पा जाता हूं और तुम मेरे भीतर उतर जाते हो। मौन किसी भी सीमा के बंधन को नहीं जानता। मौन में प्रेम घटित होता है। मौन के उस क्षण में, मैं तुम्हारा प्रेमी बन जाता हूं और तुम मेरे लिए प्रेमिका हो जाते हो। जो भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, वह सब मौन के क्षणों में ही घटित होता है। लेकिन इस मौन और इस निर्विचार की स्थिति को निर्मित करना ही एक समस्या है, इसे निर्मित करने में श्रम लगता है।
इसलिए मैं इस बात में कोई रूचि नहीं रखता कि मैं तुमसे क्या कहता हूं। मेरी रूचि केवल इसमें है कि जब मैं तुमसे कुछ कह रहा हूं... चाहे वह कुछ भी है... क या ख या ग या कुछ भी... उससे तुम्हारे भीतर क्या घटित हो रहा है। कभी-कभी मैं स्वयं अपनी कही गई बातों का ही विरोध करता हूं। आज मैं जो कुछ भी कहता हूं, कल उसी का विरोधी वक्तव्य दे देता हूं क्योंकि मुख्य बात मेरा बोलना नहीं है। मेरा बोलना तो ठीक एक कविता के समान है। मैं एक दार्शनिक नहीं हूं। मैं एक कवि हो सकता हूं, लेकिन मैं एक दार्शनिक नहीं हूं। कल मैं कोई एक बात कहूंगा, परसों मैं कुछ औरदूसरी ही बात कहूंगा। प्रयोजन वह नहीं है। मेरी बातों में विरोध हो सकता है, लेकिन मैं स्वयं विरोधाभासी नहीं हूंक्योंकि आज यदि मैं कुछ कहता हूं तो तुम मौन हो जाते हो, कल यदि मैं पूर्ण रूप से उसका विरोधाभासी विचार व्यक्त करता हूं तो भी तुम मौन हो जाते हो और परसों यदि मैं पुनः कोई विरोधाभासी बात कहता हूं तो भी तुम मौन हो जाते हो। इसलिए जो कुछ भी मैंने कहा है, वह सब विरोधाभासी है परंतु उस विरोध में भी तुम मौन बने रहते हो।

तुम्हारे मौन से ही मेरा सामंजस्य है। मैं दृढ़ और स्थिर रहता हूं, मैं निरंतर परिधि पर विरोधाभासी बातें कहता हूं, लेकिन मेरे भीतर का अंतर प्रवाह एक समान बना रहता है।
स्मरण रहे, यदि मैं तुमसे प्रतिदिन एक ही बात कहूं तो तुम मौन नहीं रह पाओगे। तब तुम ऊब जाओगे और तुम्हारे अंदर अपने ही मन की बातचीत शुरू हो जाएगी। यदि मैं लगभग एक समान बातें ही रोज़ करता रहूं तो वह पुरानी हो जाएंगी और जब बातें पुरानी हो जाएंगी तो तुम्हें सुनने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। बिना सुने भी तुम जानते हो कि मैं क्या कहने जा रहा हूं, इसलिए तुम अपनी भीतर की बातचीत को जारी रखोगे। मुझे बात करते हुए, एक मौलिक अविष्कारी भी बने रहना होगा, अपनी बातचीत में नएपन की खोज करनी होगी, कभी- कभी तुम पर आघात भी करना होगा... लेकिन भीतर से एक ही बात पर ध्यान रखना होगा कि तुम्हारे भीतर निर्विचार स्थिति और नितांत मौन सृजित हो सके।
क्योंकि इसी मौन में, मैं तुम्हारे साथ और तुम मेरे साथ मौजूद रह सकते हो।
इसी परस्पर और गहनतम मौजूदगी में प्रेम और सत्य की खिलावट हो सकती है।
जब भी पूर्ण मौन घटित होता है, तब सत्य की खिलावट होती है।
सत्य मौन की ही एक खिलावट है।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
आठवां प्रवचन

केवल पका फल ही गिरता है

पहला प्रश्नः
ओशो! मैं अनुभव करता हूं कि कठिनाइयों में धैर्यव सहनशीलता का दृष्टिकोण विकसित करने के कारण मैं जीवन को परिपूर्ण ढंग से नहीं जी पाता हूं। मैं जीवन से पलायन करने लगा हूं। जीवन का यह परित्याग, ध्यान में जीवंत बने रहने के मेरे प्रयास के विरूद्ध, एक बोझ की तरह प्रतीत हो रहा है। क्या इसका अर्थ यह है कि मैंने अपने अहंकार का दमन किया है और वास्तव में उससे मुक्त होने के लिए मुझे पुनः उसे पोषण देना चाहिए?

सबसे बड़ी समस्याओं में से यह एक है। यह बहुत विरोधाभासी दिखाई देगा, लेकिन यही सत्य है। इससे पहले कि तुम अहंकार को खो सको, तुम्हें उस तक पहुंचना चाहिए। केवल एक पका हुआ फल ही स्वयं भूमि पर नीचे गिर जाता है। उसका पकना ही सब कुछ है। अपरिपक्व या अधपके अहंकार को छोड़ा नहीं जा सकता है और न ही उसे नष्ट किया जा सकता है। यदि तुम अपरिपक्व अहंकार को मिटाने और नष्ट करने हेतु संघर्ष करते हो तो तुम्हारा प्रयास असफल होगा। वस्तुतः नष्ट करने की अपेक्षा वह अनेक नए सूक्ष्म उपायों से और अधिक मजबूत बन जाएगा।
यहां एक मूलभूत बात समझनी होगी कि अहंकार शिखर तक पंहुचना चाहिए, उसे मजबूत होना चाहिए, उसे पूर्णता तक पहुंचना चाहिए, केवल तभी तुम उसे मिटा सकते हो। एक निर्बल अहंकार को विलुप्त नहीं किया जा सकता है और यही एक समस्या बन जाती है।
पूरब में सभी धर्म अहंकार रहित होने का उपदेश देते हैं, इसलिए पूरब में प्रारंभ से ही प्रत्येक व्यक्ति अहंकार के विरुद्ध हो जाता है। इस विरोधी रवैये के कारण अहंकार कभी भी शक्तिशाली नहीं बनता है, वह पूर्णता की स्थिति तक कभी नहीं आ पाता है, जहां से उसे फेंका जा सके। वह कभी भी परिपक्व नहीं हो पाता है, इसीलिए पूरब में अहंकार का विलुप्त हो पाना बहुत कठिन और लगभग असंभव है।
पश्चिम में, उनके धर्म की पूरी परंपरा और मनोविज्ञान यह प्रतिपादित करते हैं, यह उपदेश देते हैं और यह प्रोत्साहन देते हैं कि लोगों में शक्तिशाली अहंकार होना चाहिए। क्योंकि जब तक तुम्हारा अहंकार शक्तिशाली नहीं होगा, तुम जीवित कैसे रहोगे? तुम्हारा अस्तित्व कैसे बचा रहेगा? जीवन एक संघर्ष है और यदि तुम बिना अहंकार के रहोगे, तो तुम नष्ट हो जाओगे। जीवन के संघर्षों का प्रतिरोध कौन करेगा? कौन लड़ेगा? कौन प्रतियोगिता करेगा? जीवन तो एक निरंतर होने वाली प्रतियोगिता है। पश्चिमी मनोविज्ञान कहता है, अहंकार को उपलब्ध हो जाओ और उसे शक्तिशाली बनने दो।
लेकिन पश्चिम में अहंकार को नष्ट करना भी बहुत सरल है, इसलिए जब कभी
भी पश्चिम का एक खोजी इसे समझ लेता है कि अहंकार ही मूल समस्या है, तो वह पूरब के किसी खोजी की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता से उसे नष्ट कर सकता है। यह एक विरोधाभास है, पश्चिम में अहंकार सिखाया जाता है और पूरब में निरअहंकारिता सिखाई जाती है, लेकिन पश्चिम में अहंकार को विलुप्त करना सरल है और पूरब में यह बहुत कठिन है।
यह तुम्हारे लिए एक कठिन कार्य होगा, पहले तो उस तक पहुंचना है और बाद में उसे छोड़ देना है। याद रखो, तुम केवल उसी चीज़ को खो सकते हो, जो तुम्हारे पास है, तुम्हारे अधिकार में है। यदि वह तुम्हारे पास ही नहीं है तो तुम छोड़ोगे क्या? तुम केवल तभी निर्धन हो सकते हो, यदि तुम एक धनी हो। यदि तुम धनी नहीं रहे हो तो तुम्हारी निर्धनता में भी वह सौंदर्य नहीं हो सकता जिसके बारे में जीसस बात करते हैं:"अपनी आत्मा में निर्धन बनो"। तुम्हारी निर्धनता भी उतने महत्त्व और उतने गरिमा की नहीं हो सकती जैसी कि गौतम बुद्ध की थी, जब वे भिक्षु बन गए थे।

केवल एक धनी व्यक्ति ही निर्धन बन सकता है, क्योंकि तुम वही छोड़ सकते हो, जो तुम्हारे पास होता है। यदि तुम कभी भी धनी ही नहीं रहे हो तो तुम कैसे निर्धन बन सकते हो? तुम्हारी निर्धनता केवल परिधि पर होगी, वह कभी भी आत्मा में नहीं हो सकती है। परिधि पर बाहर से तुम निर्धन होगे, लेकिन अपनी गहराई में तुम समृद्धि के लिए तीव्र लालसा करोगे। तुम्हारी आत्मा समृद्धि के पीछे भटकती रहेगी, वह एक आकांक्षा बन जाएगी और तुम निरंतर समृद्धि और सम्पदा पाने की लालसा करते रहोगे। केवल बाहरी परिधि पर निर्धन होकर, तुम स्वयं को यह सांत्वना दे सकते हो कि निर्धनता अच्छी होती है। लेकिन तुम वास्तव में निर्धन नहीं हो सकते हो। केवल एक धनी व्यक्ति ही, वास्तव में एक समृद्ध व्यक्ति ही निर्धन हो सकता है। केवल समृद्धिवान होना ही वास्तविक धनवान होना नहीं है। क्योंकि तुम तब भी निर्धन हो सकते हो। यदि धन की आकांक्षा अभी भी वहां है, अधिक धन की लालसा है, तो तुम निर्धन ही हो। तुम्हारे पास क्या है, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि तुम्हारे पास पर्याप्त है, तब कामना विलुप्त हो जाती है। जब तुम्हारे पास पर्याप्त समृद्धि और धन संपदा होती है, तो धन की कामना विलुप्त हो जाती है। कामना का पूर्णतः विलुप्त हो जाना ही पर्याप्त होने का मापदंड है, वह यथेष्ट है। तब तुम वास्तव में धनी हो और तुम उसे छोड़ सकते हो, तुम निर्धन हो सकते हो और तुम बुद्ध के समान एक गरिमावान भिक्षुक हो सकते हो। तब तुम्हारी निर्धनता भी एक समृद्धि है और तब तुम्हारी निर्धनता का भी अपना एक साम्राज्य होता है।
ऐसा ही प्रत्येक तथ्य के साथ घटित होता है। उपनिषद अथवा लाओत्सु अथवा जीसस अथवा बुद्ध, वे सभी यह सिखाते हैं कि ज्ञान व्यर्थ है। अधिक ज्ञान संग्रहीत कर लेने से, बहुत अधिक सहायता नहीं मिलती है। सहायता मिलने की बजाय यह एक अवरोध बन सकता है। ज्ञान की आवश्यकता नहीं है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हें अज्ञानी बना रहना चाहिए। यह अज्ञान वास्तविक नहीं होगा। जब तुमने पर्याप्त ज्ञान संग्रहित कर लिया, और तब तुम उसे फेंक पाते हो, तो ही तुम सच्ची निर्दोषता को उपलब्ध हो सकते हो। तब तुम वास्तव में सुकरात के समान निर्दोष बनते हो, जो यह कह सकता है:"मैं केवल एक बात ही जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता।" यह ज्ञान अथवा अज्ञान, तुम इसे कोई भी नाम दे सकते हो, यह पूर्णतया भिन्न है, इसकी गुणवत्ता अतुल्नीय है, क्योंकि आयाम बदल जाता है।
यदि तुम पूरी तरह से अज्ञानी हो, क्योंकि तुम कभी भी किसी ज्ञान तक पहुंचे ही नहीं हो तो तुम्हारे अज्ञान में समझदारी नहीं हो सकती, वह प्रज्ञा नहीं बन सकती। वह सामान्य रूप से ज्ञान की अनुपस्थिति है और अंदर यह तीव्र उत्कंठा और व्यग्रता बनी रहेगी कि कैसे अधिक ज्ञान प्राप्त किया जाए? कैसे अधिक सूचनाएं प्राप्त की जाएं?
जब तुम बहुत अधिक जानते हो, तुमने धर्मशास्त्रां को जान लिया है, तुमने अतीत को और उसकी पूरी परंपरा को जान लिया है, तुमने वह सब कुछ जान लिया है जो जाना जा सकता है, तब अचानक तुम इस समस्त ज्ञान की व्यर्थता के प्रति सचेत हो जाते हो। अचानक तुम सजग हो जाते हो कि यह ज्ञान नहीं है, यह उधार की जानकारी है। यह तुम्हारा अपना अस्तित्वगत अनुभव नहीं है, यह "वह" नहीं है, जो तुमने अभी तक जाना है। हो सकता है कि दूसरों ने यह सब जाना हो परंतु तुमने तो केवल उसे एकत्रित ही किया है। तुम्हारा यह एकत्र करना यांत्रिक है। तुम्हारे भीतर जानने की वह प्यास भीतर से नहीं उठी है। यह विकास नहीं है... यह तो दूसरों के दरवाज़े से उठाया गया व्यर्थ का कूड़ा- कर्कट है, जो उधार का है और बिल्कुल मृत है।
स्मरण रहे कि जानना तब ही जीवंत होता है, केवल और केवल तब ही... जब तुम स्वयं उसे जानते हो, जब वह तुम्हारा सीधा और प्रत्यक्ष अनुभव होता है। लेकिन जब तुम दूसरों से जानते हो, तो वह ज्ञान नहीं होता है, वह केवल एक स्मृति होती है और स्मृति मृत है। जब तुम धर्मग्रंथों के द्वारा अत्याधिक ज्ञान एकत्रित कर लेते हो, तुम्हारे चारों ओर शास्त्र जमा हो जाते हैं, तुम्हारे मन में सघन पुस्तकालय निर्मित हो जाते हैं, तभी अचानक तुम सचेत होते हो कि तुम केवल दूसरों का बोझढो रहे हो। तुम्हारा अपना कुछ भी नहीं है और तुमने उसे स्वयं नहीं जाना है, तब तुम उसे छोड़ सकते हो। तुम उस समस्त

ज्ञान को छोड़ सकते हो। इस प्रकार से छोड़ने में तुम्हारे अंदर एक नई तरह की निर्दोषता उत्पन्न होती है। यह अज्ञान, एक अज्ञानी का अज्ञान नहीं है, वस्तुतः यह ऐसा होगा जैसा कि एक प्रज्ञावान मनुष्य होता है, यह प्रज्ञा का शिखर होगा।
केवल एक बुद्धिमान व्यक्ति ही यह कह सकता है:"मैं नहीं जानता हूं।" परंतु ऐसा कहने में वह ज्ञान के पीछे व्यग्र नहीं हो रहा है। वह सामान्य रूप से एक तथ्य बता रहा है और जब तुम अपने समग्र हृदय से यह कह सकते हो कि "मैं नहीं जानता हूं", तो उसी प्रामाणिक क्षण में तुम्हारी आंखें खुलती हैं और तुम्हारे ज्ञान के द्वार खुलते हैं। उसी वास्तविक क्षण में, जब तुम अपनी समग्रता के साथ यह कह सकते हो कि तुम नहीं जानते हो, तब ही तुम ज्ञान के लायक बनते हो। यह अज्ञान बहुत सुंदर है, लेकिन यह ज्ञान के द्वारा ही उपलब्ध हुआ है, यह वह निर्धनता है, जो समृद्धि के द्वारा ही उपलब्ध हुई है और ऐसा ही अहंकार के साथ भी घटित होता है। यदि अहंकार तुम्हारे पास है, तभी तुम उसे छोड़ सकते हो।
जब बुद्ध अपने सिंहासन को त्याग कर एक भिक्षु बन जाते हैं तो बुद्ध के लिए अब अहंकार की क्या आवश्यकता है? बुद्ध एक राजा थे, अपने सिंहासन पर आरूढ़ थे, तब वह अपने अहंकार के शिखर पर थे, फिर वह अंतिम छोर पर क्यों गए? अपने महल को छोड़कर सड़कों पर उतरकर एक भिखारी क्यों बने? लेकिन बुद्ध के इस भिक्षा मांगने में भी एक सौंदर्य है। पृथ्वी ने ऐसा सुंदर भिखारी, ऐसा समृद्ध भिखारी, ऐसा राजसी और सम्राट जैसा भिखारी कभी नहीं देखा होगा।
जब उन्होंने अपने सिंहासन से नीचे कदम रखा तो हुआ क्या? उन्होंने उसी क्षण अपने अहंकार से नीचे कदम रख दिया। सिंहासन और कुछ नहीं है केवल अहंकार का, शक्ति का, सत्ता का और प्रतिष्ठा का प्रतीक है। जैसे ही उन्होंने नीचे कदम रखा तो निरहंकारिता घटित हुई। यह निरहंकारिता, मात्र विनम्रता नहीं है, यह निरहंकारिता दीनता नहीं है। तुम अनेक विनम्र लोग देख सकते हो, जिनकी विनम्रता के नीचे कहीं गहराई में, सूक्ष्म अहंकार छुपा होता है।
कहा जाता है कि एक बार डायोजनीज़ सुकरात से भेंट करने के लिए आया। डायोजनीज़ एक भिखारी के समान रहता था और वह हमेशा बहुत से पैबंद लगे और अनेक छिद्रों वाले गंदे वस्त्र पहनता था। यदि तुम उसे नए वस्त्र भेंट भी कर दो तो वह उनका प्रयोग नहीं करता था। पहले वह उन्हें इधर-उधर से फाड़ देता, पुराना और गंदा बना देता और तब उसका प्रयोग करता था। वह सुकरात से भेंट करने आया और निरअहंकारिता के बारे में उसने बात करना शुरू कर दिया। लेकिन सुकरात की मर्मभेदी आंखों ने अनिवार्य रूप से यह महसूस किया होगा कि यह व्यक्ति अहंकारहीन नहीं है। दीनता और विनम्रता के बारे में वह जिस ढंग से बात कर रहा था, वह ढंग ही बहुत अहंकारपूर्ण था। ऐसा कहा जाता है कि सुकरात ने उससे कहा:"आपके गंदे और छिद्रयुक्त वस्त्रों के माध्यम से, मैं सिवाय अहंकार के और कुछ भी नहीं देख सकता हूं। आप दीनता और विनम्रता की बात कर रहे हैं, लेकिन वह बात अहंकार के गहन केंद्र से आ रही है।"
ऐसा होगा ही, ऐसे ही ढोंग का, पाखण्ड का, मिथ्या चरित्र का जन्म होता है। तुम्हारे पास अहंकार है, तुम उसे छिपाते हो और तुम बाहर परिधि पर बहुत विनम्र बन जाते हो। यह परिधि की विनम्रता किसी अन्य व्यक्ति को धोखा नहीं दे सकती, वह केवल तुम्हीं को धोखा दे सकती है। फटे हुए और गंदे वस्त्रों के छिद्रों से तुम्हारा अहंकार झांकता है। वह हमेशा ही वहां मौजूद है। उसके न होने का ख्याल केवल एक आत्म-प्रवंचना है। कोई अन्य व्यक्ति धोखा नहीं खाता है और यह तभी होता है यदि तुम अपरिपक्व अहंकार कोफेंकना प्रारंभ कर देते हो।
मैं जो कुछ भी सिखाता हूं, वह विरोधाभासी दिखाई देगा, लेकिन यही जीवन
का सत्य है। जीवन में विरोधाभास अंतर्निहित है। इसलिए मैं तुम्हें अंहकारी बनना सिखाता हूं जिससे कि तुम अहंकार शून्य बन सको। मैं तुम्हें बिल्कुल आदर्श अहंकारी बनना सिखाता हूं, उसे छिपाओ मत, अन्यथा मिथ्या आचरण और दम्भ उत्पन्न होगा। अपरिपक्व अहंकार के साथ संघर्ष मत करो। पहले उसे पकने दो और उसकी सहायता कर उसे शिखर तक ले जाओ। डरो मत, भयभीत होने को कुछ भी नहीं है। इस तरह तुम महसूस करोगे कि अहंकार की वेदना क्या होती है।

जब अहंकार अपने शिखर तक पहुंचता है, तब मुझे या किसी बुद्ध को तुम्हें यह बताने कि आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी कि अहंकार एक नर्क है क्योंकि तुम स्वयं ही उसे जानोगे और अहंकार का वह शिखर तुम्हें हर संभव नारकीय अनुभव प्रदान करेगा। वह एक दुःस्वप्न की भांति होगा। तब तुम्हें यह समझाने की आवश्यकता नहीं होगी कि इस अहंकार को छोड़ दो और इसे साथ लेकर चलना कठिन है।
अत्यंत पीड़ा के बाद ही कोई अनुभव जन्य ज्ञान तक पंहुच पाता है। तुम केवल तर्कपूर्ण विवादों के आधार पर किसी भी चीज़ को नहीं छोड़ सकते। तुम किसी भी विचार या विषय को केवल तभी बाहर फेंक सकते हो, जब वह अत्याधिक पीड़दायी हो जाए, इतना असहनीय हो जाए कि तुम उसका और बोझ उठा ही न सको। तुम्हारा अहंकार अभी तक इतना दुखदाई नहीं हुआ है, इसलिए तुम उसे अपने साथ लिए हुए हो। यह स्वाभाविक है। मैं उसे छोड़ने के लिए तुम्हें राजी भी नहीं कर सकता। फिर भी यदि तुम्हें लगता है कि किसी तरह मैं तुम्हें बहला रहा हूं तो तुम इसे छुपाना प्रारंभ कर दोगे।
कच्ची या अधपकी चीज़ छोड़ी नहीं जा सकती। अधपका फल वृक्ष से और वृक्ष उस अधपके फल से चिपका रहता है। यदि तुम उन्हें बलपूर्वक पृथक करते हो तो पीछे एक घाव छूट जाता है। उस घाव का निशान सदा बना रहता है और घाव भी हमेशा हरा बना रहेगा, जिसके कारण तुम दुख का अनुभव करोगे। स्मरण रहे कि प्रत्येक चीज़ को परिपक्व होने में एक समय लगता है, सही समय पर वह विकसित होगी, पूरी तरह से पकेगी और सही समय आने पर स्वतः ही गिर कर धरती में विलीन हो जाएगी। तुम्हारा अहंकार भी एक समय लेता है। उसे परिपक्व होने के लिए समय की आवश्यकता होती है।
इसलिए अहंकारी बनने से डरो मत। वैसे तो तुम अहंकारी हो ही, अन्यथा तुम बहुत समय पहले हीविलुप्त हो जाते। यही जीवन की यांत्रिक बनावट है, तुम्हें अहंकारी बनना होता है, तुम्हें अपने ढंग से लड़ना होता है। तुम्हें अपने चारों ओर की लाखों कामनाओं से लड़ना होता है और तुम्हें जीवित बने रहने के लिए संघर्ष करना होता है।
अहंकार जीवित बने रहने का एक उपाय है। यदि एक बच्चा बिना अहंकार के जन्म ले तो वह मर जाएगा। वह जीवित नहीं बना रह सकता, ऐसा होना असंभव है, क्योंकि यदि उसे भूख की अनुभूति होगी तो वह अनुभव नहीं करेगा कि मैं भूखा हूं। वह अपनी भूख को अपने से संबंधित करके नहीं जान पाएगा। परंतु अहंकार के होने के कारण ही बच्चा अनुभव करता है कि मैं भूखा हूं। वह रोना शुरू कर देता है और प्रयास करके यह जताता है कि उसे भोजन दिया जाए। बच्चा अपने अहंकार के विकसित होने के साथ-साथ ही विकसित होता है।
इसलिए मेरे अनुसार, अहंकार स्वाभाविक विकास का एक भाग है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम्हें सदा ही अहंकारी बने रहना है। यह एक स्वाभाविक विकास है और तब वहां दूसरा कदम भी है, जब उसे छोड़ देना है। वह भी स्वाभाविक है। लेकिन दूसरा कदम केवल तभी लिया जा सकता है, जब पहला कदम अपनी चरम सीमा अथवा शीर्ष तक पहुंच गया हो।
इसलिए मैं दोनों ही बातें सिखाता हूं। मैं अहंकारपूर्ण होना सिखाता हूं और मैं अहंकार शून्य होना भी सिखाता हूं।
पहले अहंकारी बनो, पूर्ण रूप से अहंकारी, परिपूर्णता से अहंकार के शीर्ष तक पहुंचो, जैसे मानो पूरा अस्तित्व तुम्हारे लिए ही विद्यमान है और तुम्हीं उसके केंद्र में हो, सभी सितारे तुम्हारे चारों ओर घूम रहे हैं और सूरज सिर्फ तुम्हारे लिए ही उदित होता है और यहां प्रत्येक चीज़ तुम्हारे वजूद की सहायता के लिए ही विद्यमान है। केंद्र बनो और भयभीत मत हो, क्योंकि यदि तुम डर जाते हो तब तुम कभी भी परिपक्व नहीं होगे। उसे स्वीकार करो। वह तुम्हारे विकास का एक भाग है। उसका आनंद लो और उसे शिखर तक ले जाओ।
जब वह शिखर तक आता है, अचानक तुम सचेत हो जाओगे कि तुम केंद्र नहीं हो।
यह एक भ्रम है और यह एक बचकाना तरीका है। लेकिन पहले तुम एक बच्चे थे, इसलिए उसमें कुछ भी गलत नहीं था बल्कि वह जरूरी था। अब तुम परिपक्व हो गए हो और देख पा रहे हो कि तुम केंद्र नहीं हो।
वास्तव में जब तुम देखते हो कि तुम केंद्र नहीं हो, तो तुम यह भी देखते
हो कि वहां अस्तित्व में कोई भी केंद्र नहीं है अथवा प्रत्येक स्थान पर ही

केंद्र है। या तो कोई भी केंद्र नहीं है और अस्तित्व समग्रता में विद्यमान है, बिना किसी केंद्र के एक पूर्णता में है, वह स्वयं ही नियंत्रक है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि प्रत्येक अणु ही केंद्र है।
जेकब बोहमे ने कहा है कि पूरा संसार केंद्रों से आपूरित है, प्रत्येक अणु एक केंद्र है और वहां कोई भी परिधि नहीं है। सर्वत्र केंद्र ही हैं, परिधि कहीं भी नहीं है। ये दो संभावनाएं हैं। दोनों का समान अर्थ है। केवल शब्द भिन्न हैं और विरोधाभासी हैं, लेकिन पहले एक केंद्र बनो।
यह कुछ इस प्रकार है कि जैसे तुम एक सपने में हो, यदि सपना अपनी पराकाष्ठा तक पहुंचता है तो वह टूट जाएगा। हमेशा ऐसा ही होता है, जब कभी भी सपना अपनी चरम सीमा तक आता है, वह टूट जाता है। एक सपने की पराकाष्ठा क्या होती है? एक सपने की चरम सीमा वह अनुभूति होती है जब वह वास्तविक लगने लगता है। तुम अनुभव करते हो कि यह एक सच्चाई है, यह सपना नहीं है और तुम आगे और आगे बढ़ते चले जाते हो तथा सपने के सर्वोच्च शिखर तक पहुंचते हो और वहां वह लगभग यथार्थ बन जाता है।
लगभग ही बनता है, कभी भी वास्तविक नहीं बन सकता। वह वास्तविकता के इतने अधिक निकट आ जाता है कि अब तुम उसके आगे नहीं जा सकते, क्योंकि एक कदम अधिक आगे जाने से सपना वास्तविक बन जाएगा और वह यथार्थ बन नहीं सकता, क्योंकि वह एक सपना है। अतः जब सपना वास्तविकता के अत्यंत निकट आ जाता है तब नींद टूट जाती है, सपना खंड-खंड हो जाता है और तुम पूरी तरह जाग जाते हो। ठीक ऐसा ही सभी तरह की भ्रांतियों के साथ भी होता है। अहंकार ही सबसे बड़ा सपना है। उसके पास उसका सौंदर्य है और साथ ही दुख भी हैं। उसके पास अपना आनंद है और पीड़ा भी है। उसके पास अपने स्वर्ग और नर्क दोनों ही हैं। कभी-कभी सपने बहुत सुंदर होते हैं और कभी-कभी वे दुःस्वप्न होते हैं, लेकिन दोनों ही सपने हैं।
इसलिए मैं समय से पूर्व तुम्हें तुम्हारे सपने से बाहर आने के लिए नहीं कहता हूं। नहीं, कभी भी कोई चीज़ समय से पूर्व मत करो, उन्हें विकसित होने का पूरा मौका दो, उन्हें अपना पर्याप्त समय लेने दो। ताकि सब कुछ प्राकृतिक रूप से घटित हो सके। इससे अहंकार गिर जाएगा। अहंकार स्वतः ही गिर सकता है यदि तुम उसे पूरी तरह से विकसित होने की अनुमति दो और साथ ही इस विकास में उसकी सहायता करो। तब उसे छोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वस्तुतः वह स्वयं ही छूट जाता है।
यह बहुत गहन तथ्य है, क्योंकि यदि बलपूर्वक तुम कुछ छोड़ने का प्रयास करते हो तो अहंकार भीतर ही बना रहता है। उसे कौन छोड़ेगा? यदि तुम सोचते हो कि तुम उसे छोड़ोगे, तो यह तुम्हारा होना ही अहंकार है। इसलिए तुम जो भी छोड़ोगे वह वास्तविक नहीं होगा। वास्तविक तो भीतर सुरक्षित बना रहेगा और जो तुम छोड़ रहे हो, वह कुछ और ही है। तुम स्वयं ही, स्वयं को अहंकार मुक्त नहीं कर सकते हो। इसे कौन करेगा? यह स्वयं होता है, यह कोई क्रिया नहीं है। तुम अहंकार में विकसित होते हो और एक स्थिति ऐसी आती है कि नरक जैसा वातावरण उत्पन्न हो जाता है और अचानक स्वप्न टूट जाता है। आप महसूस करते हो कि बतख बोतल से बाहर ही है, वह कभी भी बोतल के अंदर थी ही नहीं। तुम कभी भी अहंकार नहीं थे, यह केवल तुम्हारा एक सपना है और इस सपने का होना आवश्यक भी है इसीलिए मैं इस सपने की निंदा नहीं करता हूं, यह विकास का एक आवश्यक अंग है।
जीवन में प्रत्येक चीज़ आवश्यक है। कुछ भी अनावश्यक नहीं है और अनावश्यक हो भी नहीं सकता है। अब तक जो कुछ भी हुआ है, उसे होना ही था और जो कुछ भी हो रहा है, वह किसी गहन कारण से ही हो रहा है। परंतु तुम्हारा भ्रम भी एक सीमा तक आवश्यक है। यह भ्रम केवल एक सुरक्षा कवच की तरह है, जो तुम्हें जीवित रहने में मदद करता है। परंतु सदैव इस कवच की आवश्यकता नहीं होती है। जब तुम परिपक्व हो जाते हो, तैयार हो जाते हो तो उस समय इस कवच को तुरंत ही तोड़कर बाहर आ जाओ। अहंकार अंडे के छिलके की तरह, तुम्हारे विकास में तुम्हारी सहायता करता है। परंतु जब तुम तैयार हो गए हो, तो इस छिलके को तोड़ दो और अंडे से बाहर आ जाओ। अहंकार एक खोल अथवा छिलका है, लेकिन प्रतीक्षा करो। शीघ्रता करने से बहुत अधिक सहायता नहीं मिलेगी, यह

जल्दबाजी सहायक नहीं होगी, यह बाधा पहुंचा सकती है। समय दो, इंतजार करो, निंदा मत करो क्योंकि कौन निंदा करेगा?
तथाकथित साधु-संतों के पास जाओ, वे विनम्रता और दीनता की बात करते हैं। पर उनकी आंखों में झांककर देखो तो वैसा परिशुद्ध अहंकार तुम्हें कहीं भी नहीं मिलेगा। उनके अहंकार ने धर्म, योग और संतत्व के लबादे ओढ़ लिए हैं, उनके अहंकार ने केवल पोशाक बदल ली है, लेकिन भीतर वह मौजूद है। हो सकता है कि अब वे धन और पद को एकत्रित नहीं कर रहे हैं, परंतु अब वे अनुयायी एकत्र कर रहे हैं। अब वे रूपए नहीं गिन रहे हैं परंतु अब वे अपने अनुगामियों को गिन रहे हैं, अब उनका ध्यान इस बात पर है कि उनके कितने अधिक अनुयायी हैं?
हो सकता है कि वे इस संसार की वस्तुओं के पीछे न भाग रहे हों, पर वे उस दूसरे संसार की चीज़ों के पीछे भाग रहे हैं। लेकिन यह संसार हो या वह संसार-दोनों ही संसार हैं। पर अब वे ज्यादा लोभी प्रतीत होते हैं क्योंकि उनके अनुसार इस संसार की वस्तुएं तो अस्थायी हैं, इस संसार की वस्तुएं क्षणिक हैं, और वे शाश्वत सुख और आनंद चाहते हैं। अब उनकी लालसा अधिक बड़ी है, उनका लालच बहुत गहन है। अब वे केवल क्षणिक सुखों से संतुष्ट नहीं हो सकते हैं। उनका लोभ परिपूर्णता पर है और यह लोभअहंकार से संबंधित है। लोभ ही अहंकार की भूख है।
इसलिए ऐसा होता है कि कभी-कभी पापियों और दुराचारियों की अपेक्षा, साधु-संत कहीं अधिक अहंकारी होते हैं और तब वे उस परमात्मा से कहीं दूर चले जाते हैं। कभी-कभी पापी अथवा अपराधी उन तथाकथित संतों की अपेक्षा परमात्मा को कहीं अधिक सरलता से उपलब्ध हो पाते हैं, क्योंकि अहंकार ही उन संतों की एकमात्र बाधा है। यह मेरा अनुभव रहा है कि संतों की अपेक्षा पापी अथवा अपराधी कहीं अधिक सरलता से अपने अहंकार को छोड़ पाते हैं क्योंकि वे उसका विरोध नहीं करते हैं। वे अपने अहंकार को पुष्ट करते हैं, वे उसमें आनंद लेते हैं और वे उसके साथ समग्रता से जीते हैं। संत हमेशा अहंकार के साथ लड़ते रहे हैं, इसलिए वे अपने अहंकार को कभी भी परिपक्व होने की अनुमति ही नहीं देते हैं।
इसलिए यह मेरा दृष्टिकोण है कि अहंकार को छोड़ना है, लेकिन इस प्रक्रिया के लिए एक लंबी प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है और तुम उसे तभी छोड़ सकते हो, यदि पहले तुम उसे विकसित करते हो। पूरी घटना घटने के लिए कठोर परिश्रम करना है, क्योंकि मन कहता है:"यदि हमें इसे छोड़ना ही है, तब उसे विकसित क्यों किया जाए" मन कहता है:"जब हमें उसे नष्ट करना है, तब उसे सृजित ही क्यों किया जाए" यदि तुम मन की बात सुनते हो तो तुम कठिनाई में पड़ोगे। मन हमेशा तर्क-वितर्क पूर्ण होता है और जीवन हमेशा अतार्किक है, इसलिए तर्क और जीवन कभी भी आपस में नहीं मिलते। यह एक सामान्य-सा तर्क है, साधारण सा गणित है कि यदि तुम्हें इस घर को नष्ट करना है, तब उसे बनाया ही क्यों जाए? इस पूरी मुसीबत को क्यों मोल लिया जाए? यह प्रयास ही क्यों किया जाए, जिससे तुम्हारा समय और ऊर्जा व्यर्थ नष्ट हो। घर वहां है ही नहीं, इसलिए उसे बनाकर बाद में पुनः नष्ट क्यों किया जाए?
वास्तव में लक्ष्य घर नहीं है, लक्ष्य तुम हो। घर के निर्माण की प्रक्रिया में तुम्हारे भीतर कुछ बदलता है और निर्माण के बाद जब घर को नष्ट किया जाएगा तो तुम पूरी तरह ही बदल जाओगे, तुम वैसे ही नहीं बने रहोगेक्योंकि बाहर घर को बनाने की पूरी प्रक्रिया के साथ साथ, तुम्हारे भीतर भी अहंकार के विकास की प्रक्रिया चल रही थी। जब घर तैयार हो जाता है, तुम उसे पुनः नष्ट कर देते हो, नीचे गिरा देते हो, तब एक अकथनीय परिवर्तन होगा।
मन तर्कपूर्ण है और जीवन द्वंदात्मक है। मन एक सीधी सरल रेखा में गतिशील होता है और जीवन हमेशा एक छोर से छलांग लगाकर दूसरे पर जाता है, जीवन सदा विरोधाभास से भरा हुआ है। जीवन द्वंदात्मक है। जीवन कहता है, सृजन करो और फिर उसी का विध्वंस करो। जन्म लो और मृत्यु की तरफ जाओ। समृद्ध बनो और फिर निर्धन हो जाओ। जीवन कहता है कि अहंकार के सर्वोच्च गौरीशंकर शिखर पर पहुंचो और तब निरअहंकारिता की एक गहरी खाई बन जाओ। ऐसे

में तुम दोनों ध्रुवों को ही जान लेते हो-भ्रांति को और सत्य को, माया को और ब्रह्म को भी।
लगभग प्रतिदिन ऐसा होता है, कोई भी व्यक्तिसंन्यास में दीक्षित होने
के लिए आता है और तब उसका मन भी कार्य करना शुरू कर देता है तथा वह मुझसे कहता है:"नारंगी वस्त्र पहनना मुझे कहीं अधिक अहंकारी बनाएगा, क्योंकि तब मैं अनुभव करूंगा कि मैं कोई भिन्न और विशिष्ट व्यक्ति हूं, मैं एक संन्यासी हूं, एक वह व्यक्ति हूं जिसने परित्याग किया है। इसलिए नारंगी रंग के वस्त्र पहनना मुझे अधिक अहंकारी बनाएगा।" मैं उससे कहता हूं-"अहंकारी ही बनो, लेकिन सचेत बने रहो।"
यदि तुम उसके प्रति मूर्च्छित हो तो अहंकार एक रुग्णता है और तुम अपने अचेतन में उसे छिपाते हो। तुम उसका आनंद ले सकते हो। तुम उससे खेल सकते हो। सचेत और सावधान होकर उस खेल को खेलो। खेल बुरा नहीं है, लेकिन जब तुम भूल जाते हो कि यह एक खेल है और बहुत अधिक गंभीर बन जाते हो, तब समस्या उत्पन्न होती है।
इसलिए मैं कहता हूं कि संन्यास लेना एक गंभीर बात नहीं है, वह एक खेल है, निश्चित रूप से एक धार्मिक खेल है। इस खेल के अपने नियम हैं, क्योंकि प्रत्येक खेल के कुछ नियम होना अनिवार्य है और बिना नियमों के कोई भी खेल नहीं खेला जा सकता। जीवन बिना नियमों के हो सकता है, लेकिन खेल बिना नियम के नहीं हो सकते।
यदि कोई व्यक्ति कहता है:"मैं इस नियम का अनुसरण नहीं करूंगा", तब तुम
वह खेल नहीं खेल सकते। तुम ताश खेलते हो, तब तुम नियमों का अनुसरण करते हो। तुम यह कभी नहींकहते:"ये नियम केवल बेबुनियाद और नकली हैं, क्या हम इन्हें बदल नहीं सकते" तुम उन्हें बदल सकते हो, लेकिन तब खेलना कठिन हो जाएगा। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने नियमों का अनुसरण करता है, तब खेलना असंभव है। जीवन में यह संभव है। तुम जैसे चाहो खेल सकते हो, क्योंकि जीवन कभी भी नियमों में विश्वास नहीं करता, वह नियमों के पार है। लेकिन खेलों के नियम होते हैं, इसलिए स्मरण रहे, जहां कहीं भी तुम नियम देखते हो, तुरंत जान लो कि यह एक खेल है। यही मापदंड है:जहां कहीं भी तुम नियमों को देखो, तुरंत जान लेना कि यह एक खेल है, क्योंकि खेल नियमों के द्वारा ही अस्तित्व में हैं।
इसलिए मैं कहता हूं-"नारंगी वस्त्र पहनो, माला पहनो।" स्पष्ट रूप से
यह एक खेल है। इसे जितनी अच्छी तरह खेल सकते हो, खेलो, इस बारे में गंभीर मत बनो, अन्यथा तुम उसके प्रयोजन से चूक जाते हो। अहंकारी बनो, पूर्ण रूप से विकसित और परिष्कृत बनो। अपने अहंकार पर कार्य किए जाओ और उसे एक सुंदर मूर्ति बनाओ। इससे पहले कि तुम इस अहंकार को अस्तित्व को वापस दो, उसमें देने योग्य कुछ चीज़ अवश्य होनी चाहिए, उसे एक उपहार जैसा होना चाहिए।

दूसरा प्रश्नः
ओशो! आपने कहा है कि आंतरिक रूपांतरण की विधि कोप्राप्त करने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। कृपया ऊर्जा के विषय में बताएं कि कैसे हम उसका निर्माण कर सकते हैं, कैसे उसे संरक्षित कर सकते हैं और किन कारणों से हम उसे खो देते हैं? क्या हम बाहरी स्रोतों से भी उसे प्राप्त कर सकते हैं?

पहली बात यह कि तुम उस शाश्वत ऊर्जा का एक भाग हो और इस अनंत सागर की
एक लहर हो। यदि तुम इसे स्मरण रख सकते हो तो तुम कभी भी ऊर्जा को गंवाते नहीं हो, क्योंकि ऊर्जा का अनंत स्रोत सदा उपलब्ध है। तुम केवल एक लहर हो और तुम्हारे ही अंदर नीचे गहराई में वह सागर छिपा हुआ है।
तुम जन्म लेते हो, कौन तुम्हें जन्म देता है? शरीर के भीतर गर्भ में प्रवेश करने के लिए कौन तुम्हें ऊर्जा देता है? शरीर को एक स्वचालित, एक संवेदनशील और एक सूक्ष्म यंत्रप्रणाली की तरह कार्य करने के लिए और उसे जीवित बनाए रखने के लिए कौन ऊर्जा देता है? शरीर सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष अथवा नब्बे वर्ष तक लगातार जीवित रहता है। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि मृत्यु तो एक दुर्घटना अथवा एक संयोग है और शरीर अनंत समय तक इसी प्रकार

जीवित रह सकता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि मृत्यु के अस्तित्व की अब कोई भी आवश्यकता नहीं है। मृत्यु घटित होती है क्योंकि हम अपने चारों ओर की अनंत ऊर्जा का प्रयोग कर पाने में असमर्थ हो जाते हैं।
इसलिए पहली बात यह स्मरण रखने की है कि तुम अनंत ऊर्जा के एक भाग हो। निरंतर इसे स्मरण रखो और उसे अनुभव भी करो। घूमते हुए, चलते हुए, भोजन करते और सोते हुए, हर पल यह अनुभव करो कि तुम अनंत ऊर्जा हो। उपनिषद भी यही कहते हैं कि तुम ब्रह्म हो, शाश्वत हो। यदि हमेशा तुम यह अनुभव कर सको कि तुम ही ब्रह्म हो और शाश्वत हो, जितना ज्यादा तुम इस भाव में रहोगे उतना ही तुम सजग बनोगे कि तुम ऊर्जा को किसी भी प्रकार से गंवा नहीं रहे हो। स्रोत सदैव ही उपलब्ध रहता है। तुम केवल एक वाहन बन जाते हो।
तब जो कुछ भी तुम करना चाहते हो, वही करो। कार्य करने से ऊर्जा नष्ट नहीं होती है।
मनुष्य के मन के भ्रमों में से एक यह भी है कि यदि वह कुछ कार्य करता
है तो ऊर्जा नष्ट होती है। नहीं, यदि तुम ऐसा सोचते हो कि तुम्हारे कुछ करने से तुम्हारी ऊर्जा का क्षय हो रहा है, तो वह क्षय तुम्हारे कुछ करने से नहीं, वास्तव में तुम्हारे इस विचार के कारण ही हो रहा है। अन्यथा किसी भी क्रिया द्वारा तुम ऊर्जा प्राप्त कर सकते हो। यदि इस संबंध में तुम कोई भी विचार न रखो तो भी ऊर्जा का कोई क्षरण नहीं होता है।

जब लोग सेवानिवृत्त हो जाते हैं, वे यह सोचना शुरू कर देते हैं कि अब उनके पास कम ऊर्जा है, इसलिए उन्हें सभी काम छोड़ कर ज्यादा से ज्यादा आराम करना चाहिए। उन्हें कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए, अन्यथा उनकी ऊर्जा समाप्त हो जाएगी। और ऐसे में वे अपने निश्चित समय की तुलना में कहीं अधिक जल्दी मर जाते हैं। सांख्यिकी गणना के अनुसार औसत जीवन काल की दर दस वर्ष तक कम हो गई है। एक व्यक्ति जो कार्य कर रहा है वह सत्तर वर्ष तक जीवित रह सकता है परंतु जो सेवानिवृत्त है वह साठ वर्ष की आयु में ही मर जाएगा। तुम्हारा शरीर एक डाइनमो की भांति है, जितना अधिक तुम उसका प्रयोग करते हो, उतनी ही अधिक ऊर्जा तुम्हें अनंत स्रोत से प्राप्त हो जाती है। यदि तुम उसका उपयोग ही नहीं करते हो तो अधिक ऊर्जा की आपूर्ति करने की आवश्यकता ही नहीं है। तब धीमे-धीमे अनंत स्रोत से होने वाली यह आपूर्ति रुक जाती है। इसलिए अधिक-से-अधिक सक्रिय बनो और तुम्हारे पास अधिक ऊर्जा होगी। कम सक्रिय होने से तुम उस अनंत ऊर्जा के प्रवाह को गंवा दोगे। क्रियाशील होने से ऊर्जा का क्षय नहीं होता है, अपितुउसका नवीनीकरण होता है। तुम ऊर्जा का प्रयोग करते हो तो अज्ञात एवं अनंत स्रोत से और अधिक ऊर्जा तुम्हें उपलब्ध हो जाती है।
वृक्षों की ओर देखो। सूरज जैसे ही उदय होता है वैसे ही वृक्षों की पत्तियों में से पानी का भाप बनना प्रारंभ हो जाता है। जिस क्षण एक पत्ती का जल, वाष्प बनता है उसी क्षण जड़ों से नया जल परिभ्रमण करता हुआ उस पत्ती तक पंहुच जाता है। यह एक लंबी प्रक्रिया है। पत्ती जल को मुक्त करती है, तब ठीक उस पत्ती के आसपास शुष्कता उत्पन्न हो जाती है। वह शुष्कता तुरंत ही टहनी से जल को चूस लेती है और तब टहनी शुष्क हो जाती है और टहनी शाखाओं से जल चूसती है। यही क्रम नीचे जड़ों तक चलता रहता है और अंत में जड़ें पृथ्वी से जल चूसती हैं। यदि पत्तियां यह सोचें कि हमारा जल भाप बन जाएगा और हम मर जाएंगी, हमें प्यास का अनुभव होगा, तब यह वृक्ष मरने जा रहा है, क्योंकि तब नए स्रोत उपलब्ध नहीं होंगे और तब जड़ें भी कार्य करने में समर्थ न हो सकेंगी।
तुम्हारे पास भी जड़ें हैं, जो अनंत तक फैली हुई हैं। जब तुम ऊर्जा का प्रयोग करते हो, तुम उस अनंत स्रोत से ऊर्जा ग्रहण करते हो। तुम्हारी जड़ें कार्य करना प्रारंभ कर देती हैं। मनुष्य के मन में यह एक भ्रामक विचार है कि क्रियाशील होने पर हम ऊर्जा गंवा देते हैं। नहीं, तुम जितने अधिक सक्रिय होगे, तुम्हारे पास उतनी ही अधिक ऊर्जा होगी। तुम जितने कम सक्रिय होगे, उतनी ही कम ऊर्जा का प्रवाह जीवन की सभी दिशाओं से तुम्हें मिल पाएगा। सक्रियता के संदर्भ में, यह बात जीवन के सभी आयामों पर लागू होती है।

अधिक प्रेम करो और तब तुम्हारे पास अत्याधिकप्रेम होगा, तुम देने में सक्षम हो पाओगे। एक कंजूस की तरह सोचो-"यदि मैं अधिक प्रेम करता हूं तब मेरा प्रेम बिखर जाएगा और कभी न कभी मेरे पास प्रेम की कमी हो जाएगी, इसलिए अच्छा यही है कि मैं अपना प्रेम सुरक्षित रखूं।" तब तुम्हारा प्रेम मर जाएगा और तुम प्रेम करने के योग्य ही नहीं रहोगे, न स्वयं को और न दूसरे को।
प्रेम करो... इससे और अधिक प्रेम उपलब्ध होता है। तुम्हारे पास जो भी है, उसका अधिक प्रयोग करागे तो और अधिक तुम्हारे पास होगा। जीवन का यही नियम है। तुम मिठाई का स्वाद तभी ले सकते हो जब उसे खाओगे, यदि बचाने की कोशिश करोगे तो तुम भी स्वाद न ले पाओगे और मिठाई भी खराब हो जाएगी। करुणा, प्रेम अथवा सक्रियता- चाहे कोई भी आयाम हो, सभी में यह समान नियम लागू होता है। तुम जिस भी आयाम में अधिक प्रगाढ़ होना चाहते हो, उसमें इसी नियम का पालन करो। यदि तुम प्रेम का अनंत स्रोत बनना चाहते हो, तो जितना हो सके उतना अधिक प्रेम बांटो, तुम उसे बेशर्त बांटते चले जाओ। कंजूस मत बनो, केवल कंजूस लोग ही ऊर्जा को गंवा देते हैं। हम सभी लोग कंजूस हैं, इसी कारण हम हमेशा अपव्यय का, खालीपन का अनुभव करते हैं।
लेकिन यह विचार खतरनाक और जहरीला हो सकता है। यदि तुम्हारे पास एक विचार है, तब वह विचार कार्य करता है। मन सम्मोहन के द्वारा कार्य करता है। उदाहरण के लिए, कुछ दशक पहले तक संसार-भर में यह सिखाया जाता था कि तुम्हारे पास सेक्स-ऊर्जा का अत्यंत सीमित भंडार है। तुम प्रेम करते हो तो ऊर्जा नष्ट होती है। इस एक विचार ने संसार-भर में सेक्स-ऊर्जा को कंजूसी से प्रयोग करने की धारणा को जन्म दिया। यह विचार ही भ्रमपूर्ण है। लेकिन यदि तुम्हारे मन में यह विचार प्रवेश कर गया है, तब तुम जब भी प्रेम करोगे तो निरंतर स्वयं-सम्मोहन के परिणाम स्वरूप, अपनी ऊर्जा के नष्ट होने का अनुभव करोगे। इस तरह के अनुभव से ऊर्जा व्यर्थ नष्ट हो रही है, ऊर्जा का अपव्यय हो रहा है। यह विचार तुम्हारे मन में गहराई से अंकित हो जाता है।
जब तुम प्रेम करते हो तो तुम इतने अधिक संवेदनशील और ग्राह्यशील हो जाते हो कि तुम उस समय जो भी सोचते हो, वह तुम्हारे भीतर गहराई में चला जाता है। तब परिणाम उसका अनुसरण करते हैं और तुम अपनी ऊर्जा के नष्ट होने का अनुभव करते हो। तुम्हारे ऐसा अनुभव करते ही सच में ऊर्जा क्षय हो जाती है। अतः जब तुम ऊर्जा के नष्ट होने का अनुभव कर रहे हो, तब पुराना विचार और अधिक मजबूत तथा शक्तिशाली बन रहा है। यह एक दुष्चक्र बन जाता है।
अब वैज्ञानिक, कुछ जैव-विज्ञानी कहते हैं कि तुम्हारे पास सेक्स की अनंत ऊर्जा है और तुम उसे कभी भी गंवा नहीं सकते हो क्योंकि प्रतिदिन तुम्हारे भोजन से, सांस लेने से और तुम्हारी क्रियाशीलता के कारण वह ऊर्जा निरंतर सृजित हो रही है। वह किसी सीमित भंडार की भांति नहीं है कि यदि एक विशिष्ट मात्रा में तुम उसका उपयोग कर लेते हो, तो उतनी मात्रा कम हो जाएगी या तुम्हारा भंडार कम हो जाएगा। नहीं, ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। वहां ऊर्जा का सीमित भंडार नहीं है बल्कि ऊर्जा निरंतर निर्मित हो रही है, हर पल निर्मित हो रही है। यदि तुम इसका उपयोग नहीं करते हो, तो वह बासी हो जाती है और मृत हो जाती है। यदि तुम उसका प्रयोग नहीं करते हो तो वह तुम्हें भी बासी, पुराना और मृत बना देती है। तब ऊर्जा का प्रवाह रुक जाता है। लेकिन यदि तुम ऊर्जा कोप्रवाहित होने का अवसर प्रदान करते हो तो वह निरंतर और अधिकाधिक मात्रा में तुम्हारे लिए उपलब्ध रहती है।
जीसस एक अद्भुत एवं आधारभूत बात कहते हैं:"यदि तुम जीवन को जोर से जकड़ लेने का प्रयास करते हो तो तुम जीवन को गंवा देते हो। यदि तुम उसे खोने के लिए तैयार हो तो वह प्रचुरता में तुम्हें उपलब्ध हो जाता है।"
पूरे संसार में बीसवीं सदी तक यही सिखाया जाता था कि किसी भी तरह से यदि तुम्हारे वीर्य का स्खलन होता है तो वह अत्याधिक विनाशकारी है, तुम पागल हो सकते हो, अपंग हो सकते हो। यदि शारीरिक तौर पर कोई नुकसान न भी हो तो कम-से-कम तुम्हारी बुद्धिमत्ता तो कम हो ही जाएगी। तुम्हारे सनकी या पागल या दिमागी कमज़ोर होने की संभावना अधिक हो जाएगी। यह सब पूर्ण रूप से गलत है। लेकिन इस शिक्षा ने अनेक लोगों को निर्बल बना दिया, पागल बना दिया,

अनेक लोग मूर्ख और सामान्य बुद्धि तक ही सीमित रहे। हालांकि यह केवल एक विचार था... अत्यंत खतरनाक विचार। जब बच्चा बड़ा होता है, चौदह अथवा पंद्रह वर्ष की आयु में जब वह बच्चा विकसित और परिपक्व बनता है तो उसका वीर्य स्वतः ही स्खलित होने लगता है। वह इस बारे में कुछ भी नहीं जानता है और न ही कुछ कर सकता है। वह हस्तमैथुन करेगा और यदि उसमें नैतिकता का स्तर ऊंचा है, तो वह हस्तमैथुन नहीं करेगा बल्कि रात में स्वप्नदोष में वह अपने वीर्य को खो देगा। इस तरह चारों ओर यह प्रचार होता चला गया कि यदि तुम अपना वीर्य खोते हो तो तुम सब कुछ खो दोगे।
भारत में यह कहा जाता था और लोग अब भी यह कहते पाए जाते हैं कि यदि पुराने संतों और उनके अनुयायियों के पास जाओ तो वे बताते हैं:"वीर्य की एक भी बूंद गिरने का अर्थ है कि शरीर की चालीस दिनों के कार्य करने की ऊर्जा नष्ट हो गई। इसलिए वीर्य की एक बूंद का सृजन करने के लिए शरीर को चालीस दिनों तक श्रम करना होगा। वीर्य की एक बूंद भी नष्ट हो गई तोशरीर के चालीस दिनों का श्रम व्यर्थ नष्ट हो गया।"
छोटे बच्चे इस बारे में कुछ भी नहीं जानते, उनमें बहुत अधिक ग्राह्यता होती है, इसलिए जब पूरा समाज यह शिक्षा देता है, तो वे उसके द्वारा सम्मोहित हो जाते हैं। वे इस संदर्भ में कुछ भी नहीं कर पाते हैं क्योंकि जब शरीर तैयार होता है तो वीर्य स्वतः ही प्रवाहित होता है और वीर्य बाहर जाने को बाध्य हो जाता है। यह शिक्षा उन्हें चारों ओर से दी जा रही है और वे दुविधा के कारण किसी भी व्यक्ति को यह बता भी नहीं सकते कि वे अपना वीर्य खो रहे हैं। वे इस बात को छिपाते हैं। वे अंदर से दुखी होते हैं और निरंतर एक यातना से गुज़रते हैं। तब वे स्वयं को एक अपवाद मानने लगते हैं, क्योंकि वे यह नहीं जानते कि प्रत्येक व्यक्ति इसी चीज़ से होकर गुज़र रहा है। कोई भी व्यक्ति इस बारे में न तो कुछ बोलता है और न ही कोई बात करता है और यदि कोई बात करता भी है तो विरोध में ही करता है।

इसलिए प्रत्येक युवा स्वयं को अपवाद ही मानता है, क्योंकि वह सोचता
है कि केवल वह ही इस पीड़ा से गुजर रहा है। शीघ्र ही वह संभ्रमित होने लगता है, वह अनुभव करेगा कि उसकी बुद्धिमत्ता में कमी हो रही है, वह पागल होता जा रहा है और उसका जीवन नष्ट हो गया है।
अनेक लोग मुझे पत्र लिखते हैं और उनका कहना है कि उन्होंने इतना अधिक वीर्य नष्ट कर दिया है जिससे उनका संपूर्ण जीवन बर्बाद हो गया है और उन्होंने अपनी अत्याधिक काम-ऊर्जा नष्ट कर दी है। यह विचार बहुत भयानक है और यदि विचार ऐसा है तो परिणाम भी ऐसा ही घटित होगा। यह सब सम्मोहन के द्वारा होता है।
कोई भी विचार एक सहायक की तरह भी काम कर सकता है और एक अवरोध भी बन सकता है। बिल्कुल निर्विचार हो जाना बहुत कठिन है। इसलिए मन की निर्विचार अवस्था में प्रवेश कर पाने के पूर्व, जब सब कुछ सहज एवं स्वाभाविक रूप से उपलब्ध है, उससे पूर्व, मन में इस विचार का होना बेहतर है कि तुम अनंत ऊर्जा के एक भाग हो। सक्रिय होने पर तुम ऊर्जा को गंवा नहीं रहे हो बल्कि उसे ग्रहण कर रहे हो। ऊर्जा देने पर वह कम नहीं हो रही है बल्कि तुम्हें और अधिक मात्रा में प्राप्त भी हो रही है।
प्रेम, सेक्स, सक्रियता-हर बात में, हमेशा याद रखना और इस विचार से भरे रहना कि जब कभी भी तुम कुछ दे रहे हो, तुम्हें अनंत स्रोत रूपी जड़ों के माध्यम से, उससे कहीं अधिक उपलब्ध हो जाता है, तुम्हें उससे अधिक दे दिया जाता है। वह परम ऊर्जा अथवा परमात्मा अथवा अस्तित्व स्वयं देता है और वह बेशर्त बांटता है।
यदि तुम भी एक दाता हो तो तुम्हारे हाथ हमेशा खाली रहेंगे परंतु अस्तित्व तुम्हें और अधिक दे सकता है। यदि तुम एक कंजूस हो तो परमात्मा से, उस दिव्य सत्ता से तुम्हारा संबंध टूट सकता है। तब तुम एक छोटी-सी तरंग की भांति हो जाते हो जो सदैव ही खोने के भय से आतंकित है। जो दे सकते हैं उन्हें और अधिक दिया जाता है।
एक सागर की भांति जियो, एक सागर ही हो जाओ। कभी भी खोने या गंवाने के बारे में मत सोचो। तुमने कुछ भी नहीं खोया है और न ही कुछ खोया जा सकता है।

और तुम एक अकेले व्यक्ति नहीं हो, तुम केवल एक व्यक्ति की भांति प्रतीत होते हो, वास्तव में पूरा अस्तित्व तुमसे जुड़ा हुआ है। तुम उस पूर्ण अस्तित्व के केवल एक चेहरे मात्र हो, तुम्हारे रूप में वह विराट अस्तित्व प्रकट हुआ है। इस बारे में फिक्र मत करो। अस्तित्व का कभी भी अंत नहीं होने जा रहा है। यह अस्तितव प्रारम्भहीन और अंतहीन है, यह आदि है... अनंत है।
उत्सव में रहो, आनंद मनाओ, सक्रिय बने रहो और हमेशा बांटते रहो। पूरी समग्रता से, बिना कुछ बचाए या बिना कोई पकड़ बनाए, केवल देने वाले बन जाओ... यही असली प्रार्थना है। देना ही अपने आप में प्रार्थना पूर्ण कृत्य है।
देना ही प्रेम है। और वे लोग जो दे सकते हैं उन्हें हमेशा और अधिक दिया जाता है।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
नौवां प्रवचन

समर्पण संपूर्ण ही हो सकता है

पहला प्रश्नः
ओशो! आपने कहा है कि हजारों वर्षों में पृथ्वी पर ऐसा सुअवसर नहीं आया, और आपने यह भी कहा है यह युग अन्य दूसरे युगों के समान ही है। एक ओर आपने कहा है कि एक पत्थर को भी समर्पण कर दो तो घटना घटित हो जाएगी। दूसरी ओर आपने यह भी कहा है कि इस पृथ्वी पर पैर जमाकर आगे बढ़ना बहुत खतरनाक है, जब तक कि तुम एक प्रामाणिक सदगुरु के मार्गदर्शन में नहीं चलते हो।
आपने कहा है कि समर्पण करो और शेष कार्य मैं करूंगा, और आपने यह भी कहा
है कि आप कुछ भी नहीं करते। यहीं और अभी मौजूद हम लोगों के लिए, तथा पश्चिम के उन लोगों के लिए जो इन शब्दों को कभी पढ़ेंगें, क्या आप सदगुरु और शिष्य के मध्य घटने वाले रहस्मयी संबंध के बारे में हमें और अधिक बताने की कृपा करेंगें?

मैं स्वयं के वक्तव्यों का ही विरोध करता हूं और इसे जानते बूझते हुए
ही करता हूं। सत्य इतना अनंत, इतना विराट और इतना असाधारण है कि वह किसी अपूर्ण, आंशिक और खण्डित वक्तव्य में समा ही नहीं सकता। इसलिए तुरंत ही विरोधी बातों का भी सम्मिलित होना आवश्यक है। अखण्ड हमेशा ही विराधभासी रहेगा, केवल उसका एक भाग स्थिर हो सकता हैक्योंकि अखण्ड कोशेष विरोधी भाग पर भी ध्यान देना है, इसलिए सदा ही विरोधाभास मौजूद रहता है। विपरीत सदैव विद्यमान रहता है।
दार्शनिक स्थिर और दृढ़ हो सकते हैं क्योंकि उनकी समझ आंशिक है। वे अपने विचारों के संदर्भ में साफ-स्पष्ट हो सकते हैं और वे तर्कपूर्ण होने की सामर्थ्य रख सकते हैं। मैं यह सामर्थ्य नहीं रख सकता, क्योंकि यदि मैं स्थिर या दृढ़ होने का प्रयास करता हूं तो तुरंत ही मैं अंश के साथ जुड़ जाता हूं और पूर्णअसत्य हो जाता है। विरोधाभास को भी शामिल करना होगा, उसे भी समाहित करना होगा।
उदाहरण के लिए, जब मैं कहता हूं कि समर्पण कर दो और शेष कार्य मैं करुंगा तो यह मेरे वक्तव्य का एक भाग है। मैं इसे क्यों कह रहा हूं? मैं इसे इसलिए कह रहा हूं जिससे तुम पूर्ण रूप से समर्पण कर सको। यदि तुम इसे अनुभव कर सकते हो और इस पर आस्था रख सकते हो तो बचा हुआ शेष भाग होगा ही, और तुम्हारा समर्पण पूर्ण बन सकता है।
यदि तुम भयभीत हो, अविश्वास से भरे हो, तब समर्पण के बाद भी तुम्हें कुछ प्रयास करना होगा, तब समर्पण पूर्ण नहीं हो सकता है। यदि समर्पण के बाद भी तुम्हें कुछ प्रयास करना पड़े, तो इसका अर्थ है कि कुछ तुमने अपने भीतर रोक लिया है, कुछ अभी भी पकड़ रखा है, ऐसे में समर्पण समग्र नहीं होगा। जब समर्पण पूर्ण ही नहीं है तो वह किसी भी कीमत पर समर्पण है ही नहीं। समर्पण तो सदैव पूर्णता से ही घटित होता है, तुम आंशिक रूप से समर्पण नहीं कर सकते। तुम यह नहीं कह सकते कि मैं आधा समर्पण करता हूं क्योंकि जो आधा भाग शेष बचेगा, वह समर्पण के विरुद्ध होगा। वह उसके विरोध में ही अस्तित्वगत रह सकता है।
इसलिए समर्पण केवल पूर्ण ही हो सकता है। यह ठीक एक वर्तुल के समान है,
यह ज्यामिती का एक गोल घेरा है। यह आधा नहीं हो सकता। तुम एक आधा वृत्त कभी नहीं बना सकते। यदि तुम उसे बनाते हो तो तुम उसे एक वृत्त नहीं कह सकते। एक वृत्त को तो पूरा होना चाहिए। यदि वह आधा है, तब वह कुछ और है, कम से कम वह एक वृत्त नहीं है। समर्पण केवल पूर्ण ही हो सकता है। समर्पण भी एक वृत्त की तरह है, वह एक धार्मिक वृत्त है। तुम एक छोर से दूसरे छोर तक समर्पण करते हो और कुछ भी शेषनहीं बचता है।
इसी संदर्भ में, सहायता करने हेतु, मैं कहता हूं कि समर्पण करो और शेष दायित्व मेरे द्वारा निभा दिया जाएगा। मेरा इस बात पर बल देना कि "मैं करूंगा"... तब तुम पूरा समर्पण कर पाने में समर्थ हो पाते हो। मेरे इस

वक्तव्य का कार्य तुम्हारे समर्पण को पूर्ण बनाना है। वस्तुतः मैं जानता हूं कि यदि तुमने एक बार पूर्ण समर्पण कर दिया, तोशेष कुछ भी करने की ज़रूरत ही नहीं हैं। यहां तक कि मेरे द्वारा भी कुछ किया ही नहीं जा सकता है। समर्पण स्वयं ही अपने आप में पूर्ण है, अन्य किसी भी चीज की ज़रूरत ही नहीं होती। समर्पण की वास्तविक घटना का घटित हो जाना ही पर्याप्त है।
अब किसी भी सहायता की कोईज़रूरत नहीं है। अब इस समर्पण के द्वारा ही प्रत्येक समस्या हल हो जाएगी। समर्पण करने का अर्थ है कि अब तुम नहीं हो, समर्पण करने का अर्थ है कि अहंकार छोड़ दिया गया है। समर्पण करने का अर्थ है कि अब केन्द्र विसर्जित हो गया है। अब तुम बिना किसी केंद्र के विद्यमान हो। यदि कोई केंद्र ही नहीं हैं, तो किसकी सुरक्षा की जाए? , समर्पण से दीवारें स्वयं ही गिर जाती हैं। यदि वहां कोई नहीं है तो तुम्हारी सुरक्षा का पूरा ढाँचा धीमे धीमे विलुप्त हो जाता है, वह व्यर्थ हो जाता है। तुम एक खुले हुए आकाश की भांति बन जाते हो।
अब यह खुला हुआ आकाश प्रत्येक कार्य करेगा, यह खुलापन ही सब कुछ करेगा। परमात्मा तुम्हेंमाध्यम बनाकर तुमसे बिना अवरोध के गुजरेगा। परम सत्ता तुम्हारे भीतर और बाहर गतिशील हो सकती है। अब कोई भी अवरोधक नहीं है। समर्पण करने के बाद... तुम दिव्य शक्तियों के लिए स्वच्छंद बन जाते हो और तुम उन्हें सहजता से उपलब्ध हो जाते हो। उसके बाद प्रत्येक कार्य सहज स्वाभाविक रूप से होता है।
मुख्य समस्या है:समर्पण करना। समर्पण करने के बाद कोई भी समस्या नहीं होती है। इसलिए मुझे तुम्हारी सहायता करने की ज़रूरत ही नहीं है। कोई भी सहायता आवश्यक ही नहीं है। इसी कारण मैं स्वयं का ही विरोध किए चले जाता हूं और कहता हूं कि मैं कोई भी कार्य नहीं करता। उसकी कोई ज़रूरत ही नहीं पड़ती है। अब तुम स्वयं उस अखण्ड सत्य को पूर्णता से देख सकते हो। यदि मैं कहता हूं कि मैं कुछ नहीं करूंगा, मैं कुछ नहीं कर सकता हूं,
तो मेरे ऐसा कहने से तुम्हारा समर्पण करना असंभव होगा। तुम भयभीत हो जाओगे, अकेले अज्ञात में गतिशील होना, जहां कोई भी सहायता उपलब्ध नहीं है और न ही कोई मार्गदर्शन है, और यह व्यक्ति कहता है कि वह कुछ भी नहीं कर सकता है, तो तुम पूर्ण रूप से कैसे समर्पण कर सकते थे? वह तुम्हारे लिए कठिन होता। यदि किसी विरोधाभास के बिना, मैं केवल यह कहता हूं कि मैं सब कुछ करूंगा तो वह सत्य न होगा, क्योंकि, वास्तव में, मैं कोई भी कार्य करने नहीं जा रहा हूं। इसलिए अब क्या किया जाये? इसे पूर्ण रूप से कैसे कहा जाए? वहां केवल एक ही उपाय है कि दृढ़ता से विरोधाभास का प्रयोग करना।
एक सदगुरु और एक शिष्य के बीच का संबंध बहुत अधिक जटिल है। वह एक ढंग
से बहुत सरल भी है अन्यथा वह बहुत जटिल है। वह सरल है क्योंकि संबंध केवल शिष्य के द्वारा निर्मित होता है। सदगुरु की ओर से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि सदगुरु का अस्तित्व वह नहीं है, जो तुम जान रहे हो। सदगुरु का रूप उतना ही नहीं है, जितना तुम्हें दिख रहा है। वह वहां सीमित नहीं है। वह केवल एक व्यक्ति नहीं है। तुम्हें प्रतीत होता है कि वह हमारे जैसा ही व्यक्ति है। यह आकृति और यह प्रतीती तब तक बनी रहेगा, जब तक तुम पूर्ण समर्पण नहीं करते। एक बार तुम समर्पण कर देते हो, एक बार तुम अस्तित्वहीन हो जाते हो, तो अचानक तुम देखोगे कि सदगुरु कभी उस सीमितता में था ही नहीं। सदगुरु एक अनुपस्थिति है। लेकिन वह अनुपस्थिति केवल तभी देखी जा सकती
है जब तुम भी एक अनुपस्थिति बन गए हो। केवल दो अनुपस्थितियों का ही मिलन होता है। यदि तुम उपस्थित हो तो तुम सदगुरु पर भी अपनी कल्पनाएं आरोपित किए चले जाते हो कि वह ऐसा है... वैसा है। यह तुम्हारी कल्पना है, क्योंकि तुम्हारा अहंकार, दूसरी ओर की अहंकार शून्यता को नहीं देख सकता। केवल समान ही समान कोप्रत्युत्तर दे सकता है। तुम्हारा अहंकार, प्रत्येक स्थान पर केवल अहंकार को ही देख सकता है। अपने निजी व्यक्तित्व की सुरक्षा करने का यह एक सशक्तढंग है। तुम जहां कहीं भी देखते हो, तुम तुरंत अपने अहंकार को आरोपित करते हो। तब सदगुरु भी किसी व्यक्ति और अहंकार के समान ही दिखाई देगा और तुम स्वयं को सिद्ध करने के लिए हर संभव मार्ग और साधन खोज लोगे कि वह भी एक अहंकार ही है।

तुम्हारे प्रमाण और साधन संभवतः तर्क पूर्ण हो सकते हैं, लेकिन मैं कहता हूं कि वे प्रमाण व्यर्थ हैं, क्योंकि तुम निर्हंकारिता के तथ्य का नहीं देख सकते हो, जो कि वास्तव में तुम भी हो। जब समर्पण घटित हो गया, तो अचानक तुम देखोगे कि सदगुरु वहां नहीं हैं। यदि तुम ठीक इसी क्षण समर्पण कर दो, तो तुम देखोगे कि यह कुर्सी खाली है। वह व्यक्ति जो तुमसे बातचीत कर रहा था, अब वहां नहीं है। वह व्यक्ति केवल एक शून्यता है। लेकिन केवल तुम्हारी अनुपस्थिति में ही तुम उस अनुपस्थिति को देखने में समर्थ हो सकोगे।
सदगुरु की ओर से किसी संबंध का अस्तित्व नहीं होता है। यदि ऐसा कोई संबंध है तो वह किसी भी प्रकार से एक सदगुरु नहीं है क्योंकि वह अभी भी वहां हैं। वह तुम्हें मार्ग दर्शन नहीं दे सकता, वह केवल तुम्हें भटका सकता है। उसकी शिक्षाएं सुंदर हो सकती हैं, लेकिन वह तुम्हें पथभ्रष्ट कर देगा, क्योंकि वह जो कुछ भी करता है, मैं कहता हूं कि "वह जो कुछ करेगा", बेशर्त... वह गलत ही होगा। यह प्रश्न इस बात का नहीं है कि कुछ ठीक होगा और कुछ गलत हो सकता है बल्कि अहंकार से जो कुछ भी आता है वह गलत ही है। वह सदाचार हो सकता है, वह अहिंसा हो सकती है, वह प्रेम हो सकता है, लेकिन अहंकार से जो कुछ भी आता है, वह गलत है। अहंकार प्रत्येक चीज को दूषित कर देता है। अहंकार सबसे महानतम विकृति है।
यदि सदगुरु तुमसेप्रेम करता है और उस प्रेम में अहंकार है, तो उसका प्रेम तुम पर अधिकार जमाने वाला होगा। वह तुम्हें नष्ट कर देगा, वह तुम्हें समाप्त कर देगा। संबंध विषैले हो जायेंगें। वहां प्रेम का एक अत्यंत सामान्य संबंध होगा। वह तुम्हें दूसरे सदगुरु से कुछ सीखने की अनुमति नहीं देगा। वह झगड़ा करेगा और वह बाधाएं उत्पन्न करेगा जिससे तुम उससे दूर नहीं जा पाओ, क्योंकि वह तुम पर निर्भर है, उसका अहंकार तुम पर आश्रित है।
एक अहंकारी सदगुरु, अनुसरणकर्त्ताओं के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकता। अहंकार के पोषण के लिए अनुयायियों की ज़रूररत होती है। जितनी बड़ी भीड़ होगी, उसे उतना ही अधिक अच्छा महसूस होगा। यदि वह भीड़ उसे छोड़कर चली जाए तो वह पूरी तरह से मर जायेगा। तब उसके अहंकार पर चोट लगेगी। तथाकथित सदगुरु, अन्य दूसरे तथाकथित सदगुरुओं के साथ प्रतियोगिता करते हुए झगड़ते चले जाते हैं। एक बाज़ार बन जाता है। बाज़ार की पूरी प्रतियोगिता उनके अंदर प्रवेश कर जाती है।
यदि एक सदगुरु के पास अहंकार है, तो उसका अर्थ है कि वह वास्तव में एक सदगुरु नहीं है और केवल ढोंग कर रहा है। तब उसकी करुणा केवल दिखावे के लिए होगी, वह केवल नाम की करुणा होगी। वह निर्दयी होगा, वह तुम्हें यातना देगा, निश्चित रूप से इस ढंग से यातना देगा कि तुम उस यातना को एक अनुशासन की भांति ही अनुभव करोगे। वह तुम्हें ऐसे कार्य करने के लिए विवश करेगा जो अनावश्यक होंगे और पीड़ादायक होंगे, लेकिन वह उस पीड़ा में आनंद लेगा। वह उसे प्रमाण देकर तर्कसंगत सिद्ध करेगा। वह कहेगा कि उपवास करो क्योंकि बिना उपवास किए तुम उच्च अवस्था तक नहीं पहुंच सकते। और जब तुम उपवास करते हुए यातना सहते हो तो वह प्रसन्न होगा। उसकी करुणा केवल एक छिपी हुई निर्दयता है। करुणा के नाम पर वह दूसरों को दुख देकर स्वयं प्रसन्न होने वाला व्यक्ति है। यातनाएं देकर वह प्रसन्नता का अनुभव करेगा। तुम्हारी ओर देखकर, यह देखते हुए कि तुम उदास, निराश होकर यातनाएं सह रहे हो, वह कहेगा-"तुम वैराग्य को उपलब्ध हो गए, तुम निसक्त हो गए हो।"
तुम जितने अधिक उदास होते हो, वह उतना ही अधिक प्रसन्न होता है। यदि
वह तुम्हारे चेहरे पर एक मुस्कान देख ले, तो वह तुरंत उसकी निंदा करेगा। यदि वह अनुभव करता है कि तुम आनंदित हो, तो वह तुरंत कहेगा कि कुछ गलत हो गया है, वह उसका कारण खोजेगा क्योंकि इस गलत संसार में तुम कैसे आनंदित हो सकते हो? इस दुखी संसार में तुम कैसे प्रसन्न हो सकते हो? जीवन एक दुख है। तुम परम आनंदित कैसे हो सकते हो? तुम अनिवार्य रूप से कहीं न कहीं भूल-चूक कर रहे हो, कहीं किसी तरह से शायद अपनी इन्द्रियों का ही सुख भोग रहे हो। यदि तुम युवा, जीवंत और ताज़गी से भरे दिखाई देते हो, तब वह कहेगा कि तुम अपने शरीर के प्रति बहुत अधिक आसक्त हो गए हो।

वह तुम्हारे शरीर को नष्ट करना प्रारंभ कर देगा। वह निश्चय ही एक दुखवादी व्यक्ति है और बहुत ही सूक्ष्म रूप से अपना काम करेगा। वह हिटलर और मुसोलिनी की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म हैं, क्योंकि वे तो तुरंत हत्या कर देते थे और उनके द्वारा किया गया हत्या का कृत्य शायद ज्यादा सरल था। यह व्यक्ति भी तुम्हारी हत्या करेगा, लेकिन बहुत धीमे-धीमे, किश्तों में। तुम इस देश में कहीं भी चले जाओ, कहीं भी दूर-दूर तक घूमो और तुम अनेक ऐसे लोग पाओगे, जो दूसरों की इसी तरह धीमी हत्या कर रहे हैं।
और स्मरण रहे कि हत्या वही कर सकता है जो स्वयं भी भीतर से आत्मघाती
है अन्यथा कोई भी ऐसे हत्या नहीं करेगा। यदि वह अच्छे भोजन में रस लेता है और उससे प्रसन्नता पाता है तो वह कभी भी दूसरे को उपवास करने के लिए बाध्य नहीं करेगा। यदि वह एक सुंदर भवन में रहता है तो वह तुम्हें एक टूटी झोपड़ी में रहने के लिए नहीं कह सकता। इसलिए यह पूर्ण रूप से तर्कपूर्ण है:यदि वह तुम्हें बर्बाद करना चाहता है तो पहले उसे स्वयं को बर्बाद करना होगा। वह जितनी अधिक यातानाएं स्वयं को देता है, उतना ही उसका नियंत्रण तुम्हें देने वाली यातनाओं पर प्रगाढ़ होता जाता है। वह उपवास करेगा और अपने शरीर को पीड़ा देकर निर्बल बनायेगा। और वह जिस मात्रा में अपने शरीर को बर्बाद करता है, उस ही मात्रा में वह तुम्हारे गले के चारों ओर फंदा तैयार करता है। अब वह तुम्हें पूरी तरह से अपने अधीन रख सकता है, एक अच्छी सिखावट और अनुशासन के नकाब के भीतर वह तुम्हें नष्ट कर सकता है।
एक गलत और अहंकारी सदगुरु के साथ जो कुछ भी होता है, वह गलत ही होता है, उसका अनुशासन कष्टदायी बन जाता है, उसका अपना जीवन भी आत्मपीड़क बन जाता है। उसका पूरा अस्तित्व विध्वंसात्मक बन जाता है। अहंकार विध्वंसात्मक ही होता है। तब संबंध बने रह सकते हैं... एक गलत सदगुरु के साथ संबंध बने रह सकते हैं, क्योंकि सदगरु का अहंकार संबंध बनाये रखना चाहता है। बिना संबंध जोड़े हुए, अहंकार का अस्तित्व बचा ही नहीं रह सकता है।
लेकिन यदि गुरु एक प्रामाणिक सदगुरु है, तो संबंध बनाना केवल शिष्य द्वारा ही होता है। तुम उसे प्रेम करते हो। तुम उसकी आज्ञा का पालन करते हो। तुम्हारी इस आज्ञाकारिता के साथ उसकी कोई भी दिलचस्पी नहीं है। तुम्हारे प्रेम में भी उसकी कोई अभिरुचि नहीं होती है। परंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह देखभाल नहीं करता है। वह अनंत रूप से देख-रेख करता है, लेकिन वह किसी से भी संबंधित नहीं हो सकता है। उसकी देखभाल स्वाभाविक है, ठीक जैसे जल नीचे की ओर बहता है, उसका यह बहना ही तुम्हें भिगो देता है। इसी तरह यदि तुम वहां सदगुरु के निकट नहीं भी होते हो उसकी देख-रेख प्रवाहित होती रहती है।
मैं तुम्हारे साथ यहां हूं पर जब तुम यहां नहीं होते हो तब भी मैं वैसा ही होता हूं और मेरा अस्तित्व समान रूप से सबकी ओर प्रवाहित होता रहता है। यदि यहां कोई भी नहीं होता है तो भी मैं वैसा ही समान बना रहता हूं। जब तुम यहां हो, तब भी मैं समान ही हूं। यदि मैं बदलता हूं तो वहां अहंकार है, क्योंकि सम्बन्ध में अहंकार विद्यमान रहता है। जब तुम आते हो तो अहंकार ही अंदर आकर सक्रिय और जीवंत बनता है। जब तुम चले जाते हो, तो अहंकार आलसी बनकर सो जाता है। इस अहंकार के कारण ही समस्त परिवर्तन होता है।
तुम्हारे साथ और तुम्हारे बिना, मेरी शून्यता समान बनी रहती है। मेरा प्रेम निरंतर प्रवाहित होता है, मेरी देखभाल सदैव ही समान रूप से प्रवाहित होती है। कोई भी प्रेमी नहीं है, मैं प्रेम करने अथवा प्रेम न करने के संदर्भ में कोई चुनाव नहीं कर सकता। यदि मैं चुनाव कर सकता हूं तो मैं वहां हूं। संबंध तुम्हारी ओर से निर्मित होता है और यह तब तक रहेगा जब तक तुम समर्पण नहीं कर देते हो।
अतः समर्पण करना एक महानतम और गहनतम संबंध है। वह एक तरह से संबंध का अंत भी है। यदि तुम समर्पण करते हो, तब तुम एक संभव और गहनतम संबंध में हो। इस गहनतम बिंदु के पार, संबंध मिट जाता है। समर्पण करने पर तुम नहीं बचते हो और सदगुरु तो वहां कभी था ही नहीं। अब दोशून्य अंतराल जब मिलते हैं तो दो नहीं रह सकते। तुम दोशून्य अंतरालों के मध्य एक रेखा नहीं खींच सकते। तुम शून्यता के चारों ओर चारदीवारी नहीं बना सकते। दोशून्यताएं एक हो

जाती हैं और संबंध का अस्तित्व मिट जाता हैक्योंकि संबंध के लिए दो ज़रूरी होते हैं।
इसलिए समर्पण के इस अंतिम बिंदु पर इसे समझने का प्रयास करो, समर्पण
के अंतिम क्षण पर सबसे महानतम एवं संभव संबंध विद्यमान होता है। निश्चित ही सबसे गहनतम और सबसे अधिक प्रगाढ़ संबंध तुम्हारे द्वारा ही अस्तित्व में होता है। अगले ही क्षण, जब तुमने समर्पण कर दिया, तो सब कुछ विलुप्त हो जाता है। अब वहां न सदगुरु बचता है और न ही शिष्य बचता है... और अब सदगुरु और शिष्य दोनों ही एक मुक्त हंसी हंस सकते हैं, वे ठहाके लगा कर अट्टहास कर सकते हैं। बिल्कुल एक क्षण पहले तक जो निरर्थक स्थिति थी, उस की व्यर्थता के बारे में वे लोग हास्यास्पद अनुभव कर सकते हैं।
मदद करने का प्रयास, मदद लेने का प्रयास, समर्पण न करने हेतु अहंकार
का सतत संघर्ष, सभी शिक्षाएं और सभी स्पष्टीकरण-सब कुछ व्यर्थ हो जाता है। तुम्हारे अनेकानेक जन्म ठीक सपनों के समान बन जाते हैं। अब तुम मुक्त रूप से हंस सकते हो, क्योंकि तुम किसी भी क्षण जाग सकते थे। तुम जीवन में किसी भी क्षण अपने सपनों की दुनिया से बाहर आ सकते थे और बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकते थे।
एक बार तुम इस बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाते हो... समर्पण करना एक पहलू
है और बुद्धत्व उसी सिक्के का दूसरा पहलू है। द्वार समान है। जब तुम प्रवेश करते हो तो द्वार पर लिखा होता है:समर्पण... जब तुम प्रवेश कर लेते हो और पीछे मुड़ कर देखते हो, तो द्वार पर लिखा हुआ पाते हो-बुद्धत्व। द्वार वही है:एक दिशा से प्रवेश है और दूसरी दिशा से निकास है। इसी कारण समर्पण पर इतना जोर है, समर्पण का इतना अधिक आग्रह है।
संबंध बहुत जटिल है, क्योंकि उसमें केवल एक का ही अस्तित्व रहता है। दूसरा संबंध जोड़ने वाला वहां नही होता है। इसलिए एक सदगुरु के साथ सभी खेल वास्तव में तुम्हारे ही खेल हैं। तुम ही खेल खेल रहे हो। यह बहुत अधिक धैर्य का खेल है। दूसरा तो केवल सामान्य रूप से तुम्हें खेलते हुए देख रहा है। तुम युक्तियां बदलते हो, तुम कभी इस मार्ग से, कभी उस मार्ग से प्रयास करते हो, तुम अनेक तरह से कोशिश करते हो, लेकिन अनावश्यक रूप से ही... क्योंकि एकमात्रप्रयास जो काम करेगा, जो सहायक होगा, वह है:समर्पण। अन्य सभी प्रयास तो केवल तुम्हें तैयार करने के लिए हैं जिससे तुम अनुभव के उस शिखर को छू सको जहां तुम समस्त प्रयासों की व्यर्थता को देख सको, समझ सको और वे सारे प्रयास स्वतः ही गिर जाएं। अनेक विधियां प्रयुक्त की गई हैं। वे विधियां वास्तव में कोई सहायता नहीं करेंगी। वे सब केवल तुम्हें यह अनुभव करने में सहायता करेंगी कि अंततः तुम्हें समर्पण ही करना है। वे सभी प्रयासों की व्यर्थता को सिद्ध करेंगी। लेकिन तुम खेल खेलते जा रहे हो। तुम अपनी युक्तियां बदलते चले जा रहे हो। तुम्हारा अहंकार प्रत्येक तरह की व्यूह-रचना को निर्मित कर रहा है, क्योंकि अहंकार के लिए यह उसके जीवन और मरण की समस्या है। अहंकार तुम्हें धोखा देगा, वह निरंतर तुम्हें छलने का प्रयास करेगा। अहंकार एक कुशल तर्कवादी और बुद्धिवादी है, जब वह तुम्हेंधोखा देता है तो वह तुम्हें उसके हज़ारों कारण भी बतला देता है। तुम उसके साथ तर्क-वितर्क नही कर सकते, और यदि तुम तर्क-वितर्क करने का प्रयास करते हो, तो तुम ही पराजित हो जाओगे।
इसलिए आस्था और श्रद्धा की श्रेष्ठता है। केवल एक आस्थावान व्यक्ति
ही समर्पण कर सकता है और केवल एक श्रद्धावान व्यक्ति ही अस्तित्व के परम शिखर को छू सकता है और परमानंद की पराकाष्ठा पर पहुंच सकता है।
बीसवीं सदी में पश्चिम के महानतम मनोवैज्ञानिकों में से एक थे- अब्राहम मैसलों। उन्होंने अपने पूरे जीवन में शिखर अनुभव की घटनाओं के इर्द-गिर्द ही कार्य किया। उन्होंने अपना पूरा जीवन उन विशिष्ट अनुभवों और घटनाओं के प्रति समर्पित कर दिया जिन्हें वे सर्वोच्च अथवा अंतिम शिखर कहते थे, जैसेमहात्मा बुद्ध का बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाना अथवा रामकृष्ण की प्रकाशमय अचेतनता अथवा मीरा, बोहमे एवं इकहार्ट का हर्षोन्माद आदि... अर्थात ऐसा परम अनुभव, ऐसी चरम अवस्था जो एक मनुष्य की चेतना को घटित हो सके।

इन तथ्यों की जांच पड़ताल में "मैसलो" ने पाया कि दो तरह के लोग होते हैं:एक वे लोग जो शिखर तक पहुंच पाते हैं और दूसरे वे जो शिखर तक नहीं पंहुच पाते हैं। शिखर पर पंहुचने वाले लोग समर्पण के लिए तैयार, खुले हृदय वाले और ग्राह्यशील होते हैं। शिखर पर न पहुंचने वाले लोग इस बात के कायल होते हैं कि इस तरह का कोई भी शिखर अनुभव संभव ही नहीं है। इन शिखर तक न पहुंचने वाले लोगों में मैस्लो ने वैज्ञानिकों, चिंतकों, तर्कशास्त्रियों, भौतिकवादियों, व्यापारियों, राजनीतिज्ञों और व्यवहारिक कार्य करने वाले एवं तथाकथित यथार्थवादी लोगों को सम्मिलित किया, जिनके लिए परम लक्ष्य अर्थहीन होता है और वे साधनों की ओर अधिक उन्मुख होते हैं। ये लोग अपने ही चारों ओर दीवारें सृजित कर लेते हैं और उन दीवारों के कारण ही वे परमानंद के अनुभव से चूक जाते हैं। जब वे कोई शिखर अनुभव या परम हर्षोन्माद का अनुभव नहीं ले पाते हैं तो, अपने मौलिक दृष्टि कोण को और अधिक पुष्ट कर लेते हैं, तब वे और अधिक दीवारें खड़ी कर लेते हैं और एक दुष्चक्र निर्मित हो जाता है।
शिखर तक पहुंचने वाले लोगों में कवि, नर्त्तक, संगीतकार, कला के दीवाने, अव्यावहारिक प्रवृत्ति के लोग और दुस्साहसी किस्म के व्यक्ति होते हैं। यह लोग ही शिखर तक पहुंचने वाले होते हैं। ये लोग चिंता नहीं करते, ये लोग अपने मन के साथ तर्क-वितर्क नहीं करते और ये लोग पूरी तरह से चीजों को घटने की अनुमति देते हैं। और इसीलिए वे सामान्य जीवन में भी, कभी- कभी विशिष्ट शिखरों तक पहुंच जाते हैं।
मैंने एक मनोविश्लेषक के बारे में सुना है, जिसका एक अन्य मनोविश्लेषक द्वारा निरिक्षण किया जा रहा था। पहला मनोविश्लेषक, जिसका मनोविश्लेषण किया जा रहा था, वह अपनी छुट्टियां मनाने कहीं बाहर गया। जिस स्थल पर वह अवकाश में विश्राम कर रहा था, वहां से उसने दूसरे मनोविश्लेषक को, जो उसका चिकित्सक था, उसे तार भेजकर यह सूचना दी- "मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं-पर क्यों" इस तरह के व्यक्तिप्रसन्नता को भी स्वीकार नहीं कर सकते। वे पूछेंगे कि आखिर क्यों? मैं क्यों प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं? अवश्य ही कुछ गलत हो रहा है।" ऐसे लोगों की एक धारणा है कि प्रसन्न होना संभव ही नहीं है।
महान मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड भी कहते हैं कि मनुष्य जाति के लिए प्रसन्नता असंभव है। वह कहते हैं कि मनुष्य के मन का वास्तविक ढांचा ही इस प्रकार से निर्मित है कि प्रसन्नता संभव ही नहीं है। ज्यादा से ज्यादा तुम उतना ही अप्रसन्न होते हो, जितना तुम सहन कर सको।
यदि यही दृष्टिकोण है, फ्रॉयड स्वयं के प्रति आश्वस्त है, उसने सभी प्रकार के तर्कोंर् से स्वयं को सुदृढ़ बना लिया है, यदि यही विचार है, यही धारणा है और यही सोच है तोप्रसन्नता असंभव है, तब तुम बंद हो जाते हो। तब तुम्हारे लिए प्रसन्नता संभव नहीं होगी। और जब वह संभव ही नहीं है, तो तुम्हारी मौलिक धारणा दृढ़ हो जाती है कि तुम ही ठीक थे। ऐसे में प्रसन्नता के लिए बहुत कम संभावनाएं हैं। एक क्षण ऐसा आएगा, जब तुम कहोगे कि केवल अप्रसन्नता ही संभव है।
एक सदशिष्य को उन्मुक्त, खुला हुआ और शिखर तक पंहुचने वाला ही होना चाहिए। महानतम खुलापन और उन्मुक्तता केवल समर्पण से आती है जो उसे शिखर तक ले जाती है। लेकिन एक शिखर पर पहुंचने वाले के पास क्या होना चाहिए? उसे अपने मन का ढांचा किस प्रकार का बनाना चाहिए जिससे वह खुला और मुक्त हो सके? कम से कम तर्क-वितर्क और ज्यादा से ज्यादा श्रद्धा, कम से कम व्यवहारिकता और अधिक से अधिक दुस्साहस, कम गद्यात्मक और अधिक पद्यात्मक... ऐसा ढांचा होना चाहिए। तर्क से बचो, अन्यथा प्रसन्नता तुम्हारे लिए नहीं है।
तर्क-वितर्क शत्रु है। तर्क सिद्ध कर देगा कि जीवन एक दुख है। तर्क यह सिद्ध कर देगा कि जीवन का कोई भी अर्थ नहीं है। तर्क सिद्ध कर देगा कि कोई परमात्मा नहीं है। तर्क सिद्ध कर देगा कि किसी भी परमानंद की कोई संभावना ही नहींहै। तर्क सिद्ध कर देगा कि जीवन केवल एक दुर्घटना है अथवा एक संयोग है और इस दुघर्टना में किसी भी तरह की कोई संभावना नहीं है। जन्म और

मृत्यु के मध्य यदि तुम किसी भी तरह से जीवित बने रहने की ही व्यवस्था कर लो तो पर्याप्त है।
तर्क-वितर्क आत्मघाती है। यदि तुम उसके पक्ष में जाते हो तो निश्चित रूप से वह तुम्हें जीवन से पलायन करने वाले वाले द्वार की कुंजी दे देगा। अंतिम रूप से वह कहेगा कि आत्मघात करना ही सबसे समझदारी का कदम है क्योंकि यह जीवन अर्थहीन है, तुम ऐसे ही यहां व्यर्थ जी रहे हो, एक समान दिनचर्या को दोहराते हुए तुम यहां आखिर क्या कर रहे हो?
सुबह बिस्तर से उठना और काम में लग जाना... प्रतिदिन तुम ऐसा ही कर रहे
हो और इससे कुछ भी तो नहीं हुआ, इसलिए आज इस बार उठकर भी होगा क्या? जीवन पर्यन्त तुम रोज सुबह नाश्ता करते रहते हो, इससे कुछ नहीं हुआ। जीवन पर्यन्त तुमने अखबार पढ़ा, दफतर गए, शाम को घर वापिस आए, रोज वही एक से काम, अनावश्यक काम... घर वापस लौटना, तब भोजन करना और फिर सोने के लिए बिस्तर पर चले जाना, पुनः सुबह उठकर उसी मूर्खतापूर्ण चक्र को दोहराना, जो कहीं भी नहीं ले जा रहा है और तुम उसी की लीक पर घूम रहे हो। यदि तुम वास्तव में तर्कपूर्ण हो तो तुम्हारा मन कहेगा कि आत्मघात कर लो, इस पूरी मूर्खता को बढ़ाने का क्या औचित्य है?
तर्क-वितर्क आत्मघात की ओर ले जाता है और आस्था श्रेष्ठतम जीवन की ओर
ले जाती है। और आस्था तर्क रहित होती है, वह पूछती नहीं, वह व्यर्थ विवाद में नहीं पढ़ती है, वह पूरे विश्वास के साथ अज्ञात में प्रवेश करती है और अनुभव करने का प्रयास करती है। एक आस्थावान व्यक्ति का निजी अनुभव ही उसका एक मात्र तर्क है। वह उसका स्वाद लेने का प्रयास करेगा और वह उस अनुभव में गहरे जाने का प्रयास करेगा। बिना अनुभव किए वह कोई भी राय नहीं देगा, कोई भी बात नहीं कहेगा। वह तुरंत निर्णय नहीं लेगा, वह उन्मुक्त रहेगा।
एक कदम उठाने के बाद, दूसरा कदम उठाना और धीरे-धीरे इसी तरह आस्था एक दिन समर्पण बन जाती है, क्योंकि आस्था के साथ तुम जितना अधिक प्रयास करते हो, तुम उतना ही अधिक जान पाते हो, और तुम्हें उतना ही अधिक अनुभव प्राप्त होता है। इससे तुम्हारा जीवन तीक्ष्ण और गहन होता जाता है। तुम्हारा प्रत्येक कदम तुम्हें कहता है कि "इसके भी पार जाओ, इसके पार और अधिक छिपा हुआ है।" तब पार जाना ही लक्ष्य बन जाता है। प्रत्येक चीज का अतिक्रमण करो और उसके पार हो जाओ। जीवन एक साहसिक यात्रा बन जाता है, अज्ञात की एक सतत खोज बन जाता है। तब और अधिक आस्था उत्पन्न होती है।
जब अज्ञात में उठाया गया प्रत्येक कदम तुम्हें परमानंद की एक झलक देता है, जब पागलपन में उठाया गया प्रत्येक कदम तुम्हें परमानंद की एक उच्चतम स्थिति देता है, जब अज्ञात में उठाया गया प्रत्येक कदम तुम्हें यह अनुभव देता है कि जीवन केवल मन से ही नहीं बना है, जीवन तो एक पूर्ण संगठनात्मक ढांचा है जिसमें तुम्हारे संपूर्ण अस्तित्व का होना आवश्यक है और जीवन तुम्हें लगातार बुला रहा है, तब धीरे-धीरे तुम्हारी आंतरिक सतह भी विश्वस्त हो जाती है। और यह कोई तर्कपूर्ण सिद्धांत नहीं है, वह तुम्हारा अनुभव है, वह अनुभव जन्य है अथवा तुम कह सकते हो कि वह बुद्धिवादी न होकर अस्तित्वगत है। वह समग्र है, पूर्ण है। तब एक क्षण आता है, जब तुम समर्पण कर सकते हो।
समर्पण एक बहुत बड़ा जुआ है। समर्पण का अर्थ है, मन को पूरी तरह से अलग
रख देना। समर्पण करने का अर्थ है:पागल हो जाना। मैं कहता हूं कि समर्पण करने का अर्थ है पागल हो जाना, क्योंकि वे सभी लोग जो अपने मन के तर्क-वितर्क में जीते हैं, वे ऐसा ही सोचेंगे कि तुम पागल हो गए हो। मेरे लिए वह पागलपन नहीं है। मेरे लिए ऐसा पागलपन... ऐसा पागलपन ही साहसिक जीवन का मार्ग है, यह सबसे गहरी छलांग है। मेरे लिए इस पागलपन में वह सब कुछ है जिससे कोई मनुष्य होने का दावा करता है। लेकिन तर्क-शास्त्रियों को तुम्हारी आस्था एक पागलपन के समान दिखाई देगी। इस समर्पण को, इस आस्था को भीतर की गहराई तक प्रविष्ट होना होगा।
विश्व के सभी महान धर्मों का जन्म ऐसे ही किसी पागल व्यक्ति के द्वारा हुआ है। जीसस एक पागल व्यक्ति है, वे बिल्कुल उन्मत्त हैं। बुद्ध भी वैसे ही पागल हैं। लेकिन इनके आस-पास जो लोग एकत्रित होते हैं वे सभी

पागल नहीं हैं। अनेक ऐसे लेग भी आ जाते हैं जो शिखर अनुभव पर पहुंचने वालों में से नहीं हैं, जो बुद्धिवादी हैं। ऐसे लोग जीसस और बुद्ध की ओर आकर्षित होते हैं क्योंकिउनका अस्तित्व चुम्बकीय है, वह अनंत ऊर्जा से भरपूरहैं, इसीलिए यह लोग उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। उनके मन और तर्क-बुद्धि में यह बात उठती है कि निश्चित ही इस व्यक्ति ने कुछ प्राप्त किया है, लेकिन वे लोग शिखर तक पहुंचने वाले नहींहोते हैं, वे लोग सांसारिक और व्यावहारिक किस्म के होते हैं। वे लोग बुद्धिगत एवंमानसिक रूप से आकर्षित होते हैं। बुद्ध का प्रामाणिक अस्तित्व ही उनके लिए एक तर्कपूर्ण प्रमाण बन जाता है। वे बुद्ध के वचनों को सुनते हैं और उनका तर्क संगत विश्लेषण भी करते हैं। वे अपने तत्व-विज्ञान के सिद्धांत भी सृजित करते हैं, और ऐसे ही एक धर्म का जन्म होता है। इस धर्म का आधार तो एक पागल व्यक्ति ही होता है परंतु उसके सैद्धांतिक ढांचे में तर्कशील लोग प्रवेश कर जाते हैं। यह तर्कशील लोग उस पागल के बिल्कुल विपरीत होते हैं। यह लोग पूर्ण रूप से बुद्ध के विरोध में हैं, वे संगठन सृजित करते है, कई तरह के "वाद" निर्मित करते हैं और कई दर्शनों का सृजन करते हैं।
जीसस एक पागल व्यक्ति हैं पर संत पॉल पागल नहीं हैं। वह एक कुशल तर्कशास्त्री हैं। जीसस के द्वारा नहीं बल्कि संत पॉल के द्वारा ही चर्च सृजित किया गया था। पूरी ईसाइयत जीसस के द्वारा नहीं, संत पॉल के द्वारा ही सृजित की गई। यह बहुत ही खतरनाक बात है कि सदा से ऐसी चीजें घटित होती रही हैं और इससे बचने का भी कोई उपाय नहीं है, क्योंकि विचारशीलों की प्रकृति ऐसी ही होती है।
यदि जीसस आज पुनः जन्म लें... तो यह चर्च तुरंत उन्हें ही तिरस्कृत कर देंगे। चर्च किसी पागल व्यक्ति कोप्रवेश करने की अनुमति नहीं देगा। इकहार्ट और बोहमे यदि आज फिर से आ जाएं तो यह चर्च इन लोगों के प्रवेश से भी इन्कार कर देगा क्योंकि वे लोग पागल हैं। उन लोगों को संगठन से बहिष्कृत कर दिया जायेगा। उन लोगों को कुछ करने अथवा कहने की अनुमति नहीं दी जायेगी क्योंकि वे विध्वंसक सिद्ध हो सकते हैं। वे लोग ऐसी बातें कहते हैं कि यदि लोग उन्हें सुनेंगे और उनमें विश्वास करेंगे तो वे धर्म के पूरे ढांचे और पूरे संगठन कोही नष्ट कर देंगे।
धर्म का जब जन्म होता है तो आधार पर एक पागल व्यक्ति ही होता है परंतु बाद में धीरे-धीरे तर्क शास्त्रियों द्वारा धर्म को अपने अधिकार में ले लिया जाता है, जो मूलतः उसके विरोधी होते हैं। वे लोग ही सभी संस्थाएं और संगठन बनाते हैं। शिखर पर पहुंचने वाले लोग धर्म को जन्म देते हैं, पर बाद में शिखर तक न पहुंचने वाले सांसारिक लोगों द्वारा उसे गोद ले लिया जाता है। इसलिए अपने जन्म के समय में प्रत्येक धर्म सुंदर होता हैलेकिन बाद में वह वैसा ही नहीं रह पाता, वह कुरूप होता जाता है। वास्तविकता तो यह है कि अंततः वह धर्म विरोधी बन जाता है।
जो कुछ भी मैं तुमसे कह रहा हूं, तुम लोग भाग्यशाली हो, क्योंकि तुम स्रोत पर हो। इसी कारण मैं तुम्हें भाग्यशाली कहता हूं। और ऐसा केवल हज़ारों वर्षों बाद घटित होता है कि कुछ लोग स्रोत के निकट होते हैं। ऐसा पुनः नहीं होगा। यहां तक कि मेरे विचारों के साथ भी ऐसा ही होगा, कभी न कभी यहां भी तर्कशास्त्री प्रवेश करेंगे, शिखर पर न पहुंच पाने वाले लोग आ जायेंगें। उनका आना सुनिश्चित है, वे लोग पहले ही से कतार में हैं। वे प्रत्येक चीज को एक व्यवस्था देंगे और वे मूल को नष्ट कर देंगे। तब एक सुनहरा अवसर हाथ से निकल जाएगा। तब यहां केवल कुछ मृत सिद्धांत होंगे। ठीक अभी, सब जीवंत है और तुम लोग स्रोत के निकट हो। इसी कारण मैं कहता हूं कि तुम भाग्यशाली हो।
तुम्हारे मन में भी दोनों ही संभावनाएं हैं:शिखर पर पहुंचने की और शिखर पर न पहुंचने की। यदि तुम अपने भीतर से, शिखर पर पहुंचने वाली संभावना को अनुमति देते हो, तब तुम समर्पण करोगे। यदि तुम अपने भीतर से, शिखर पर न पंहुचने वाली संभावना को अनुमति देते हो तो तुम मुझे सुनने के बाद तर्क-वितर्क करोगे, मेरी बातों कोप्रमाणों सहित सिद्ध करोगे और उस बारे में सिद्धांत बनाओगे। अतः या तो तुम मुझ से आश्वस्त हो जाओगे अथवा आश्वस्त नहीं हो पाओगे। यदि तुम आश्वस्त हो, तो तुम मेरे आस-पास ही रहना

चाहोगे और यदि तुम आश्वस्त नहीं हो तो तुम मुझे छोड़ कर चले जाओगे। लेकिन दोनों ही स्थितियों में तुम चूक जाओगे। चाहे तुम मेरे पास रहो या मुझे छोडकर चले़ जाओ, यह दोनों ही बातें असंगत है। यदि तुम बुद्धिगत रूप से विश्वस्त होने का प्रयास कर रहे हो तो तुम चूक जाओगे। यह बुद्धिगत कार्य मेरे मरने के बाद भी किया जा सकता है। लेकिन ठीक अभी, कुछ और भी किया जा सकता है, जो अभी संभव है और वह है:स्वयं कोशिखर पर पहुंचने की अनुमति दो, तुम अपनी आस्थावान आत्मा को साहसिक कार्य करने की आज्ञा दो। अपने अंदर तर्क-वितर्क मत करो। एक छलांग लगाओ। स्रोत का मिल पाना दुर्लभ होता है और बहुत थोड़े से लोग ही यह लाभ ले सकते हैं। ऐसा सदा से होता आया है और यह हमेशा इसी तरह होगा। जीसस के चारों ओर केवल थोड़े से ही लोग थे और शुरु में बुद्ध के चारों ओर भी केवल थोड़े से ही लोग थे। उसके बाद लोग शताब्दियों तक रोते और चिल्लाते रहे।
जब बुद्ध देह छोड़ रहे थे तो अनेक लोग रूदन कर रहे थे। केवल थोड़े से लोग
ही आनंदपूर्वक उनके चारों ओर शांत बैठे हुए थे, ऐसे केवल कुछ ही लोग थे। वे लोग शिखर पर पहुंचने वालों में से थे, जो आनंदपूर्वक एवं शांत बैठे हुए थे। वे लोग स्रोत के साथ एक हो गए थे। वे लोग बुद्ध के साथ एक हो गए थे। शिष्य और सदगुरु का बाहरी नाता तो बहुत समय पूर्व ही विलुप्त हो गया था, अब वहां कोई भी मरने नहीं जा रहा था। केवल थोड़े से लोग... एक महाकश्यप, एक सारिपुत्र, वे ही शांत और प्रसन्न बैठे हुए थे। यहां तक कि आनंद, बुद्ध का मुख्य शिष्य भी बिलख रहा था, रो रहा था।
बुद्ध ने अपने नेत्र खोले और कहा "आनंद" तू क्यों रो रहा है?
आनंद ने कहा:"मैं अनेकानेक वर्षों से आपके साथ था और मैं अवसर से चूक गया और अब आप यहां नहीं होंगे। अब मेरा क्या होगा? आप यहां थे और मैं ज्ञान को उपलब्ध न हो सका, अब आप यहां नहीं होंगे तो अब मैं क्या करूंगा? अब न जाने कितने जन्मों तक मुझे भटकना होगा"
यदि तुम्हें स्रोत उपलब्ध हो, तो भी तुम चूक सकते हो। तुम समर्पण न करने के द्वारा चूक सकते हो। समर्पण करो और शेष कार्य मैं करुंगा।

दूसराप्रश्नः
ओशो! आपप्रवचन प्रारम्भ करने से पूर्व मुस्कराते हैं। जब आप बोलना प्रारम्भ करते हैं आपकी मुस्कान विलुप्त हो जाती है, और आप तब तक पुनः नहीं मुस्कुराते जब तक कि आपका प्रवचन समाप्त नहीं हो जाता। क्या आप इसके बारे में बतला सकते हैं?

यह बात संगत है, क्योंकि बोलना एक यातना है और यह व्यर्थ की प्रक्रिया है। परंतु बोलना पड़ता है क्योंकि जो मौन मेरे भीतर विद्यमान है उस तक तुम्हें लाने के लिए, अन्य दूसरा उपाय है ही नहीं। तुम उस मौन को नहीं सुनते हो, तुम केवल शब्दों को सुन सकते हो। इसीलिए बोलना प्रारम्भ करने से पूर्व मैं मुस्कराता हूं, लेकिन जब मैं बोल रहा हूं तब मुस्कराना कठिन है। जोशब्दों में नहीं कहा जा सकता है, उसे कहने के लिए, यह बोलने की प्रक्रिया कष्टदायी और निरर्थक हो जाती है। जिसकी ओर कभी उंगली नहीं उठाई जा सकती है, उसी दूर के चांद की तरफ इन उंगलियों के द्वारा इशारा करना पड़ता है। पर अन्य दूसरा उपाय भी तो नहीं है, इसलिए मुझे यह बोलना जारी रखना पड़ता है। धीरे-धीरे तुम अनबोले शब्दों को सुनने में भी समर्थ हो जाओगे, तुम मौन
को भी सुनने में समर्थ हो जाओगे। धीरे-धीरे तुम उस मौन को भी सुनने में समर्थ हो जाओगे जब मैं कुछ भी नहीं बोल रहा हूं। तब उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं होगी, तब मैं निरन्तर मुस्कराता रहूंगा।
इसलिए जब मैं प्रवचन समाप्त करता हूं तो मैं पुनः मुस्कराता हूंक्योंकि अब वहां और अधिक यातना नहीं है।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
दसवां प्रवचन

न कोई लक्ष्य, न कोई प्रयास

पहला प्रश्नः
ओशो! झेन परम्परा है कि जब कोई भिक्षु अपनी शिक्षाएं देने बाहर जाता
था तो उसके पूर्व उसे अपने सदगुरु के साथ दस वर्षों तक मठ में ठहरना होता था। एक बार एक भिक्षु ने मठ में दस वर्षों का समय पूरा कर लिया था। वह एक दिनभारी बरसात के दौरानअपने सदगुरु "नानइन" से भेंट करने के लिए गया। उसका स्वागत करने के बाद नानइन ने उस से पूछा:"निसंदेह रूप से तुमने अपने जूते दालान में उतारे होंगे। तुमने अपने छाते के किस ओर जूते उतारे हैं" एक क्षण के लिए भिक्षु हिचकिचाया और उसने महसूस किया कि वह प्रतिपल ध्यानपूर्ण नहीं था।
आपने हमें बतलाया है कि जीवन एक स्फुरण है, स्पंदन है:अंदर और बाहर, यिन और यांग, तो क्या हमें प्रत्येक क्षण सचेतन बने रहने का प्रयास करना होगा? अथवा क्या हम भी जीवन के साथ स्पंदित हो सकते हैं और क्या उस समय हमें प्रयास छोड़ देना चाहिए?

पहली बात तो यह समझ लेनी है कि सचेतनता क्षण प्रति क्षण बनी रहना चाहिए, लेकिन वह केवल तभी बनी रह सकती है जब वह प्रयास रहित हो गई हो। प्रयास के द्वारा तुम बार-बार सम्पर्क खो दोगे, प्रयास के साथ तुम्हें विश्राम भी करना है। प्रयास निरंतर नहीं हो सकता, यह असंभव है। तुम निरंतर प्रयास कैसे कर सकते हो? तुम थक जाओगे और तब तुम्हें विश्राम करना होगा। प्रत्येक प्रयास को विश्राम की ज़रूरत होती है। इसलिए यदि सचेतनता प्रयास के द्वारा साधी गई है तो वह सतत नहीं बनी रह सकती, वह निरंतर प्रवाहित नहीं हो सकती। वहां ऐसे क्षण भी होंगे, जब तुम सचेतनता से चूक जाओगे। वे क्षण ही प्रयास से हटकर, विश्राम के क्षण होंगे।
जीवन स्पंदित होता है। जीवन हमेशा विरोधाभास की ओर गतिशील होता है। प्रयास करो, तब तुम्हें विश्राम करना होगा, तुम पुनः प्रयास करो, तब तुम्हें पुनः विश्राम करना होगा। लेकिन सचेतनता जीवन के भी पार है, वह अज्ञात में ले जाती है। तब वहां धड़कन नहीं होती, यह प्रयास रहित होता है, यह सहज और स्वयं प्रवर्तित होता है।
नान-इन के इस शिष्य को, इस भिक्षु को क्या हुआ? सदगुरु ने पूछा "तुमने अपने जूतों को कहां छोड़ा, छाते के दाइंर् ओर अथवा बाइंर् ओर" वह हिचकिचायाऔर उसने अनुभव किया कि जूतों को छोड़ने के क्षण में वह सचेत नहीं था, अन्यथा उसे पता होना चाहिए था कि उसने जूतों को कहां छोड़ा था, छाते की दाइंर् ओर अथवा बाईं ओर। उस भिक्षु की सचेतनता में अभी निरंतरता नहीं है। इस घटना से पता चलता है कि उसकी चेतना अभी भी प्रयासरहित नहीं है। उसे अभी भी स्मरण करना पड़ता है, सचेत बने रहकर प्रयास करना पड़ता है। उसका सजग बने रहना अभी भी तनाव के साथ होता है और वह अभी तक होशपूर्ण नहीं हुआ है। इसलिए कभी वह सफल होता है और कभी असफल हो जाता है।
नान-इन केवल यही पूछ रहा है कि क्या उस भिक्षु की सचेतनता अब सहज स्वाभाविक हो गई है। क्या तुम्हें उसे नियंत्रित करने की ज़रूरत नहीं होती है? क्या तुम्हें इस बारे में कुछ भी नहीं करना होता है? क्या यह सजगता सदैव ही बनी रहती है? तुम चाहे जो भी कार्य कर रहे हो, क्या सजगता हमेशा रहती है, अथवा सजग बने रहने के लिए तुम्हेंप्रयास करना होता है? यदि प्रयास करना पड़ता है तो वह एक तनावपूर्ण स्थिति है और एक तनावपूर्ण स्थिति में अस्वाभाविक होना सुनिश्चित है। एक अस्वाभाविक सचेतनता वास्तव में सचेतनता नहीं है, वह केवल परिधि पर मौजूद है, तुम्हारे भीतर केंद्र पर नहीं है। यदि वह तुम्हारे अंदर मौजूद है तोप्रयास करने की कोई जरूरत ही नहीं है।
जो मैं कह रहा हूं वह यह है कि प्रयास हमेशा परिधि पर होता है। प्रयास
के द्वारा तुम केन्द्र का स्पर्श नहीं कर सकते। तुम परिधि पर अवश्य ही कुछ

कर सकते हो, तुम अपना आचरण बदल सकते हो, तुम अपने तथाकथित चरित्र को बदल सकते हो और एक पापी की अपेक्षा एक सदाचारी बन सकते हो और यहां तक कि तुम एक संत भी बन सकते हो, लेकिन प्रयास के साथ यह केवल परिधि पर ही होगा।
प्रयास के द्वारा तुम कभी भी अंदर प्रवेश करके स्वयं के केन्द्र का स्पर्श नहीं कर सकते हो, क्योंकि कोई भी कार्य इस दिशा में तुम्हारा पथ प्रदर्शन नहीं कर सकता, तुम पहले ही से वहां मौजूद हो। इस बाबत कोई भी कार्य करने की ज़रूरत नहीं है। तुम्हें केवल पूरी तरह से मौन और स्वयं प्रवर्तित होना है और तब केन्द्र का उदय होता है। वह बादलों से बाहर आता है। वहां एक अवकाश है, एक अंतराल होता है। तुम अचानक अपनी सहज स्वाभाविक सचेतनता को अनुभव करते हो। तुम एक सचेतनता ही हो। तुम जो करते हो, वह सब बेकार है, तुम्हें तो कुछ करना ही नहीं होगा, तुम्हारा वास्तविक स्वभाव ही सचेतनता है।
हिन्दुओं ने इसे सत्-चित्-आनंद के नाम से पुकारा है। उन्होंने तीन शब्दों का प्रयोग किया है:सत, चित और आनंद। सत का अर्थ है अस्तित्वगत, वह जो कभी भी अनस्तित्व में नहीं जा सकता। सत का अर्थ है सत्य, जो कभी भी असत्य नहीं हो सकता। सत का अर्थ है शाश्वत-जो था, जो है और जो रहेगा। चित का अर्थ है:सजगता अथवा चेतना। तुम सदा चेतन रहे हो, तुम चेतन हो और तुम चेतन ही बने रहोगे, यह तुम्हारा स्वभाव है। यह सचेतनता तुम से छीनी नहीं जा सकती, यह तुम्हारी परिधि पर नहीं, तुम्हारे अस्तित्व के प्रामाणिक केन्द्र पर मौजूद है। वही तुम हो, लेकिन तुम स्वयं अपने ही साथ संपर्क में नहीं हो। आनंद का अर्थ है:प्रसन्नता अथवा पूर्णानंद अथवा अद्वैत की स्थिति अथवा परमानंद। ऐसा नहीं है कि तुम्हें उस परमानंद कोप्राप्त करना है:वह तुम हो ही। तुम सदा परमानंद ही रहे हो, तुम उससे अन्यथा कुछ और हो ही नहीं सकते। इसकी कोई संभावना ही नहीं है, तुम उसे बदल नहीं सकते।
तुम कहोगे कि यह बात पूर्ण रूप से व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण प्रतीत होती हैक्योंकि हम दुख और वेदना में हैं। तुम दुख में इसलिए हो, क्योंकि तुम अपनी परिधि के प्रति इतने मोहग्रस्त हो गए हो कि तुम अपने केन्द्र को पूरी तरह से भूल गए हो। तुम दूसरों के साथ इतने अधिक व्यस्त हो गए हो, दूसरे लोगों ने तुम्हें इतना अधिक अपने अधिकार में ले लिया है कि तुम स्वयं को भूलकर, अंधकार के साये में गिर गए हो।
तुम सत-चित-आनंद हो।
झेनसदगुरु नान-इन अपने शिष्य से पूछ रहा है:"क्या अब तुम सजग हुए हो
कि तुम कौन हो? क्या अब तुमने अपने स्वभाव में स्थित हो"
यदि शिष्य वास्तव में अपने स्वभाव में जड़ें जमाए होता तो क्या स्थिति हुई होती?
इस कथा को समझना बहुत कठिन है। यह प्रश्न जूतों को बाईं अथवा दाईं ओर छोड़ने का नहीं है। यह इस कथा का मुख्य प्रयोजन नहीं है। यह प्रयोजन जैसा प्रतीत होता है, लेकिन है नहीं। वास्तविक कथा का उद्देश्य है कि जब नान-इन ने इस शिष्य से प्रश्न पूछा तो वह उत्तर देने में हिचका, यही वास्तविक उद्देश्य है। अपने हिचकने के उस क्षण में ही वह सजग नहीं था कि वह हिचक रहा था। यदि वह सजग रहा होता तो वहां कोई भी हिचकिचाहट नहीं होती और उसने उसे स्वीकार कर लिया होता। उस क्षण उसने अपनी सचेतनता खो दी थी।
तुम नान-इन को धोखा नहीं दे सकते। यदि तुम नान-इन से भेंट करने जाते हो, तो तुम भलीभांति स्मरण रख सकते थे कि तुमने अपने जूते कहां छोड़े थे। यह कठिन नहीं है। यदि नान-इन तुमसे पूछता है कि तुमने अपने जूते कहां छोड़े, बाईं ओर अथवा दाईं ओर? तुम तुरंत उत्तर दे सकते थे किदाईं ओर, परंतु इस स्थिति में भी तुम असफल हो जाओगे। उद्देश्य यह नहीं है, यह केवल एक छलावा है अथवा वंचना है। नान-इन केवल यह देखने के लिए कि ठीक अभी क्या घटित हो रहा है, उसके मन को वहां से हटा रहा है।
ठीक उसी क्षण में जब नान-इन ने पूछा:"तुम्हारे जूते कहां हैं, दाईं ओर अथवा बाईं ओर" शिष्य चूक गया, उस प्रामाणिक क्षण में वह हिचकिचाया और वह उस हिचक के प्रति सजग नहीं था। उसने सोचना शुरू कर दिया। उस प्रामाणिक क्षण में वह सचेत न बना रहा सका। नान-इन ने उसके अंदर झांककर देख लिया। वह प्रश्न केवल उसके मन को हटाने के लिए था, वह केवल एक धोखा था।

शिष्य असफल हो गया, इसलिए उसे दूसरों को शिक्षा देने नहीं भेजा गया।
वह अभी भी तैयार नहीं है, वह अभी भी सजग नहीं है। एक व्यक्ति, जो स्वयं सजग और सचेत नहीं है, वह दूसरों को कैसे शिक्षा दे सकता है? वह जो कुछ भी सिखाने जा रहा है, वह नकली और असत्य होगा। इस स्थान पर अनेक शिक्षक हैं, जो शिक्षा दे सकते हैं और अभी भी वे स्वयं अपने प्रति ही सजग नहीं हैं। वे सज्जन, कुशल और कलात्मक हो सकते हैं, लेकिन प्रयोजन वह नहीं है। वे दूसरों की कोई भी सहायता नहीं कर सकते।
एक बार मैं रेलगाड़ी में यात्रा कर रहा था। एक छोटा-सा बच्चा बहुत अधिक उपद्रव कर रहा था। उस डिब्बे के सभी यात्री उससे परेशान हो रहे थे। वह इस कोने से उस कोने तक दौड़ रहा था। वह खिड़कियों के शीशों को ऊपर-नीचे कर रहा था और लुढ़ककर लोगों पर गिर रहा था। उसका पिता बहुत अधिक शर्मिंदगी का अनुभव कर रहा था। उसने बच्चे को रोकने के अनेक प्रयास किए, लेकिन वह उसकी एक न सुनता था। तब अंतिम रूप से पिता ने उससे कहा:"विली! यदि तुम मेरी बात नहीं सुनते हो और शरारतें करना बंद नहीं करते हो तो मैं तुम्हें थप्पड़ मारने जा रहा हूं।" उस बच्चे का तब भी निरंतर दौड़ना जारी रहा। वह डिब्बे के दूसरे छोर तक पहुंचा और उसने चिल्लाते हुए कहा:"ठीक है, आप मुझे थप्पड़ मारिए, लेकिन तब मैं टिकट कलेक्टर को यह बता दूंगा कि वास्तव में मेरी उम्र कितनी है।"
यह पिता एक शिक्षक नहीं हो सकता है। एक बच्चा भी उसकी बात नहीं सुन रहा है। एक शिक्षक, जो स्वयं अपने प्रति ही सजग नहीं है, एक शिक्षक नहीं हो सकता। जो अनुभव उसने स्वयं प्राप्त नहीं किया है, उसे वह दूसरों को नहीं सिखा सकता है।
सचेतनता एक संक्रामक रोग की तरह है। जब एक गुरु सजग और सचेत होता है,
तो उस सजगता से तुम भी संक्रमित हो जाते हो। कभी-कभी केवल गुरु के निकट बैठे हुए ही अचानक तुम सजग हो जाते हो, जैसे मानो बादल छंट गए हों और तुम खुला हुआ आकाश देख सकते हो। ऐसा भले ही एक क्षण के लिए होलेकिन वह तुम्हारे अस्तित्व की प्रामाणिक गुणवत्ता में एक गहन परिवर्तन कर जाता है।
अपनी ओर से भले ही तुम कोई भी प्रयास न करो, लेकिन एक सदगुरु के निकट बने रहने से ही तुम मौन हो जाते हो, क्योंकि सदगुरु मौन सचेतनता का एक सरोवर है। वह अंदर तक तुम्हें स्पर्श करता है। तब तुम्हारे बंद द्वार खुल जाते हैं या मानो एक अंधेरी रात में अचानक बिजली कौंध जाती है और तुम उस अखंड को देख पाते हो। वह शीघ्र ही विलुप्त हो जाता है, क्योंकि उसे तुम बलपूर्वक रोक नहीं सकते, वह तुम्हारे कारण नहीं हुआ है। यदि वह तुम्हारे कारण नहीं हुआ है तो तुम उसे खो दोगेलेकिन उसके बाद तुम पहले जैसे नहीं रहोगे, तुममें कुछ बदल गया है, तुमने कुछ ऐसा जान लिया है जिससे तुम अनजान थे। अब यह जानना तुम्हारा अपना अनुभव है, यह तुम्हारा हिस्सा बनकर रहेगा। तब एक कामना उत्पन्न होगी, एक आकांक्षा पैदा होगी... इस अनुभव को दुबारा प्राप्त करने की और इसे स्थाई बनाने की, क्योंकि एक क्षण के लिए ही सही, वह अत्यंत आनंददायी था, उसने तुम्हारे ऊपर इतनी अपार प्रसन्नता और आनंद की वर्षा कर दी।
लेकिन यदि सदगुरु अथवा शिक्षक स्वयं ही सचेत नहीं है, तो वह सचेतनता
के बारे में तो सिखा सकता है, लेकिन सचेतनता नहीं सिखा सकता है। सचेतनता के बारे में सीखना व्यर्थ है, वह मौखिक है, वह केवल एक सिद्धांत है। तुम उससे सिद्धांत तो सीख सकते हो, लेकिन तुम उससे सत्य नहीं सीख सकते। इसलिए यह शिष्य मठ के बाहर जाकर अपनी शिक्षा देने लगे, इससे पहले ही नान-इन को उसके भीतरी अनुभव को अनिवार्य रूप से देखना है, परखना है, और यह एक बहुत अद्भुत तथ्य है।
शिक्षा के जगत में एक छात्र की परीक्षा ली जाती है, लेकिन केवल उसकी स्मरण शक्ति की ही परीक्षा ली जाती है, कभी भी स्वयं उसका परीक्षण नहीं किया जाता। हमेशा ही केवल स्मृति का परीक्षण है, छात्रका कभी भी नहीं। नान-इन अपने शिष्य की स्मरण शक्ति की परीक्षा नहीं ले रहा है। वह यह नहीं पूछ रहा है:"तुमने अपने जूते कहां छोड़े, दाईं ओर अथवा बाईं ओर" वह शिष्य की कुशल स्मरण-शक्ति की जांच नहीं कर रहा है, क्योंकि उसने जूते कहां छोड़े, यह

बात अब अतीत हो गई है। परंतु अभी, गुरु अपने शिष्य के अस्तित्व के भीतर तक झांकने का प्रयास कर रहा है। वह उसकी स्मरण-शक्ति की परीक्षा नहीं ले रहा है, बल्कि इस प्रामाणिक क्षण में वह उसकी चेतना में झांकने का प्रयास कर रहा है। प्रश्न अतीत का नहीं है, प्रश्न है वर्तमान का और उस वर्तमान क्षण में उपस्थित बने रहने का।
केवल कल्पना करें कि शिष्य नान-इन के सामने बैठा हुआ है। नान-इन पूछता
है और शिष्य अतीत में खो जाता है। वह सोचने लगता है, याद करने का प्रयास करता है कि उसने अपने जूतों को कहां उतारा? वह प्रयास करता है कि याद आ सकता है कि नहीं। वह यह सोचने का प्रयास करता है कि क्या वह उस समय सजगता से चूक गया था? ठीक अभी वह एक भ्रम अथवा उलझन में पड़ गया है। उसकी पूरी चेतना बादलों से घिर गई है। वह उस क्षण में वहां नहीं है। वह नान-इन के साथ उस समय उपस्थित ही नहीं है वह तो अतीत में चला गया है, वह सोच-विचार में पड़ गया है, वह ध्यानपूर्ण नहीं है। उसका सोचना, उसका प्रयास करना, उसकी हिचकिचाहट... वह नान-इन की नज़रों से बच नहीं सकता। गुरु तुम्हें भीतर तक देखेगा, वह आर-पार देखेगा, वह तुम्हारे भीतर के सभी बादलों को देखेगा और जानेगा कि तुम अभी और यहां नहीं हो।
इस स्थिति में तुम्हें सिखाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। तुम्हें बाहर नहीं भेजा जा सकता, क्योंकि तुम सिखाओगे क्या? तुम वह नहीं सिखा सकते, जो तुमने अभी स्वयं नहीं जाना है। तुम दिखावा करसकते हो, लेकिन वह दिखावा खतरनाक होगा, क्योंकि यदि तुम यह बहाना बनाते हो कि तुम सजग हो और तुम सजग नहीं हो, तो यह एक संक्रामक रोग बन जाएगा। तब एक झूठा सदगुरु अपने आसपास केवल कपटी शिष्यों को ही तैयार करता है और तब तरंगों के समान वह छल, कपट और झूठ फैलता चला जाता है।
सबसे अधिक खतरनाक अपराध, जो एक मनुष्य कर सकता है, वह है सजग होने का दिखावा करना। यदि तुम एक व्यक्ति की हत्या भी कर देते हो तो वह इतना बड़ा अपराध नहीं है, क्योंकि तुम वास्तव में हत्या कर ही नहीं सकते। तुम केवल शरीर को नष्ट कर सकते हो, आत्मा अन्य दूसरे रूपों में गतिशील हो जाती है। तुम केवल एक खेल को बर्बाद कर सकते हो और तुरंत दूसरा खेल शुरू हो जाता है। एक हत्यारा इतना बड़ा अपराधी अथवा पापी नहीं है। यदि तुम यह दिखावा करते हो कि तुम सजग और सचेत हो और वास्तव में हो नहीं, यदि तुम यह दिखावा करते हो कि तुम एक सदगुरु हो और तुम हो नहीं, तो तुम एक गहरी क्षति पहुंचा रहे हो, जो एक ऐसी अनंत क्षति है कि उसकी तुलना में कोई दूसरा पाप अथवा अपराध है ही नहीं। क्योंकि इस दिखावे से दूसरे भी आडम्बर को ओढ़ लेंगे। वे आडम्बरी और बहानेबाज बन जाएंगे और यह निरंतर चलता रहेगा, ठीक ऐसे ही जैसे तुम एक शांत झील में पत्थर फेंकते हो तो लहरें उत्पन्न हो जाती हैं और वे दूर तक फैलती चली जाती हैं। एक लहर दूसरे को सृजित करती है तथा दूसरी लहर अगली लहर को धक्का देती है और इस प्रकार दूर दूर तक झील के किनारों की सीमाओं तक फैलती चली जाती हैं।
चेतना की झील की सीमाएं नहीं होतीं, एक बार एक लहर सृजित होती है तो वह हमेशा के लिए गतिशील बनी रहेगी और वह निरंतर चलती रहेगी। तुम यहां नहीं होओगे, लेकिन तुम्हारे आडम्बर, तुम्हारा छल और कपट जारी रहेगा और अनेक लोग उसके द्वारा धोखा खाते रहेंगे।
एक मिथ्या सदगुरु संसार में सबसे बड़ा अपराधी है। इसी कारण नान-इन किसी भी ऐसे व्यक्ति को मठ से बाहर जाकर शिक्षा देने की अनुमति नहीं देगा, जब तक कि वह स्वयं बोध को उपलब्ध न हो गया हो। तुम्हारे भीतर का प्रामाणिक प्रकाश, जो तुम्हारे ही अंदर प्रज्ज्वलित होता है, वह दूसरों को भी प्रकाशित होने में सहायता करता है। वह प्रामाणिक अग्नि, जो तुम्हारे अंदर प्रज्ज्वलित होती है, दूसरों को ऊष्मा देती है। वह प्रामाणिक जीवन, जो तुम्हें घटित हुआ है, दूसरों को उनकी निर्जीवता से बाहर आने में सहायता करता है।
लेकिन स्मरण रहे, सजगता, सचेतनता और चेतना केवल तभी सतत बनी रहती हैं,
जब वे प्रयास रहित बन जाती है। प्रारंभ में प्रयास का होना सुनिश्चित है, अन्यथा तुम प्रारंभ कैसे कर पाओगे? तुम प्रयास करोगे, तुम होशपूर्ण बने रहने का प्रयास करोगे, तुम सजग बने रहने का हर संभव प्रयत्न करोगे, परंतु

यही प्रयास एक तनाव उत्पन्न करेगा और तुम जितना अधिक प्रयास करोगे, तुम उतने ही अधिक तनावग्रस्त होते जाओगे। छोटी-छोटी झलकें मिलेंगी, लेकिन तनावग्रस्त होने के कारण तुम उस परमानंद से चूक जाओगे। तुम्हें प्रयास करने की इस स्थिति से भी गुज़रना होगा।
कभी न कभी तुम यह अनुभव करोगे कि जब भी तुम प्रयास करते हो, तब सजगता आती है, लेकिन वह बहुत कष्टदायी होती है, डरावने स्वप्न की तरह होती है। वह बहुत बोझिल सी होती है और एक चट्टान के समान तुम्हारे सिर पर सवार हो जाती है। वह प्रसन्नतापूर्ण, भारहीन और नृत्य करती हुई नहीं होती है। लेकिन यह सब प्रयास करते हुए, कभी-कभी अचानक, जब तुम प्रयासरत नहीं हो, तुम पाओगे कि तुम सजग हो। वह सजगता भारहीन, प्रसन्नतापूर्ण, नृत्यपूर्ण और आनंदपूर्ण होगी।
यह सजगता उन लोगों को घटित होगी जोप्रयास कर रहे हैं, जिस समय तुम प्रयास कर रहे हो तब कभी-कभी "अ-प्रयास" के क्षणों में तुम्हें यह झलक घटित होगी। तब तुम जानोगे कि प्रयास के द्वारा तुम उस सर्वोच्च सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकते और वह केवल "अ-प्रयास" के द्वारा ही यह घटित होता है।
मेरे आसपास जो ध्यान करने वाले लोग हैं उन्हें यह घटना घटी है। वे मुझे बताते हैं कि सुबह और शाम के समय ध्यान करते हुए कुछ ज्यादा अनुभव नहीं होता है, लेकिन अचानक रात में या दोपहर में, जब वे बैठे होते हैं, तो कुछ घटित होना शुरू हो जाता हैऔर उस क्षण में वे कोई भी प्रयास नहीं कर रहे थे। ऐसा होगा ही। ठीक जैसे कई बार तुम किसी का नाम भूल जाते हो और तुम यह अनुभव करते हो कि वह ठीक जिह्वा की नोंक पर ही रखा हुआ है, तुम बहुत अधिक तनावग्रस्त हो जाते हो और तुम उसे चेतना में लाने का प्रत्येक प्रयास करते हो। पर वह याद नहीं आ रहा है और तुम जितना अधिक प्रयास करते हो, उतने ही अधिक तुम असफल हो जाते हो। तुम यह भी जानते हो कि तुम उसे भूले नहीं हो, निरंतर तुम्हें यह बोध बना रहता है कि तुम उसे याद कर सकते हो। वह ठीक तुम्हारे आसपास ही है, लेकिन कुछ बाधा या कोई अटकाव वहां है जिसके कारण वह नाम तुम्हें याद नहीं आ रहा है। वह नाम किसी प्रिय मित्र का हो सकता है। तुम्हारा पूरा प्रयास बिल्कुल व्यर्थ हो जाता है, तब तुम उसका ख्याल ही छोड़ देते हो। तुम समाचार पत्र पढ़ना शुरू कर देते हो अथवा धूम्रपान करने लगते हो अथवा तुम उद्यान में टहलने के लिए चले जाते हो अथवा तुम बगीचे में खुदाई करना शुरू कर देते हो और अचानक वह नाम तुम्हें याद आ जाता है, अचानक वह नाम तुम्हारे मन में होता है, मित्र का चेहरा भी तुम्हारे सामने होता है।
ऐसा क्या हुआ? जब तुम प्रयास कर रहे थे तो तुम अधिक तनावग्रस्त थेऔर
वह तनाव ही एक अवरोध बन गया था और उस तनाव ने स्मृति का मार्ग संकरा और तंग कर दिया था। नाम बाहर आना चाहता था, स्मृति द्वार खटखटा रही थी, लेकिन तनाव ग्रस्तता से मार्ग अवरुद्ध हो गया। इसी कारण तुम यह अनुभव कर रहे थे कि वह ठीक जीभ की नोंक पर रखा हुआ है। वह वहां था, लेकिन चूंकि तुम इतने अधिक तनाव में थे, उसके बारे में इतने अधिक परेशान थे, उसे बाहर लाने के लिए इतने अधिक व्यग्र थे कि तुम्हारी व्यग्रता ही एक अवरोध बन गई। जब मन बहुत व्यग्र होता है, तो वह कार्य करना बंद कर देता है।
वह सभी कुछ, जो सुंदर है और सत्य है, वह केवल तभी घटित होता है जब तुम उसके बारे में व्यग्र नहीं होते हो। वह सभी कुछ जोप्रेमपूर्ण और प्यारा है, केवल तभी घटित होता है जब तुम उसके लिए प्रतीक्षा नहीं करते हो, उसकी पूछताछ नहीं करते हो और मांग नहीं करते हो। तब मन के सामने कोई अवरोध नहीं होते हैं। इसी कारण ऐसा तब होता है जब तुम उसे भूल जाते हो।
प्रयास करना आवश्यक है, प्रारंभ में प्रयास करना अनिवार्य है, हालांकि वह व्यर्थ है, लेकिन तब भी प्रारंभ में वह अनिवार्य है। धीमे धीमे ही उसकी व्यर्थता का अनुभव होगा। जब तुम्हें अकस्मात झलकें मिलने लगेंगी, तब तुम अनुभव करोगे कि वहां कोईप्रयास नहीं था, यह झलकें परमात्मा की ओर से उपहार हैं, यह तुम पर स्वतः ही बरस रही हैं। तभी तुम प्रयास को छोड़ सकते हो और प्रयास छोड़ते ही अधिक से अधिक उपहार तुम्हारी ओर आएंगे।
पूरब में हमारा सदा यह विश्वास रहा है और यह विश्वास ठीक भी है कि बुद्धत्व एक उपलब्धि नहीं है, प्राप्ति नहीं है। बुद्धत्व एक अनुकम्पा के

समान है, वह एक उपहार है, एक प्रसाद है, जो परमात्मा तुम्हें स्वयं देता है। तुम इस उपहार को परमात्मा के हाथों से छीन नहीं सकते हो।
एक पश्चिम के खोजी के लिए यह अनुभव करना बहुत कठिन है, क्योंकि पश्चिम में पिछली कुछ सदियों से मनुष्य का पूरा मन प्रयासरत हो गया है, वह प्रयास द्वारा सबकुछ छीन लेना चाहता है। तुमने प्रकृति से हर चीज़ को छीन लिया है। विज्ञान जो भी रहस्य जानता है, वे प्रकृति द्वारा दिए नहीं गए हैं, उन्हें झपटकर छीना गया है। तुमने हिंसक तरीके से प्रकृति को अपने रहस्यमय द्वार खोलने के लिए बाध्य किया है। क्योंकि तुम पदार्थ के साथ सफल हो गए हो, इसलिए तुम सोचते हो कि ऐसा ही उस आलौकिक परमात्मा या दिव्य ऊर्जा के साथ भी किया जा सकता है। वह नहीं हो सकता, वह असंभव है। तुम स्वर्ग पर आक्रमण नहीं कर सकते, तुम धारदार तकनीकी हथियारों के साथ वहां नहीं जा सकते। तुम परमात्मा को उसके हृदय के द्वार खोलने के लिए विवश नहीं कर सकते, क्योंकि जब भी तुम बाध्य करते हो, तुम समाप्त हो जाते हो, तुम बंद हो जाते हो। यही समस्या है कि यदि तुम बंद हो जाते हो तो परमात्मा तुम्हारे लिएरहस्य प्रकट नहीं कर सकता है।
जब तुम विवश नहीं हो, बाध्य नहीं हो, बल का प्रयोग नहीं कर रहे हो, बल्कि एक श्वेत बादल की तरह केवल मस्त होकर घूम रहे हो, तुम कहीं भी पहुंचने का कोईप्रयास नहीं कर रहे हो, जब तुम्हारे पास कोई लक्ष्य नहीं है, कोईप्रयास नहीं है, जब तुम किसी चीज़ कोप्राप्त नहीं करना चाहते हो और तुम्हें किसी भी प्रकार का कोई भी तनाव नहीं है। तुम जैसे भी हो बस उसी में प्रसन्न हो, संसार में जो भी घट रहा है तुम उस में प्रसन्न हो, जब तुम हर चीज़ को पूर्णता से स्वीकार कर रहे हो और कहीं कोई परिवर्तन नहीं चाहते हो तो अचानक तुम अस्तित्व के एक भिन्न आयाम में प्रवेश कर जाते हो। तब तुम यह अनुभव करते हो कि द्वार तो हमेशा से खुले ही हुए हैं, वे कभी भी बंद नहीं थे और न वे बंद हो सकते हैं, तो दिव्य रहस्य हमेशा तुम्हारे निकट ही हैं, वह कभी भी दूर नहीं थे। वह हो भी नहीं सकते, क्योंकि तुम उस दिव्य अस्तित्व के ही एक भाग हो। जहां कहीं भी तुम जाते हो, वह रहस्य तुम्हारे साथ ही गतिशील होता है।
यह ढूंढने अथवा खोजने का प्रश्न नहीं है, यह प्रश्न है मौन होकर सब कुछ स्वीकार करने का। जब तुम खोजते हो तो असफल हो जाते हो, क्योंकि खोजी सदा हिंसक होता है। जब तुम खोजोगे तो वह तुम्हारे पास नहीं आएगा, क्योंकि जो मन खोजने का प्रयास कर रहा है वह स्वयं भी तो व्यस्त है और इसी व्यस्तता के कारण कुछ अनुभव प्राप्त नहीं होता। यह प्रयासरत मन यहीं और अभी में नहीं है, यह तो कहीं भविष्य में है। जब खोज की जाएगी और जब खोज पूरी हो जाएगी, जब अन्वेषण का अंत हो जाएगा, तब भी यह मन हमेशा कहीं भविष्य में होगा। वह यहां है ही नहीं है, वह हमेशा किसी लक्ष्य की तलाश में होता है। परंतु परमात्मा यहीं है, इसलिए तुम उससे कभी नहीं मिल पाते। एक खोजी कभी नहीं पंहुच पाता है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हें खोजी नहीं बनना चाहिए। तुम्हें प्रारंभ में तो खोजने का प्रयास करना ही होगा। कोई अन्य उपाय नहीं है। प्रारंभ में तुम्हें एक खोजी बनना ही होगा, तुम्हें खोज करनी ही होगी और सारे प्रयास भी करने होंगे। केवल सभी प्रयासों के करने के बाद और एक पागल खोजी बनने पर ही तुम्हें यह अनुभव होगा कि परमात्मा केवल तभी घटित होता है, जब तुम्हारा मन खोजी नहीं होता है।
कभी-कभी विश्राम करते हुए वह तुम तक आ जाएगा और कभी-कभी सोते हुए भी वह तुम पर उतरेगा। कभी सड़क पर टहलते हुए वह वहां होगा। कभी सुबह सूर्योदय के समय कोई भी कार्य न करते हुए, केवल निष्क्रिय सजगता से उदय होते सूर्य को देखते हुए अथवा एक ठंडी रात में झील की सतह पर जगमगाते हुए चांद की ओर देखते हुए या पंखुड़ियां खोलते हुए एक फूल को देखते हुए... और तुम केवल एक निष्क्रिय जागरूकता में हो, तुम्हारी तरफ से लेशमात्र क्रिया की भी आवश्यकता नहीं है। जब एक फूल खिल रहा है तो तुम्हारी ओर से किसी भी सहायता की आवश्यकता नहीं है।
वे लोग मूर्ख हैं, जो सहायता करने का प्रयास करेंगे। वे उस पुष्प के पूरे सौंदर्य को नष्ट कर देंगे और तब फूल वास्तव में कभी नहीं खिलेगा। यदि तुम उसे बलपूर्वक विकसित करते हो तो वह समाप्त हो जाएगा, वह उसका विकास

नहीं होगा, उसकी खिलावट नहीं होगी वरन यह उसकी मृत्यु होगी। खिलावट इस तरह बल का प्रयोग करने से नहीं होती है। सूरज को उदित होने के लिए तुम्हारी सहायता की आवश्यकता नहीं है। इस संसार में ऐसे लोग हैं, जो सोचते हैं कि उनकी तरफ से सहायता की आवश्यकता है। ऐसे लोग भी हैं, जो बहुत अधिक उपद्रव करते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि प्रत्येक जगह उनकी ही सहायता की आवश्यकता है।
वास्तविक जीवन में जहां कभी भी सत्य घटित हो रहा है, वहां किसी भी व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं है, लेकिन किसी कोप्रलोभन से रोकना बहुत कठिन है, क्योंकि जब तुम सहायता करते हो तो तुम्हें लगता है कि तुम कुछ कर रहे हो। जब तुम कुछ कर रहे हो तो तुम अहंकार सृजित करते हो। जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो तो अहंकार अस्तित्व में नहीं रह सकता। अक्रिया के क्षण में अहंकार विलुप्त हो जाता है। उदित होते हुए सूर्य की ओर देखते हुए, एक खिलते हुए पुष्प की ओर देखते हुए, सर्द झील में चांद के जगमगाते हुए प्रतिबिंब की ओर देखते हुए, अचानक उसका तुम पर अवतरण होगा। तुम पाओगे कि पूरा अस्तित्व एक दिव्यता से भर गया है और तुम्हारी प्रत्येक श्वास दिव्य है।
प्रयास के द्वारा प्रयासहीनता तक पहुंचो।
खोज के द्वारा निष्क्रियता तक पहुंचो।
मन के द्वारा अ-मन की स्थिति तक पहुंचो।
दो तरह के लोग हैं। एक वे लोग हैं जिनसे यदि मैं प्रयास करने के लिए कहता हूं, तो वे प्रयास करते हैं लेकिन वे प्रयासहीनता को घटित होने की अनुमति नहीं देते। दूसरी तरह के लोगों से यदि मैं कहता हूं कि वह केवल प्रयासहीनता में ही घटित होगा, तो वे सभी प्रयास छोड़ देते हैं। दोनों ही गलत दिशा में चले गए हैं। दोनों ही रास्ता भटक गए हैं।
यही जीवन का सुर-ताल है कि प्रयास करो, ताकि तुम प्रयासहीन भी बन सको। तनाव को उसके अंतिम छोर तक ले जाओ, जिससे तुम्हें तनावरहित चेतना के क्षण प्राप्त हो सकें। जितनी अधिक तेज़ी से दौड़ सकते हो, दौड़ो, ताकि जब तुम बैठो तो वास्तव में स्थिर होकर बैठ सको। प्रयास में इतने अधिक संलग्न हो जाओ ताकि जब तुम विश्राम करो, तो वह एक सच्चा विश्राम हो।
तुम अपने अंदर बेचैन रहते हुए, झूठा विश्राम भी कर सकते हो। तुम भूमि
पर नीचे लेट सकते हो, लेकिन अंदर बेचैनी बनी हुई है। तुम पूरी तरह से लेट जाते हो, लेकिन यह विश्राम नहीं है। तुम एक बुद्ध के समान स्थिर बैठ सकते हो परंतु तुम्हारे अंदर शायद एक चंचल बच्चा दौड़ रहा है, मन निरंतर कार्य किए जा रहा है। अंदर तुम पागल होते जा रहे हो और बाहर तुम एक बुद्ध की मुद्रा में बैठे हो। तुम बाहर तो पूरी तरह से स्थिर हो सकते हो, कोई गतिशीलता नहीं, कोई क्रिया नहीं, परंतु भीतर एक कोलाहल से भरा हंगामा चलता जा रहा है। इससे सहायता नहीं मिलेगी। प्रयास करते हुए उस कोलाहल को समाप्त करो। जितनी अधिक तेज़ी से हो सके, दौड़ो और थककर निढाल हो जाओ। इसलिए मेरा जोर सक्रिय ध्यान करने पर है। इसमें प्रयास और प्रयासहीनता दोनों ही हैं। इसमें क्रिया और अक्रिया दोनों हैं और अंत में है झाझेन... केवल शांत बैठे रहना।
नान-इन शिष्य के अंदर झांक रहा है। वह देख रहा है कि क्या उसका शिष्य प्रयास के पार चला गया है? क्या वह प्रयासहीनता तक आ गया है? क्या उसके लिए चेतनता या सजगता सहज और स्वाभाविक हो गई है? क्या वह भ्रमों और उलझनों से मुक्त हो गया है? क्या वह शुभ्र नीले आकाश के समान स्पष्ट है? यदि हां, तभी वह एक सदगुरु बन सकता है, तभी उसे दूसरों को सिखाने के लिए जाने की अनुमति दी जा सकती है। जब कभी भी तुम्हारे भीतर किसी को कुछ सिखाने का प्रलोभन जागता है, तो तुम भी इस बात को सदैव याद रखना। यदि तुम किसी भी व्यक्ति से कुछ कहना चाहते हो तोकेवल इतना ही कहो कि वह "उसके" बारे में है:परमात्मा के बारे में अथवा सचेतनता के बारे में है। दूसरे को सजग कर दो कि तुमने अभी तक "उसे"प्राप्त नहीं किया है, तुमने केवल उसके बारे में सुना है। तुमने इतनी अधिक सुंदर और आकर्षक बातें अथवा विचार सुने हैं कि तुम उन्हें बांटना चाहते हो, लेकिन तुम अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हो। तब तुम बिना किसी

विषाक्त या दूषित विचारधारा के, दूसरे व्यक्ति के लिएएक सहायता का माध्यम बन सकते हो।
सदा स्मरण रहे-यदि तुम नहीं जानते हो, तो नहीं जानते हो। नकारात्मक ढंग से जानने का दिखावा मत करो, क्योंकि तुम केवल मौन भी रह सकते हो। यह भी कहने की आवश्यकता नहीं है कि तुम अभी उपलब्ध नहीं हुए हो, बस पूरी तरह से मौन भी रह सकते हो। पर यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि मौन बने रहने से दूसरा व्यक्ति यह अनुमान लगा सकता है कि तुम जानते हो। इसलिए यह स्पष्ट कर दो कि तुमनेजाना नहीं है, लेकिन तुम ऐसे व्यक्तियों को जानते हो, जिन्होंने जाना है, ऐसा तुमने सुना है।
भारत में दो तरह के धर्मग्रंथ उपलब्ध हैं:"श्रुति" और "स्मृति"। "स्मृति" का अर्थ हैस्मरण और "श्रुति" का अर्थ हैजिसे सुना गया है। जिस साहित्य को"स्मृति" कहा जाता है वह उन लोगों सेसंबंधित है, जिन्होंने स्वयं जाना है। यह उनका अपना है। उन्होंने अपनी स्मृति से संबंध जोड़कर रखा है, उन्होंने स्वयं अनुभव करते हुए उससे संबंध जोड़ा है। "श्रुति" दूसरी तरह का साहित्य है। यह उन लोगों के द्वारा आया है, जिन्होंने उन "जानने वाले" लोगों के निकट रहकर सुना है, यह वे लोग हैं जिन्हें सुनने का सौभाग्य मिला है।
यह बात सदा स्मरण रहे-यदि तुमने सुना है, तब बताओ कि यह बात तुमने सुनी
है और वह इतनी अधिक सुंदर है कि केवल सुनने मात्र से ही वह तुम्हारे लिए एक खज़ाना बन गई। इस बात को सुनते हुए ही, उसने तुम्हारे हृदय को भीतर तक स्पर्श किया कि अब तुम उसे सबके साथ बांटना चाहते हो। लेकिन यह बांटना केवल मित्रवत है। बांटने से तुमसदगुरु नहीं बन गए हो। यह केवल एक प्रेमपूर्ण भाव है, तुम अपनी प्रसन्नता में दूसरों को भी सहभागी बनाना चाहते हो। तुम सजगता को नहीं बांट रहे हो, जब तक तुम उसे उपलब्ध न हो जाओ, जब तक तुम अनुभव न कर लो, जब तक वह तुम्हारा निजी अनुभव न बना हो, किसी भी व्यक्ति को मार्गदर्शन देने का प्रयास मत करो। यह हिंसा है और जब तुम उपलब्ध हो जाओगे, तब तुम्हारी प्रामाणिक आत्मा स्वयं ही एक मार्गदर्शक बन जाएगी।
यह शिष्य, जोसदगुरु नान-इन के पास आया था, उसने बिल्कुल प्रारंभ से ही गलत कदम उठाया, क्योंकि यदि वह तैयार हो गया था तो नान-इन ने उसे स्वयं बुला लिया होता। यह निर्णय करने का कार्य शिष्य का नहीं था कि अब दस वर्ष पूरे हो चुके हैं और मुझे अब शिक्षा देने बाहर जाना चाहिए। यह पूरा विचार ही गलत था। यदि वह तैयार हो गया था तो शिष्य से पूर्व सदगुरु को ही इस बात का ज्ञान हो जाता, क्योंकि निश्चित रूप से शिक्षक तुम्हारी अपेक्षा कहीं अधिक कुशलता से निरीक्षण कर सकता है।
सदगुरु तुम्हारी रातों में, तुम्हारे सपनों में भी तुम्हारा अनुसरण करता है। जो कुछ भी हो रहा है, जो भी तुम्हारे साथ घट रहा है, सदगुरु एक छाया की भांति निरंतर तुम्हारा अनुसरण कर रहा है, चाहे तुम उसके निरीक्षण के प्रति सचेत हो या न हो। तुम सचेत नहीं हो सकते, क्योंकि यह बहुत अधिक सूक्ष्म विषय है।
जब कभी भी एक शिष्य तैयार होता है, सदगुरु उसे बुलाएगा और उससे कहेगा-"अब तुम जाओ।" शिष्य को यह घोषणा करने की आवश्यकता नहीं है और यदि शिष्य यह घोषणा करने का निर्णय लेता है, तो इसका अर्थ है कि वह अभी तैयार नहीं हुआ हैऔर अहंकार अभी भी मौजूद है।
शिष्य एक सदगुरु होना चाहता था, प्रत्येक शिष्य यह चाहता हैऔर यह गहरी चाह ही एक अवरोध बन जाती है। दस वर्ष पूरे हो गए थे, अनिवार्य रूप से वह उनकी गणना करता रहा होगा। वह निश्चित रूप से एक बहुत चालाक व्यक्ति रहा होगाअन्यथा कौन स्मरण रखेगा? यदि तुम समय को नहीं भूल पाए तो एक सदगुरु के साथ रहने का उपयोग ही क्या है? फिर अन्य ऐसा क्या है जिसे तुम भूल पाओगे? तुम्हें जल्दी किस बात की है?
यह शिष्य समर्पित नहीं है। वह केवल समय की गणना कर रहा है, प्रतीक्षा
कर रहा है। वहां एक गणित है, वहां एक तर्क-वितर्क है और विषयों के प्रति एक स्थिर दृष्टिकोण है। वह मठ का इतिहास जानता है कि दस वर्षों के समय में एक शिष्य तैयार हो जाता है और वह बाहर दूसरों कोज्ञान बांटने के लिए जाता है।

लेकिन यह कई बातों पर निर्भर करता है, दस वर्षों में प्रत्येक शिष्य तैयार नहीं होगा। हो सकता है कि कुछ शिष्य तो दस जन्मों में भी तैयार न हों। और कुछ शिष्य केवल दस क्षणों में तैयार हो जाएंगे। यह कोई यांत्रिक उपकरण नहीं है। यह शिष्य के गुणों, लक्षणों और उसकी चेतना की सघनता पर निर्भर करता है। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि सदगुरु के केवल एक दृष्टिपात से ही शिष्य तैयार हो गया। यदिशिष्य के हृदय के द्वार खुले हुए हैं या वहां कोई अवरोध नहीं है और यदि वह समर्पित है, तब एक क्षण ही पर्याप्त है। हालांकि वह भी आवश्यक नहीं है, सबकुछ समयहीनता में घटित हो जाता है। लेकिन यदि तुम सोच-विचार कर रहे हो, समय की गणना कर रहे हो कि मुझे कब घटित होगा? मैंने पर्याप्त प्रतीक्षा कर ली। एक वर्ष समाप्त हुआ, दो वर्ष समाप्त हुए, दस वर्ष भी बीत गए, मैं प्रतीक्षा ही कर रहा हूं और कुछ भी घटित नहीं हो रहा है। यदि तुम अपने अंदर गणना कर रहे होतो तुम समय व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हो। एक शिष्य को समय संबंधी चिंता छोड़ देनी चाहिए। समय, अहंकार से संबंध रखता है। समय मन से संबंध रखता है। ध्यान हैसमय हीनता में बने रहना।
यह शिष्य सदगुरु के पास केवल यह घोषणा करने के लिए आता है कि अब दस वर्ष बीत चुके हैं। आप मुझे कहां भेजने का विचार कर रहे हैं और अब मुझे कहां शिक्षा देने के लिए जाना है? मैं तैयार हो गया हूं, क्योंकि दस वर्षों का समय बीत चुका है। इस तरह से कोई भी कभी तैयार नहीं होता। इसी कारण सदगुरु को उससे प्रश्न पूछना पड़ा, केवल इसलिए जिससे शिष्य को स्वयं अपनी मूर्खता की प्रतीति हो जाए।
झेन सदगुरु कठोर और कठिन होते हैं, उनकी सीधी और पैनी दृष्टि के कारण शिष्य को स्वयं शर्मिंदगी का अनुभव होता है। एक महान खोजी से, जो दस वर्षों से प्रतीक्षा कर रहा है, उससे किस तरह का प्रश्न पूछा गया-"तुमने अपने जूते कहां उतारे? छाते के दाईं ओर अथवा बाईं ओर" यह किस तरह का प्रश्न है और यह व्यक्ति किस तरह का है, जो एक महान खोजी से इस तरह का प्रश्न पूछता है?
यह किसी भी प्रकार से आत्मज्ञान से संबंधित तत्त्व-मीमांसा का प्रश्न नहीं है। तुम इससे अधिक तुच्छ, व्यर्थ और इससे अधिक अधार्मिक प्रश्नपूछ ही नहींसकते, जूते उतारने के बारे में पूछा जा रहा है।
उसे परमात्मा के बारे में पूछना चाहिए था और शिष्य उसके लिए तैयार होता। उसे स्वर्ग और नर्क के बारे में पूछना चाहिए था और शिष्य उत्तर देने को पहले से तैयार होता। शिष्य ने अनिवार्य रूप से प्रत्येक उत्तर और प्रत्येक विषय को रट लिया होगा। इसी रटने में और पठन-पाठन में उसने दस वर्षों का समय व्यर्थ नष्ट किया था। उसके पास सभी धर्मशास्त्रां का ज्ञान था और वह पहले से तैयार था कि सदगुरु कोई भी प्रश्न पूछ सकते हैं।
स्मरण रहे, यदि तुम एक बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति के निकट हो तो वह
एक ऐसा प्रश्न नहीं पूछेगा, जिसका तुम उत्तर दे सको। उसका प्रश्नउत्तर देने लायक नहीं होता है, वह तो तुम्हारे पूरे अस्तित्व के साथ प्रत्युत्तर देने वाला प्रश्न होता है।
सदगुरु ऐसा व्यर्थ का प्रश्न पूछता है, जैसे-"तुमने अपने जूते कहां उतारे"? शिष्य का पूरा आध्यात्मिक उधार ज्ञान अनिवार्य रूप से खंड-खंड हो गया होगा। उसने निश्चित रूप से सोचा होगा, "यह किस तरह का व्यक्ति है... ? यहां मैं तैयार हूं और सभी उत्तर बुलबुलों की तरह मेरे भीतर उबल रहे हैं। आप किसी भी तरह का प्रश्न उठाओ और मैं उत्तर दूंगा। जिन प्रश्नों का बुद्ध ने भी कभी उत्तर नहीं दिया, मैं उनका भी उत्तर दूंगा। मैं सभी धर्मग्रंथों का ज्ञान जानता हूं। मैंने प्रत्येक पुस्तक का अध्ययन किया है और मैंने सभी धर्मसूत्रों कोयाद किया है।"
वह पूरी तैयारी से आया था और सदगुरु जूतों के बारे में पूछता है। लेकिन यह व्यक्ति वास्तव में एक ऐसा प्रश्न पूछता है जिसका उत्तर नहीं दिया जा सकता, क्योंकि पहले से उसके लिए तैयार नहीं हुआ जा सकता है। वह पूर्ण रूप से पूर्व अनुमानित नहीं था। शिष्य तब हिचकिचाहट का अनुभव करता है और यह हिचकिचाहट ही प्रत्युत्तर है। हिचकिचाहट, उस शिष्य के बारे में सबकुछ बतलाती है कि वह अभी तक सचेत नहीं हुआ है, अन्यथा वहां कोई भी हिचक

नहीं हो सकती थी। वहां स्पष्ट उत्तर होता। यदि वह सचेत हुआ होता तो इस तरह की प्रतिक्रिया उसने नहीं की होती। उसने पूर्ण रूप से, समग्रता से, जागरूकता से प्रत्युत्तर दिया होता। लेकिन वह उस समय उलझनों से भरा हुआ, एक भ्रमित और संकोची मन के रूप में ही सीमित रह गया।
यह कथा बहुत सुंदर है। जब पहली बार पश्चिम में झेन को जाना गया तो वे लोग यह विश्वास ही न कर सके कि ये झेन सदगुरु क्या करते हैं? वे व्यर्थ के प्रश्नक्यों पूछते हैं? तुम एक सदगुरु से एक प्रश्न पूछते हो और वह प्रत्युत्तर देता है। कोई भी झेन सदगुरु तुम्हें उत्तर नहीं देगा, वह प्रत्युत्तर देगा।
एक खोजी, निश्चित रूप से तत्त्वज्ञान का खोजी, झेन सदगुरु बोकोजू के पास आया और उसने बोकोजू से पूछा:"मार्ग क्या है"
बोकोजू ने निकटवर्ती पहाड़ियों की ओर देखा और कहा:"ये पहाड़ियां बहुत सुंदर हैं।"
उत्तर निरर्थक प्रतीत होता है। वह पूछता है:"मार्ग क्या है" और बोकोजू कहता है:"ये पहाड़ियां बहुत सुंदर हैं।" निराश होकर उस खोजी ने तुरंत ही वह स्थान छोड़ दिया। तब बोकोजू खिलखिलाकर हंस पड़ा। एक शिष्य ने कहा:"प्यारे सदगुरु! उस व्यक्ति ने निश्चित रूप से यह सोचा होगा कि आप पागल हैं।"
बोकोजू ने कहा:"हम में से एक तो निश्चित रूप से पागल है। वह ही पागल हैक्योंकि तुम मार्ग के बारे में नहीं पूछ सकते, तुम्हें तो उस पर यात्रा करनी है। यात्रा करने के द्वारा ही मार्ग खोजा जा सकता है। पहले से बना- बनाया मार्ग तैयार नहीं होता है, इसलिए मैं यह नहीं कह सकता कि वह कहां है" तत्व ज्ञान को खोजने का मार्ग किसी राजमार्ग के समान पहले से तैयार नहीं है, जो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हो-"आओ और यात्रा करो।" वहां इस तरह का कोई भी मार्ग नहीं है, अन्यथा बहुत समय पूर्व ही सभी वहां पहुंच गए होते। यदि मार्ग तैयार मिल गया होता तोप्रत्येक व्यक्ति ने यात्रा कर ली होती। मार्ग तो तुम्हारे यात्रा करने के द्वारा सृजित होता है, वह पहले से तुम्हारी प्रतीक्षा नहीं कर रहा है। जिस क्षण तुम यात्रा करना प्रारंभ करते हो, उसी क्षण वह सृजित हो जाता है। वह तुम्हारे द्वारा ही बनता है। ठीक एक मकड़ी के जाले के समान वह तुम्हारे द्वारा और तुम्हारे भीतर से ही बन कर आता है। वह तुम्हारे द्वारा ही आता है। तुम ही उसे सृजित करते हो और तब तुम ही उस पर यात्रा करते हो। जैसे-जैसे तुम स्वयं द्वारा निर्मित इस मार्ग पर यात्रा करते जाते हो, तुम उसे और अधिक सृजित करते जाते हो। स्मरण रहे, यह मार्ग तुम्हारे साथ ही विलुप्त होता जाता है। अन्य कोई दूसरा व्यक्ति उस पर यात्रा नहीं कर सकता है। भीतर का यह मार्ग उधार नहीं लिया जा सकता।
इसलिए सदगुरु कहता है:"वह पूछा नहीं जा सकता और केवल मूर्ख लोग ही ऐसे प्रश्न पूछते हैं कि मार्ग क्या है? तुम्हीं मार्ग हो।"
तब शिष्य ने कहा:"मैं इसे समझता हूं, लेकिन आपने पहाड़ियों के बारे में क्यों कहा"
सदगुरु ने कहा:"एक सदगुरु को पहाड़ियों के बारे में बात करनी ही होती है, क्योंकि यदि तुम पहाड़ियों को पार नहीं करते हो तो मार्ग खोजने का कोई उपाय नहीं है। मार्ग, पहाड़ियों के पार है और पहाड़ियां इतनी अधिक सुंदर हैं कि कोई व्यक्ति उनको पार करना ही नहीं चाहता। वे इतनी अधिक आकर्षक और सम्मोहित करने वाली हैं कि प्रत्येक व्यक्ति पहाड़ियों में ही खो जाता है और मार्ग तो उसके पार है।"
एक सदगुरु से प्रत्युत्तर आता है। वह तुम्हारी वास्तविक आवश्यकता पर चोट करता है। वह तुम्हारे प्रश्न के बारे में फिक्र नहीं करता है। तुम्हारा प्रश्न संगत अथवा असंगत हो सकता है, पर सदगुरु के लिए तुम हमेशा संगत बने रहते हो। वह तुम्हारे अंदर झांककर देखता है। वह तुम पर चोट करता है, लेकिन बुद्धिवादी लोग हमेशा इस तरह के उत्तरों से चूक जाएंगे।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
ग्यारहवां प्रवचन

जीवन का मृत्यु के संग मिलन

पहला प्रश्नः
ओशो! जब आपके सामने बैठे हुए हम आपके वचनों को सुनते हैं और आपकी उपस्थिति का अनुभव कर रहतेहैं तोआपके द्वारा कहा गया सबकुछ संभव जैसा प्रतीत होता है। परंतु जैसे ही हम अपने दैनिक जीवन की परिस्थितियों में वापस लौटते हैं तो स्पष्टता और पारदर्शिता खो जाती है और हम स्वयं को आपसे दूर महसूस करने लगते हैं।
आप कहते हैं कि हमें संसार का परित्याग नहीं करना चाहिए, बल्कि इसी जगत में रहते हुए ध्यानपूर्ण होना चाहिए। आपने यह भी बताया है कि हमें हर पल मस्ती में जीना चाहिए। हम अपने परिवार, समाज और मित्रों के बीच रहते हुए, कैसे इन दोनों बातों के बीच सामंजस्य बिठा सकते हैं?

यदि तुम इन दोनों बातों को विरोधाभास की तरह की लोगे और सोचोगे कि इन्हें कैसे मिलाया जाए तो तुम हमेशा कठिनाई में पड़ोगे। तब प्रत्येक चीज़ एक समझौता बन जाएगी और समझौते के साथ कभी भी संतोष और पूर्णता का अनुभव नहीं किया जा सकता है। समझौते की हालत में हमेशा कुछ कमी खलती रहेगी। यदि तुम एक बात मानते हो तो दूसरी तरफ कुछ छूट जाता है और दूसरी बात मानते हो तो इस तरफ कुछ रह जाता है। इस छूटने वाली तरफ पर तुम्हारी नज़र हमेशा ही बनी रहेगी, मन उसी के इर्द-गिर्द मंडराता रहेगा। इसलिए यह समझौता कभी भी तुम्हें आनंदपूर्ण नहीं होने देगा।
इसलिए पहली बात तो यह है कि कभी भी समझौते की शर्त पर मत सोचो। यदि तुम विरोधाभास की सीमा में सोचते हो और कोशिश करते हो कि कैसे उन्हें मिलाया जाए? तब तुम समझौते के बंधन में बंध ही जाते हो। इसलिए मैं तुम्हें क्या सुझाव देने जा रहा हूं?
पहली बात तो यह कि हमेशा अपने भीतर समग्र और संयुक्त बने रहो, इसके अतिरिक्त किसी और संयुक्तता के बारे में मत सोचो, क्योंकि मिलन-बिंदु तुम ही हो। अकेले में, एकांत में तुम मौन होते होपर जीवन में तुम्हें सक्रिय होना होता है। मौन और सक्रियता यह दोनों विरोधाभास हैं, लेकिन यह दोनों ही तुम्हारे भीतर आकर मिलते हैं। तुम मौन हो, तुम ही सक्रिय होऔर जीवन से संयुक्त भी हो। यदि तुम भीतर से समग्र और संयुक्त हो तो तुम्हारा मौन और तुम्हारी सक्रियता दोनों ही समग्र और संयुक्त होंगी। तुम्हारा अकेले होना और तुम्हारा अपने पति अथवा पत्नी अथवा मित्रों के साथ होना दो विरोधाभासी बातें हैं, लेकिन तुम दोनों में ही मौजूद हो। यदि तुम समग्र और संयुक्त हो तो अकेले में भी तुम प्रसन्न रहोगे। यदि तुम समग्र और संयुक्त हो तो दूसरों के साथ भी तुम प्रसन्न रहोगे। प्रसन्नता तुम्हारा गुण होगा। प्रसन्नता अकेलेपन या दूसरों के साथ पर निर्भर नहीं करती है। यदि वह निर्भर करती है तो बहुत समस्याएं होंगी।
यदि तुम अनुभव करते हो कि जब तुम अकेले होते हो तो तुम प्रसन्न रहते
हो तो तुम्हारी प्रसन्नता तुम्हारे एकांत पर निर्भर करती है, तब कठिनाई होगी। जब तुम दूसरों के साथ अप्रसन्नता का अनुभव करते हो और सोचना शुरू कर देते हो कि इन दो विरोधों को कैसे मिलाया जाए? तब समस्या उत्पन्न होती है, क्योंकि तुम अपनी प्रसन्नता के लिए अपने अकेलेपन पर निर्भर हो।
निर्भर मत बनो। जब अकेले हो तोप्रसन्न रहो। अपनी प्रसन्नता को अपना गुण बनने दो। जब तुम अकेलेपन से हटकर जीवन की सक्रियता में शामिल होते हो, लोगों के साथ संवाद करते हो, अपने संबंधों के जगत में आते हो, तब भी प्रसन्नता के उस गुण को, जो अकेलेपन में था, अपने साथ लेते हुए चलो, निश्चित ही उसे साथ लेकर चलो। प्रारंभ में यह कठिन लगेगा, क्योंकि हमेशा तुम ऐसा करना भूल जाओगे और भूल जाने के कारण ही, निरंतर सचेत न बने रहने के कारण ही वह कठिन लगेगा, लेकिन धीमे-धीमे तुम उस गुण को अपने साथ लेकर चलना सीख सकते हो।

जब तुम किसी व्यक्ति के साथ संबंधित हो, तब भी तुम अपने एकांत का आनंद
ले सकते हो। तुम एक समग्र चेतना की तरह हो जाते हो। कुछ भी न करते हुए, तुम प्रसन्न हो, तुम सुखद अनुभव करते हो। यह प्रसन्नता और सहज-सुखद अनुभव तुम्हारा गुण बन जाना चाहिए। यह सहजता निष्क्रियता के रूप में नहीं होनी चाहिए। इस गुण को क्रियाशीलता में भी ले आओ और तब वहां कोई भी समस्या नहीं होगी। प्रारंभ में अवश्य ही कठिनाई होगी, लेकिन मुख्य बात यह है कि तुम्हें यह याद रखना होगा कि तुम्हारी प्रसन्नता, तुम्हारा आनंद, तुम्हारा उन्माद किसी भी बाहरी परिस्थिति पर निर्भर नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा है तब वहां विरोधाभास होगा, क्योंकि वहां निर्भरता होगी।
कुछ लोग अनुभव करते हैं कि जब वे अपने मित्रों के साथ होते हैं, तब वे प्रसन्न रहते हैं और जब वे अकेले होते हैं तब वे दुखी तथा ऊबाऊ महसूस करते हैं और उस समय उन्हें किसी मित्र की आवश्यकता होती है। ये लोग बहिर्मुखी हैं।
दूसरी तरह के लोग अंतर्मुखी होते हैं। जब कभी भी ऐसा व्यक्ति अकेला होता है, वह प्रसन्नता का अनुभव करता है। जब कभी भी वह किसी अन्य व्यक्ति के साथ संबंधित होगा, उसमें एक तरह की अप्रसन्नता प्रविष्ट हो जाती है। ये दोनों ही प्रकार के लोग अपने अपने बंधन में हैं। उनकी सीमा, उनकी विशेष रूचि ही एक बंधन है, तुम्हें किसी भी तरह के बंधन से स्वतंत्रहोना चाहिए। तुम्हें न तो बहिर्मुखी होना चाहिए और न ही अंतर्मुखी, बल्कि तुम्हें दोनों ही होना चाहिए। तब तुम किसी भी बंधन से मुक्त हो।
इसलिए करना क्या है? किसी भी एक स्थिति के साथ स्थिर मत बने रहो, हमेशा विरोधी छोर पर भी गतिशील हो जाओ और प्रसन्नता का वह भीतरी गुण साथ में लिए चलो। जितना अधिक संभव हो सके एक छोर से दूसरे विरोधी छोर पर अपने गुण को साथ लिए हुए गतिशील होते रहो। शीघ्र ही तुम सजग हो जाओगे कि उस भीतरी गुणवत्ता को कहीं भी ले जाया जा सकता है। तब तुम नर्क नहीं भेजे जा सकते, क्योंकि यदि तुम्हें नर्क भेज भी दिया जाए तो तुम वहां भी अपनी प्रसन्नता साथ लिए जाओगे। तब तुम कभी भी भयभीत नहीं हो सकते।
धार्मिक लोग नर्क से भयभीत होते हैं और वे लोग स्वर्ग की ही लालसा करते हैं। ये लोग बिल्कुल भी धार्मिक नहीं हैं, क्योंकि स्वर्ग और नर्क दोनों बाहर की दशाएं हैं, वे तुम्हारा स्वभावगत गुण नहीं हैं। ये धार्मिक नहीं, सांसारिक लोग हैं। सांसारिक व्यक्ति भी तो यही कर रहे हैं। वे कहते हैं:"यदि मेरी यह शर्त पूरी होती है, मैं तभी प्रसन्न हो पाउंगा।" इसलिए प्रसन्नता भी शर्त पर आश्रित है। "यदि मेरे पास एक महल है, मैं तभी प्रसन्न होऊंगा, यदि बैंक में इतना अधिक धन है, मैं तभी प्रसन्न होऊंगा, यदि सुंदर पत्नी हो मैं तभी प्रसन्न होऊंगा अथवा प्रेमपूर्ण पति हो तभी मैं प्रसन्न होऊंगी।" तुम केवल तभी प्रसन्न हो रहे हो जब बाहर की कोईशर्त पूरी हो जाती है। तुम कहते हो कि यदि यह कार्य संपन्न नहीं हुआ अथवा यह कामना पूर्ण नहीं हुई तो मैं अप्रसन्न रहूंगा। यह एक अधार्मिक व्यक्ति के लक्षण हैं। और तथाकथित धार्मिक लोग भी नर्क से बचते हुए स्वर्ग की खोज किए चले जाते हैं। वे सांसारिक लोगों जैसा ही कार्य कर रहे हैं।
तुम्हारे लिए यह साधना बनने जा रहा है:एक अनुशासन की तरह। जितना अधिक संभव हो सके विरोधाभासोंकी ओर गतिशील हो जाओ और साथ ही अपनी आंतरिक सत्यनिष्ठा एवं समग्रता को भी साथ ले जाने का प्रयास करो। शांत बैठे हुए, अनुभव करो कि यह आंतरिक गुण है क्या? तब अंदर स्थिर बने हुए, सक्रियता में भी उस गुण के साथ जाओ। हो सकता है तुम कई बार चूक जाओ, लेकिन उसकी फिक्र मत करो। यदि एक बार भी तुम उसे विरोधी छोर पर ले जा सके, तो तुम उसके स्वामी हो गए। तब तुम उसकी युक्ति जान गए।
कभी-कभी पहाड़ों पर चले जाओ, वे बहुत सुंदर हैं। पुनः संसार में वापस लौट आओ, वह भी बहुत सुंदर है। यदि पहाड़ सुंदर हैं तो लोग सुंदर क्यों नहीं हैं? अपने आप में वे भी एक पहाड़ की ही तरह हैं। कभी बिल्कुल अकेले हो जाओ और कभी दूसरों के साथ जुड़ जाओ। यदि तुम सजग हो सके तो न केवल वहां कोई विरोध ही होगा, बल्कि विरोधी छोर से सहायता भी प्राप्त होगी।
यदि तुम प्रसन्नता का यह गुण एकांत से समाज के साथ ले जा सको तो अचानक तुम एक नए तथ्य के प्रति जागरूक हो जाओगे, ऐसा नया तथ्य जो तुम्हारे भीतर

ही घटित हुआ है कि अकेले होने में समाज तुम्हारी सहायता करता है और समाज में लोगों के साथ गहन संबंध बनाने में एकांत तुम्हारी सहायता करता है। एक मनुष्य जो कभी भी अकेलेपन में नहीं रहा है, वह संबंधों के सौंदर्य को नहीं जान सकता है। मैं कहता हूं कि वह इसलिए नहीं जान सकता है, क्योंकि वह कभी भी अकेला रहा ही नहीं है। वह कभी भी एक मनुष्य की तरह नहीं रहा है, तब वह संबंध के सौंदर्य को कैसे जान सकता है?
एक व्यक्ति जो कभी भी समाज में नहीं रहा है, वह अकेलेपन के परमानंद को नहीं जान सकता है। एक व्यक्ति जिसका जन्म निर्जन स्थान में हुआ हो और उसका लालन-पालन एकांत स्थान में हुआ हो, तुम सोच सकते हो कि वह आनंदित हो सकेगा? क्या तुम सोचते हो कि वह अकेलेपन का आनंद उठा सकेगा? वह पूरी तरह से मंद, सुस्त और मूर्ख बन जाएगा।
पहाड़ों पर जाओ, हिमालय पर जाओ। लोग वहां रह रहे हैं, वे हजारों वर्षों
से उसी स्थान पर रह रहे हैं, उनके जन्म भी वहीं हुए हैं, लेकिन फिर भी, हिमालय की सुंदरता का जितना अनुभव तुम कर सकते हो, उतना वे लोग नहीं कर सकते हैं। वहां के मौन का जितना अधिक आनंद तुम लेते हो, वे उतना अधिक आनंद नहीं ले सकते हैं। यहां तक कि वे लोग तो इसके प्रति सचेत तक नहीं हैं कि वहां मौन विद्यमान है। जब वे लोग शहरों में आते हैं, वे एक रोमांच का अनुभव करते हैं, ठीक वैसा ही रोमांच जो तुम शहर से पहाड़ों पर जाकर अनुभव करते हो। मुंबई, लंदन और न्यूयॉर्क में रहने वाले लोग जब हिमालय पर जाते हैं,
तो वे अद्भुत रोमांच का अनुभव करते हैं और जब पहाड़ों पर रहने वाले लोग मुंबई, न्यूयॉर्क अथवा लंदन जाते हैं, तो वे अनुभव करते हैं कि यह संसार कितना सुंदर है। इस रोमांच और इस सुंदरता को अनुभव करने के लिए विरोधी ध्रुव की आवश्यकता होती है। विरोधी ध्रुव एक पृष्ठभूमि बन जाता है। दिन इसलिए सुंदर है, क्योंकि उसके पीछे रात है। जीवन में इतना आनंद है, क्योंकि वहां मृत्यु है। प्रेम एक आंतरिक नृत्य बन जाता है, क्योंकि घृणा भी मौजूद है।
प्रेम तुम्हें चेतना के उच्चतम शिखर तक ले जाता है, क्योंकि प्रेम नष्ट भी हो सकता है। प्रेम पर विश्वास नहीं किया जा सकता। प्रेम इस क्षण में है और अगले ही क्षण वह नहीं भी हो सकता है। प्रेम की अनुपस्थिति की संभावना ही उसकी उपस्थिति को गहराई देती है। मौन और अधिक गहन हो जाता है, जब उसकी पृष्ठभूमि में कोलाहल होता है।
कुछ क्षण पूर्व ही यहां से एक वायुयान गुज़रा है। तुम इसे दो तरह से देख सकते हो, यदि तुम भीतर से अशांत और व्याकुल हो तो तुम अनुभव करोगे जैसे तुम्हारे मौन में यह एक अवरोध है। यदि तुम अपने भीतर समग्रता से संयुक्त हो तो हवाई जहाज की ध्वनि तुम्हारे मौन को और अधिक गहन बना देगी। वह शोर और वह तेज ध्वनि एक पृष्ठभूमि बन जाती है और मौन को एक रूप, एक आकृति प्रदान करती है। वह मौन को अधिक तीक्ष्णता देती है। जब हवाई जहाज गुज़र जाता है तो मौन पहले की तुलना में और अधिक गहन लगता है। यह तुम पर निर्भर करता है। सदा स्मरण रहे, वस्तुओं, स्थितियों और दशाओं पर निर्भर मत बनो। तब ही तुम भीतर गतिशील हो सकते हो। गतिविधियों और सक्रियता का तिरस्कार मत करो, अन्यथा तुम जड़ हो जाओगे। प्रत्येक व्यक्ति गतिविधि करने से भयभीत है, क्योंकि तुम आश्रित हो। तुम अपने पहाड़ों से और अपने एकांतवास के बाहर, संसार के बाजार में नहीं आ सकते, क्योंकि तुम जानते हो कि तुम अव्यवस्थित हो जाओगे। यह किस तरह का मौन है, जो बाजार के द्वारा क्षतिग्रस्त हो सकता है? इस मौन का क्या मूल्य है? इस मौन का क्या महत्त्व है? यदि संसार का शोरगुल इस मौन को नष्ट कर सकता है, यदि यह नीरस और साधारण संसार उसे नष्ट कर सकता है, तब तुम्हारा मौन बहुत शक्तिहीन है, यह मौन नपुंसक है। यदि तुम्हारा मौन वास्तव में शक्तिशाली है और यदि तुमने उसे गहनता से प्राप्त किया है तो कुछ भी उसे नष्ट नहीं कर सकता है।
मौन के बारे में मैं जो कह रहा हूं, इसे समझना बहुत अधिक कठिन नहीं है, लेकिन मेरा यही दृष्टिकोण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। यदि तुम एक वास्तविक ब्रह्मचारी हो और तुमने सच्चे ब्रह्मचर्य को जाना है तो सेक्स में गतिशील होते हुए भी तुम्हारा ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं हो सकता। इसका अनुसरण करना बहुत कठिन होगा। यदि सेक्स तुम्हारे ब्रह्मचर्य को

क्षतिग्रस्त और अशांत करता है तो उसका महत्त्व और योग्यता नगण्य थी। तुम ब्रह्मचर्य के गुण को अपने भीतर स्थिर रख कर चलो।
यदि तुम वास्तव में जीवंत हो और ऊर्जा से भरे हुए हो, तो तुम प्रसन्नता से मर सकते हो। केवल दुर्बल प्राणी ही दुखी होकर मरते हैंक्योंकि वे कभी पूर्णता से जिए ही नहीं। उन्होंने जीवन के प्याले से जीवन के रस का कभी स्वाद लिया ही नहीं। वे हमेशा दुष्पूर तृष्णा और आशाओं से ही घिरे रहे और उन्हें जीवन कभी घटित ही नहीं हो सका। इसी कारण वे मृत्यु से भयभीत हैं।
कोई भी व्यक्ति जिसने जीवन को पूर्णता से जिया है, वह हमेशा मरने के लिए तैयार है। जिसने वास्तव में जीवन को जिया है, वह प्रत्येक क्षण मृत्यु को स्वीकार करने के लिए तैयार रहता है। "स्वीकार" शब्द भी उचित नहीं है, बहुत बेहतर होगायदि हम कहें कि वह मृत्यु का स्वागत करता है, प्रसन्नता और आनंद से उसे ग्रहण करता है। तब मृत्यु एक साहसिक और अपूर्व अनुभव होता है... ऐसा होना ही चाहिए यदि तुमने वास्तव में जीवन को जिया है। तब मृत्यु एक शत्रु नहीं है, मृत्यु एक मित्र है। एक गहरा जीवन ही मृत्यु को स्वीकारता है और एक उथला जीवन उसे नकारता है। ऐसा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता है।
यदि तुमने जाना है कि मित्रता क्या होती है, तो तुम शत्रुओं से डरोगे नहीं। तुम डर ही नहीं सकते। तब शत्रुओं के पास भी एक अलग सौंदर्य प्रतीत होगा। वह विपरीत छोर पर एक तरह की मित्रता ही होती है। वह विपरीत ध्रुव पर एक प्रेम प्रसंग होता है। यह भी एक तरह का संबंध और एक वचनबद्धता होती है। यदि तुमने मित्रता को जाना है तो तुम शत्रु से प्रेम करोगे।
जीसस के कहने का यही अर्थ है, जब वे कहते हैं:"अपने शत्रुओं से प्रेम करो"। लेकिन सदियों से ईसाई इस कथन की कुछ और ही व्याख्या करते रहे हैं। तुम अपने शत्रु से प्रेम नहीं कर सकते। तुम अपने शत्रु से कैसे प्रेम कर सकते हो? लेकिन मैं तुमसे कहता हूंयदि तुमने मित्रों से प्रेम किया है तो तुम अपने शत्रुओं से भी प्रेम करोगे, क्योंकि एक बार यदि तुमने मित्रता के सौंदर्य को जान लिया तो तुम शत्रुता के सौंदर्य को भी जान लोगे। यह विपरीत क्रम में एक मित्रता ही है। दोनों ही तुम्हें अनुभव प्रदान करती हैं। दोनों ही तुम्हारे जीवन को समृद्ध बनाती हैं।
विपरीत अथवा विरोधी वास्तव में विरोधी नहीं होते। बहुत गहराई में उनके मध्य एक असाधारण लयबद्धता होती है। वे एक अखंड के ही भाग हैं। इसीलिए चीनी लोग कहते हैं:यिन और यांग, वे एक ही गतिविधि के भाग हैं, एक चक्र के ही भाग हैं, वे दो नहीं हैं। वे दो दिखाई देते हैं, क्योंकि हमारी दृष्टि छिछली है और हम नीचे गहराई तक नहीं देख पाते हैं। हमारी चेतना मन की गहराई तक बेध नहीं पाती और इसलिए वे विरोधी की भांति दिखाई देते हैं अन्यथावे विरोधी हैं नहीं।
जीवन और मृत्यु मित्र हैं। वे एक-दूसरे के द्वारा ही अस्तित्व में हैं, वे परस्पर योगदान देते हैं। एक दूसरे के बिना उनका अस्तित्व ही नहीं है। क्या बिना मृत्यु के जीवन अस्तित्व में बना रह सकता है? मनुष्य हमेशा से ही यह सपना देखता रहता है कि मृत्यु को कैसे नष्ट किया जाए? यह मन का दृष्टिकोण है। लकीर पर चलने वाले और तर्क-वितर्क करने वाले मन का यह रवैया है कि मृत्यु को कैसे नष्ट किया जाए? तर्कपूर्ण मन कहता है कि यदि मृत्यु नहीं होगी तो जीवन प्रचुरता में होगा, यह एक सामान्य-सा तर्क है। एक बच्चा भी इस गणित को समझ सकता है कि यदि मृत्यु नहीं होगी तो वहां और अधिक जीवन होगा, लेकिन मैं तुमसे कहता हूंयदि मृत्यु नहीं है तो जीवन भी नहीं होगा। इसी कारण सरल तर्क हमेशा मिथ्या होता है। बाहर से देखने पर तो यह ठीक प्रतीत होता है कि यदि कोई भी शत्रु न हो तो पूरा संसार तुम्हारा मित्र होगा, पर तुम गलत हो। यदि कोई भी शत्रु न हो तो वहां मित्रता की भी संभावना नहीं होगी। तर्क कहता हैयदि घृणा न हो, तो केवल प्र्रेम और नितांत प्रेम ही होगा। इसलिए तर्कशास्त्री विरोधी ध्रुव को नष्ट करने का प्रयास करते रहे हैं। पर वे उसे नष्ट नहीं कर सकते, क्योंकि किसी भी तर्क की तुलना में जीवन कहीं अधिक विराट है। यह सौभाग्य की बात है कि वे विरोध को नष्ट नहीं कर सकते क्योंकि वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं? यदि विरोधी ध्रुव

मौजूद नहीं होगा, तो भरोसा मत करना कि जीवन प्रचुरता में होगा, प्रेम अधिक होगा, मित्रता अधिक होगी और प्रसन्नता कहीं अधिक होगी, नहीं। उसकी कोई संभावना ही न होगी, क्योंकि वास्तविक भूमि ही नष्ट कर दी गई है। अंतर्द्वंदात्मक तर्क पूरी तरह से विरोधी बात कहते हैं परंतु जीवन के प्रति यही अंतर्द्वंद्वात्मक तर्क कहीं अधिक सत्य सिद्ध होते है।
तुम शायद सचेत नहीं हो, लेकिन ऐसा होता है कि जब तुम कार चला रहे हो और गति को तेज कर रहे हो तो तुम इस तीव्र गति में उत्तेजित हो जाते हो, गति के साथ ही शामिल हो जाते हो। एक क्षण ऐसा आता है जब किसी भी क्षण मृत्यु घटित हो सकती है। तब तुम जीवित हो, तब जीवन की ज्योति बहुत तीव्रता से प्रज्ज्वलित होती है। इसी कारण तीव्र गति इतनी अधिक आकर्षक और चुंबकीय होती है, क्योंकि यह तीव्र गति तुम्हें मृत्यु के निकट ले जाती है। जब तुम मृत्यु के निकट होते हो तो जीवन अधिक होता है, वह एक अनुपात में विकसित हो जाता है। इसी कारण युद्ध के लिए इतना अधिक आकर्षण होता है, क्योंकि युद्ध में मृत्यु हमेशा तुम्हारे निकट ही होती है।
तुम शायद सोचोगे कि युद्ध क्षेत्र में युद्ध करते हुए सैनिक बहुत दुखी होते होंगे। पर तुम गलत हो अन्यथा कोई भी युद्ध ही न करता। वे दुखी नहीं होते। वास्तविकता ठीक इसके विपरीत है, जब वे सामान्य संसार में वापस लौटते हैं, वे तब दुखी होते हैं। जब वे युद्ध क्षेत्र में मोर्चे पर लड़ रहे होते हैं, तब वे दुखी नहीं होते। सारी वेदना और दुख विलुप्त हो जाते हैं। वे मृत्यु के इतने अधिक निकट होते हैं कि पहली बार वे जीवंत होने का अनुभव करते हैं और जैसे-जैसे मृत्यु निकट आती है उनकी जीवंतता बढ़ती जाती है। जब वहां चारों ओर बमों का विस्फोट हो रहा होता है, इधर-से-उधर गोले बरस रहे होते हैं और किसी भी क्षण वह मृत्यु के आगोश में जा सकते हैं, तब उस क्षण वे लोग परमानंद का अनुभव करते हैं। उस समय वे जीवन के साथ एक गहनतम संसर्ग में होते हैं। जब मृत्यु तुम्हारा चुंबन लेती है, वह जीवन का ही चुंबन है। इसी वजह से मनुष्य में दुःसाहस करने और जोखिम उठाने के प्रति इतना अधिक आकर्षण है। यदि तुम भयभीत हो तो तुम जीवन में उन्नति न कर सकोगे।
मैं तुम्हें बताता हूं कि ध्यान करना सबसे बड़ा जोखिम उठाना है और उसमें असाधारण साहस थामना होता है क्योंकि युद्ध क्षेत्र में भी तुम मृत्यु के उतने निकट नहीं होते हो। यदि तुम मृत्यु के निकट होने का अनुभव भी करते हो तो वह केवल शारीरिक मृत्यु होगी। भौतिक शरीर की मृत्यु का अर्थ है:एक छिछली मृत्यु, शरीर के खोल की मृत्यु। तुम नहीं, बल्कि तुम्हारा घर मृत्यु के निकट है। तुम नहीं, तुम्हारा शरणस्थल नष्ट होने जा रहा है। लेकिन ध्यान में "तुम" मिटने जा रहे हो, न केवल घर बल्कि मेजबान ही, न केवल शरणस्थल ही बल्कि शरणदाता ही मिटने जा रहा है। अहंकार को मिट जाना है। इसलिए महानतम योद्धाओं की ध्यान में हमेशा दिलचस्पी होती है।
मैं तुमसे एक घटना के बारे में कहना चाहूंगा, जो भारत में घटित हुई और वही जापान में भी घटी है तथा वह किसी भी ऐसे देश में घटित होगी, जो योद्धाओं को जन्म देता है। भारत के लगभग सभी महान ध्यानी पुरूष क्षत्रिय थे, योद्धा थे, वे ब्राह्मण नहीं थे। यह अजीब प्रतीत होता है। महान ध्यानी तो ब्राह्मणों को होना चाहिए था। वे वेदों, उपनिषदों और गीता पर टीकाएं और भाष्य लिखते रहे हैं। वे आत्मा-परमात्मा से संबंधित आध्यात्मिक रहस्यों का सृजन करते रहे, वे अब तक के विश्व के महानतम पंडित और तत्वज्ञानी हैं। जहां तक मौखिक अभिव्यक्ति एवं तर्कज्ञान का संबंध है, विश्व में कहीं भी कोई भी ब्राह्मणों की तुलना नहीं कर सकता। वे अभिव्यक्ति में बहुत सूक्ष्म हैं, लेकिन वे महान ध्यानी नहीं हैं।
बुद्ध एक महान ध्यानी हैं, वह एक क्षत्रिय हैं, योद्धा हैं। महावीर एक महानतम ध्यानी हैं और वह भी एक क्षत्रिय योद्धा हैं, वे भी ब्राह्मण नहीं हैं। जैनों के सभी चौबीस तीर्थंकर योद्धा थे। यह अद्भुत प्रतीत होता है, ऐसा क्यों? जापान में समुराई योद्धा होते हैं, जो विश्व के महान और असाधारण योद्धाओं में गिने जाते हैं। समुराई होना एक योद्धा बनने का सर्वोच्च शिखर और अंतिम संभावना है। प्रत्येक क्षण एक समुराई मरने के लिए तैयार है। वह किसी छोटी सी तुच्छ बात पर भी मरने को तैयार है, जिसकी तुम कल्पना ही नहीं कर सकते।

मैंने तीन सौ वर्ष पूर्व की एक सत्य ऐतिहासिक घटना के बारे में सुना है। एक महान समुराई योद्धा ने एक बार बहुत अधिक मदिरापान कर लिया। तभी अचानक किसी प्रयोजन से उसे सम्राट द्वारा बुलाया गया, इसलिए वह सम्राट के पास गया। उसने बहुत सजग रहने का प्रयास किया, लेकिन वह नशे में चूर था। नशे में वह मूलभूत शिष्टाचार और औपचारिकता को भूल गया, वह भूल गया कि उसे सम्राट के सामने जाकर कैसे और कितना झुकना चाहिए। निश्चित ही, वह झुका, पर वह ठीक वैसा ही नहीं था, जैसा कि होना चाहिए था।
अगली सुबह जब उसका नशा उतरा, वह शांत हुआ, तो उसने तुरंत ही स्वयं को"हाराकीरी" द्वारा समाप्त कर दिया। "हाराकीरी" शब्द का संबंध समुराई योद्धाओं से है। जिस क्षण वह यह अनुभव करते हैं कि कहीं कुछ छोटी सी भी भूल हो गई है... जैसे यह केवल एक सामान्य शिष्टाचार की छोटी-सी भूल थी और सम्राट ने उसे कुछ भी नहीं कहा था, वह एक ऐसा महान वीर योद्धा था कि सम्राट ने उस छोटी सी भूल का तनिक मात्र भी उल्लेख नहीं किया, लेकिन उसने स्वयं आत्मघात अथवा "हाराकीरी" कर ली। अगले दिन जब सम्राट को पता चला कि उस योद्धा ने "हाराकीरी" कर ली है, तो वह सम्राट बहुत रोया। इस योद्धा के तीन सौ शिष्य थे। जैसे ही उन शिष्यों ने यह समाचार सुना, उन सभी लोगों ने तुरंत "हाराकीरी" कर अपने को मार डाला, क्योंकि यदि उनके गुरु से अपराध हो गया है, तो उसके द्वारा किए गए कृत्य का शिष्यों को भी अनुसरण करना चाहिए। तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा और यह अविश्वसनीय प्रतीत होता है कि यह छोटी-सी चीज़ शिष्य परंपरा में सौ वर्ष तक निरंतर चलती रही क्योंकि उन शिष्यों के भी शिष्य और यदि गुरु ने... फिर यह कभी नहीं सुना गया कि कोई समुराई मदिरा पीकर सम्राट के सम्मुख गया हो और कुछ गलत कार्य किया हो। बहुत ही तुच्छ बातों के लिए भी मृत्यु इतनी अधिक सरल प्रतीत होती हो और वह भी अपने ही हाथों द्वारा। इन्हीं समुराई लोगों से झेन सृजित हुआ, जो संसार में ध्यान की सबसे समृद्ध परंपरा है। ये समुराई लोग बहुत गहन ध्यान करते थे।
यह मेरी अनुभूति है कि यदि तुम मरने के लिए तैयार नहीं हो तो तुम ध्यान करने के लिए भी तैयार नहीं हो सकते। एक गहरे अर्थ में युद्ध और ध्यान समानार्थक हैं। जहां किसी भी पल तुम्हारे अस्तित्व के मिटने की संभावना होती है। उस पल में तुम्हारे जीवन के दीये की ज्योति अपनी समग्रता में प्रज्ज्वलित हो उठती है। तुम्हारे अंदर पूर्ण त्वरा का ज्वार आ जाता है, एक प्रचंडता आ जाती है।
दो विरोध पहले ही से मिल रहे हैं। तुम्हें उन्हें मिलाने का प्रयास करने की और उनका कोई संश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है। वे पहले ही से मिल रहे हैं और वे एक गहन समस्वरता में हैं। समस्या यह है कि तुम ही उनके साथ लयबद्ध नहीं हो।
इसलिए जब तुम स्वस्थ होते हो और शारीरिक, भावनात्मक और आत्मिक रूप से प्रसन्नता का अनुभव करते हो, तो इस प्रसन्नता के अनुभव को अपनी रुग्णता और अस्वस्थता में भी साथ लेकर जाओ। मैं तुमसे कहता हूं कि प्रसन्नता की यह अनुभूति स्वास्थ्य पर निर्भर नहीं है, शरीर पर निर्भर नहीं है। भावनात्मक और आत्मिक प्रसन्नता का अनुभव एक आंतरिक अनुभूति है। तुम इसे रूग्णता में भी बनाए रख सकते हो। रमण महर्षि मर रहे थे। उनके गले में कैंसर था और उनके लिए बातचीत करना लगभग असंभव था, उनके लिए कोई भी चीज़ खाना असंभव था। लेकिन उनके अंतिम दिनों में जो लोग भी उनके चारों ओर मौजूद थे, वे आश्चर्य कर रहे थे कि महर्षि रमण बहुत अधिक प्रसन्न थे। उनके नेत्रों से एक सूक्ष्म भावात्मक और आत्मिक प्रसन्नता छलक रही थी। उनके शरीर की दशा बिल्कुल जर्जर थी और पूरा शरीर जीर्ण-शीर्ण हो चुका था, लेकिन रमण स्वयं, भीतर से उतने ही स्वस्थ और प्रसन्न थे जैसे वह हमेशा रहते थे।
एक बार किसी सदगुरु की मृत्यु हो रही थी। वे बहुत वृद्ध थे, शायद लगभग
सौ वर्ष की आयु के थे। उनके शिष्य वहां मौजूद थे, लेकिन वे रो नहीं सकते थे, क्योंकि वह सदगुरु स्वयं हंस रहे थे। वे लोग रो नहीं सकते थे, क्योंकि वह बहुत मूर्खता प्रतीत होती। वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न था और ठीक एक बच्चे की भांति चहक रहा था और अपनी अंतिम श्वास का आनंद ले रहा था। वे लोग केवल तभी रो सकते थे, जब वह मर जाता।

मृत्यु के पश्चात किसी व्यक्ति ने पूछा:"जब वह जीवित थे, उनके अंतिम क्षणों में तुम क्यों नहीं रो रहे थे"
उन लोगों ने कहा:"वह बहुत मूर्खतापूर्ण दिखाई देता। उनके चेहरे की ओर देखते हुए, उनकी आंखों की ओर देखते हुए ऐसा प्रतीत होता था मानो वह अपनी आत्मा के उच्चतम शिखरों को छू रहे था, मृत्यु तो जैसे केवल दिव्यता में प्रवेश का एक द्वार थी, मानो वह मर नहीं रहे थे वस्तुतः वह पुनः जन्म ले रहे थे। वह एक वृद्ध व्यक्ति नहीं थे, यदि तुमने उनकी आंखों में झांककर देखा था तो वह एक बच्चे की भांति थे और केवल उनका शरीर ही वृद्ध था।" आत्मिक प्रसन्नता को कहीं भी ले जाया जा सकता है। यदि तुम गंभीर रूप
से रुग्ण भी हो, तब भी तुम अपनी आंतरिक और आत्मिक प्रसन्नता में बने रह सकते हो। तुम दूसरी चीज़ भी जानते हो कि जब तुम पूर्ण रूप से स्वस्थ हो, तब भी कई बार तुम हृदय और आत्मा के तल पर अप्रसन्न ही बने रहते हो। अतः तुम जानते हो कि यह दूसरी बात भी संभव है। तुम पूर्ण रूप से स्वस्थ हो और तुम दुखी हो। तुम पूर्ण रूप से युवा ओर जीवंत हो, फिर भी जैसे मानो तुम मृत्यु शैय्या पर पड़े हो और किसी तरह से अपने जीवन को एक बोझ की भांति ढो रहे हो। तुम्हारे हृदय पर जैसे एक मुर्दा भार रखा हुआ है। तुम जीवित हो, क्योंकि तुम्हारे पास अन्य कोई भी चुनाव नहीं है। तुम क्या कर सकते हो? तुम जीवित हो, तुम स्वयं को जिंदा पाते हो, इसलिए तुम जिंदगी कोढो रहे हो। लेकिन जीवन तुम्हारे लिए एक आनंदपूर्ण घटना नहीं है, तुम प्रसन्न नहीं हो और जीवन को उत्सव के रूप में नहीं जी रहे हो।
जीवित होना एक महान वरदान है। यहां तक कि एक क्षण के लिए भी जीवित और सचेत बने रहना पर्याप्त है। तुम्हें एक लंबा जीवन मिला है और ऐसे ही अनेक जन्म दिए गए हैं परंतु तुम उसके लिए कृतज्ञ नहीं हो, क्योंकि जब तक तुम जीवन को उत्सव और आनंद के साथ नहीं जीते, तब तक कैसे तुम उस के प्रतिधन्यवाद एवं कृतज्ञता का भाव रख सकते हो? तुम पूर्ण रूप से युवा और जीवंत हो, लेकिन अपने भीतर अत्यंत दुखढोते हुए चल रहे हो।
मरते समय भी जो व्यक्ति यह जानता है कि वह अपनी आंतरिक प्रसन्नता अपने साथ लिए चलेगा, केवल ऐसे व्यक्ति के अंतरतम से ही, उसके भीतरी केंद्र से ही उन्मुक्त हास्य आएगा।
जीवन के विपरीत धु्रवों को मिलाने का प्रयास मत करो। केवल तुम अखण्ड बने रहो। अखण्ड बने रहने से मेरा आशय यह है कि जो भी तुम एकांत में अनुभव करते हो उसे संसार या बाज़ार में भी साथ लेकर चलना सीखो। जो भी तुम ध्यान के क्षणों में अनुभव करते हो उस अनुभव कोप्रेम के क्षणों में भी ले जाओ क्योंकि प्रेम में दूसरा मौजूद होगा और ध्यान में केवल तुम ही मौजूद थे। देर से ही सही, पर कभी न कभी, सबकुछ स्वतः ही व्यवस्थित हो जाएगा। तुम्हें व्यवस्थित करने की आवश्यकता नहीं है, तुम केवल स्वयं को पूरी तरह से व्यवस्थित कर लो। तुम स्वयं अपने को व्यवस्थित करो और वस्तुएं स्वतः ही क्रमबद्ध हो जाएंगी। वे तुम्हारा अनुसरण करेंगी। एक बार तुम व्यवस्थित हो जाते हो तो पूरा संसार व्यवस्थित हो जाता है। एक बार तुम लयबद्ध होजाते हो तो पूरा संसार लयबद्ध हो जाता है। एक बार भीतरी तारतम्यता स्थापित हो जाए तो फिर संसार में कोई भी अड़चन नहीं होती है। मेरा ज़ोर, मेरा पूरा बल इस बात पर है कि तुम व्यवस्थित हो जाओ। विरोधी ध्रुवों में किसी लयबद्धता को खोजने का प्रयास मत करो। तुम उसे कभी खोज ही नहीं सकते और यदि तुम बहुत अधिक प्रयास करते हो, तो तुम अव्यवस्थित और परेशान हो जाओगे, क्योंकि वह असंभव है।
एक और बात जो तुमने पूछी है कि जब तक तुम मेरे साथ रहते हो तो तुम भावात्मक और आत्मिक रूप से प्रसन्नता का अनुभव करते हो, तुम मौन का अनुभव करते हो और तुम पाते हो कि सब कुछ संभव है। तुम्हारा यह विचार भी एक निर्भरता बन सकता है। जब तुम मेरे साथ नहीं होते हो, तब सभी चीज़ें असंभव प्रतीत होती हैं तथा उनमें कोई तादात्म्य नहीं बन पाता है। तुम भ्रमित हो जाते हो।
मेरे साथ होते हुए तुम मौन का अनुभव करते हो, क्योंकि मेरे पास तुम नगण्य हो जाते हो, शून्य हो जात हो। जब तुम मेरे साथ होते हो, मेरे साथ बैठते हो तो कुछ क्षणों के लिए तुम अहंकार शून्य हो जाते हो। उतने समय के

लिए जैसे तुम वहां होते ही नहीं हो और तुम पूरी तरह से मेरे साथ हो जाते हो। अवरोध टूट जाता है, दीवार गिर जाती है। उस क्षण में मैं तुम्हारे अंदर प्रवाहित हो जाता हूं। तुम्हें प्रत्येक चीज़ संभव प्रतीत होती है। मुझसे दूर होने पर तुम फिर से दीवारें खड़ी कर लेते हो। तब चीज़े उतनी अधिक सुंदर नहीं होती हैं। इसलिए केवल यह समझने का प्रयास करो कि मेरे साथ रहते हुए तुम्हें क्या घटित हो रहा है? और जब तुम मेरे साथ नहीं हो, तब भी उस अनुभव को हर जगह साथ लेकर चलो। ऐसा क्या घटित होता है? जब सब संभव प्रतीत होता है, यहां तक कि बुद्धत्व की घटना भी संभव प्रतीत होती है तो आखिर ऐसा क्या घट रहा है? वास्तव में उस समय तुम वहां नहीं हो। तुम्हारे बिना... तुम्हारे अहंकार की अनुपस्थिति में सब कुछ संभव है। समस्या तुम ही हो। मुझे सुनते हुए तुम बाकी सबकुछ भूल जाते हो। जब तुम भूल जाते हो तो तुम वहां नहीं होक्योंकिं तुम्हारा अहंकार केवल एक मानसिक चीज़ है। तुम्हें प्रत्येक क्षण उसे सृजित करते रहना पड़ता है। यह लगातार किसी साइकिल के पैडल चलाने जैसा है। तुम्हें पैडल चलाते चले जाना है, यदि तुम एक क्षण के लिए भी रुकते हो तो साइकिल भी रूक जाती है। जब एक वेग होता है, थोड़ी गति होती है तो साइकिल कुछ दूर तक चलेगी पर बाद में वह रुक जाती है। इसलिए पैडल चलाना लगातार जारी रखना पड़ता है। यदि तुम चाहते हो कि साइकिल चलती रहे तो तुम्हें पैडल चलाए रखना पड़ता है। यह एक निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है, साइकिल का चलते रहना स्थाई नहीं है, उसकी गति प्रति क्षण सृजित करनी होती है। इसी तरह प्रत्येक क्षण अहंकार को भी पैडल मारकर गतिशील बनाए रखना पड़ता है और तुम पैडल चलाते रहते हो, अपने अहंकार को गतिशील करने के लिए।
जब तुम यहां मेरे पास होते हो तो यह पैडल चलना रुक जाता है। तुम पूरी तरह मेरे साथ हो जाते हो, मुझ में दिलचस्पी लेने लगते हो। तुम्हारा संपूर्ण ध्यान जो अहंकार के पैडल पर था, अब वह छिन्न-भिन्न होने लगता है। यह ठीक एक छोटे बच्चे के साइकिल चलाने जैसा है। वह प्रत्येक चीज़ के बाबत उत्सुक होता है। वह वृक्ष पर बैठे हुए अनेक तोतों को भी देखते हुए चलता है और साइकिल से गिर पड़ता है, क्योंकि उसका ध्यान कहीं और गतिशील हो गया। वह पैडल चलाना बंद कर देता है, वह भूल जाता है कि वह साइकिल पर है और उसे पैडल चलाना जारी रखना है।
केवल एक ही कारण से, प्रारंभ में छोटे बच्चे साइकिल चलाने में कठिनाई
का अनुभव करते हैं, वे प्रत्येक चीज़ के बारे में बहुत उत्सुक होते हैं। कोई भी देश बच्चों को वाहन चलाने के लाइसेंस की अनुमति नहीं देता है और केवल इसलिए ही नहीं देता है क्योंकि वे हर दिशा में उत्सुक होते हैं। वे अचानक भूल जाएंगे, किसी भी क्षण उनका पूरा ध्यान कहीं और जा सकता है और वे भूल जाएंगे कि वे वाहन चला रहे हैं। वे भूल जाएंगे कि उनके उनके हाथों में एक खतरनाक उपकरण है और उनके तथा दूसरों के जीवन को खतरा हो सकता है। वे पूर्णतः केंद्रित नहीं होते हैं और उनकी चेतना प्रत्येक जगह प्रवाहित हो रही है।
जब तुम यहां होते हो, तुम्हारा मेरे साथ एक घनिष्ठ संबंध स्थापित हो जाता है। तुम मेरे साथ पूर्णता से संयुक्त हो जाते हो और तुम पैडल चलाना भूल जाते हो। कुछ विशिष्ट क्षणों के लिए जब तुम स्वयं को पूरी तरह भूल जाते हो तो तुम पर मौन उतरता है, एक परमानंद उतरता है और प्रत्येक चीज़ संभव प्रतीत होती है। तुम आलौकिक हो जाते हो, इसी कारण प्रत्येक चीज़ संभव प्रतीत होती है। केवल परमात्मा के लिए ही प्रत्येक चीज़ संभव है। परमात्मा के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। उस क्षण में तुम परमात्मा के समान ही हो जाते हो।
और पुनः मुझसे दूर जाकर, तुम वापिस वैसे ही हो जाते हो, तुम्हारा मन सोचना शुरू कर देता है, तुम पैडल चलाना प्रारंभ कर देते हो। तुम अधिक पैडल मारते हो, क्योंकि कुछ देर तक तुमने पैडल नहीं चलाया था। अब उस कमी को पूरा करने के लिए तुम पहले से कहीं अधिक पैडल चलाते हो। सघन अहंकार वापस लौट आता है। तुम अपनी आत्मा के साथ संपर्क खो देते हो।
मेरे साथ होते हुए वास्तव में जो हो रहा है, वह यह है कि तुम्हारा अपनी आत्मा के साथ संपर्क घटित हो रहा है। तब वहां अहंकार नहीं है। तुम गहनता

से स्वयं के साथ ही हो और तुम्हारा अंतर्स्रोत तुम्हें उपलब्ध है, वहां से ऊर्जा प्रवाहित हो रही है और वहां कोई भी अवरोध नहीं है।
मुझसे दूर होते ही, सारे अवरोध वापस लौट आते हैं और पुरानी आदतें भी वापस लौट आती हैं। तब सब चीज़ें उतनी अच्छी प्रतीत नहीं होतीं। तब मेरे साथ होने की पूरी घटना एक सपने के समान प्रतीत होती है। तुम उसका विश्वास ही नहीं कर पाते हो। वह एक चमत्कार के समान प्रतीत होता है। तुम सोचते हो कि हो सकता है शायद मैंने कुछ किया होगा। मैं कुछ भी नहीं करता हूं। कोई भी व्यक्ति तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर सकता है। ऐसा घटित होता है, क्योंकि तुम उसे घटित होने की अनुमति देते हो।
जब तुम मुझसे दूर जाओ तो भी उस अनुभूति को अपने साथ लिए हुए चलो। जो कुछ तुम यहां अनुभव कर रहे हो, उसे अपने साथ हमेशा लेकर चलो। तब मेरी कम से कम आवश्यकता पड़ेगी अन्यथा मैं एक नशीले पदार्थ की तरह बन सकता हूं, तब प्रत्येक सुबह जागते ही तुम मेरे लिए व्याकुल होना शुरू कर दोगे। तुम शीघ्र ही मेरे पास आने की तैयारी करोगे, भीतर एक गहन प्यास होगी... तब मैं एक नशे की दवा बन सकता हूं। तुम मुझ पर ही आश्रित होते जाओगे। यह सतोरी अथवा बुद्धत्व तक पहुंचने का सही मार्ग नहीं है। यह तरीका ठीक नहीं है। यदि तुम मुझ पर आश्रित हो जाते हो, जैसे कि मैं कोई नशीला पदार्थ हूं... तब मैं विध्वंसक हूं, विनाशकारी हूं। लेकिन यह तुम ही हो, जो मुझे एक नशीली दवा में बदल देते हो।
मेरे निकट, मेरे साथ और मेरी उपस्थिति में तुम जो कुछ भी अनुभव करते हो, उसे सदैव अपने साथ लिए हुए चलो। तुम्हें अनिवार्य रूप से एक ऐसी स्थिति में आना है, तुम्हें निश्चित ही उस बिंदु तक पंहुचना है, जहां मेरे साथ या मेरे बिना भी तुम एक जैसे ही बने रहो। तब मैं एक बंधन नहीं हूं और तब मैं एक सहायता बन सकता हूं। तब मैं तुम्हारे लिए एक स्वतंत्रता हूं और मुझे तुम्हारे लिए एक स्वतंत्रता ही बनना चाहिए। जब मैं कहता हूं कि मुझे तुम्हारे लिए एक स्वतंत्रता ही बनना चाहिए तो इसका अर्थ है कि तुम्हें अनिवार्य रूप से उस स्थिति तक आना है, जहां तुम मुझसे भी मुक्त हो जाओ। यदि मेरे प्रति निरंतर एक निर्भरता बनी रहती है तो तुम मुक्त नहीं हो, इससे कोई सहायता प्राप्त नहीं होगी तथा यह चीज़ों को स्थगित किए जाने जैसा होगा।
एक सच्चा सदगुरु हमेशा अपने शिष्यों को स्वयं से मुक्त करेगा। यही उसका लक्ष्य होता है। मेरे पास आओ और फिर मुझसे दूर भी जाओ लेकिन भीतर के उस अनुभव को साथ ले जाओ, तब तुम समान बने रहते हो। भीतर से समान बने रहकर ही विपरीत धु्रवों के मध्य गतिशील बनो। तब प्रत्येक चीज़ संभव है, क्योंकि तुम ही समस्त ऊर्जाओं के स्रोत हो।
तुम्हारे पास, तुम्हारे भीतर ही जीवन के सब स्रोत हैं। जीवन में जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह उसी समान स्रोत से घटित हो रहा है, जिससे तुम उत्पन्न हुए हो। तुम उससे संबंधित हो और तुम उसके साथ एक हो। यदि पक्षी गीत गाते हुए इतने अधिक प्रसन्न हो सकते हैं तो तुम भी हो सकते हो, क्योंकि वही समान स्रोत उनको गीत गाने की स्वतंत्रता और प्रसन्नता दे रहा है। वही समान स्रोत तुम्हें भी उपलब्ध है, लेकिन किन्हीं कारणों से तुमने अवरोध सृजित कर लिए हैं। यदि वृक्ष इतने अधिक हरे, ताजे, तनाव रहित और जीवंत है तो तुम भी वैसे ही हो सकते हो, क्योंकि वह जीवन रस जो वृक्षों को मिल रहा है, वही तो तुम्हारे पास भी आ रहा है। हो सकता है कि तुम उस रस को भूल गए हो, लेकिन वह सदा ही मौजूद है।
वह सभी कुछ जो जीवन में घटित हुआ है, वह सब कुछ जो तुम्हारे चारों ओर
हो रहा है, यह संपूर्ण रहस्य ही तुम्हारी विरासत है। इस रहस्यमयी विरासत पर अपने अधिकार का दावा करो। तुम्हारे दावे के अभाव में वह विरासत तुम्हारे सामने ही व्यर्थ नष्ट हो रही है, और तुम भीख मांगते चले जा रहे हो। तुम्हारा साम्राज्य चारों तरफफैला हुआ है और वह साम्राज्य तुम्हारी प्रतीक्षा करता हुआ व्यर्थ नष्ट हुआ जा रहा है और तुम भीख मांगे चले जाते हो। उसका दृढ़तापूर्वक दावा करो। यही एक उपाय है जिससे दावा किया जा सकता है:"विपरीत ध्रुवों के मध्य गतिशील होते हुए भी एक समान बने रहो। भगवान कृश्ण भी गीता में यही कहते हैं:"सुख में अथवा दुख में यथावत समान बने

रहो, सफलता में अथवा असफलता में भी एक समान बने रहो।" जो कुछ भी होता है, उसे होने दो-"तुम यथावत बने रहना। तुम्हारा एक समान बने रहना ही तुम्हें एक स्थिरता और पूर्णता प्रदान करेगा।"
एक बात तुमने और पूछी है कि मैं तुमसे कहता हूं, इस संसार का परित्याग नहीं करना है और इसी में पूरी मस्ती तथा आनंद के साथ रहना है। यह कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि संसार में रहते हुए, लोगों के साथ संबंधों में उलझे हुए, सामान्य रूप से कैसे रहा जा सकता है?
हां, मैं तुमसे यही कहता हूं।
पहली बात-संसार का परित्याग करना एक विकृति है, क्योंकि इसका अर्थ है
कि उस उपहार का परित्याग करना, जो अस्तित्व ने तुम्हें प्रदान किया है। जीवन को तुमने निर्मित नहीं किया है, तुम्हारा यहां होना तुम्हारा चुनाव नहीं है। वह एक उपहार है। जीवन का त्याग, यानि तुम अखंड अस्तित्व के विरुद्ध जा रहे हो। किसी भी वस्तु का परित्याग यानि तुम परमात्मा के विरूद्ध हो। यह एक तरह से "नहीं" कहने जैसा है। यही कारण है कि जो परित्याग करते हैं वे अधिक अहंकारी हो जाते हैं। जिस क्षण तुम परित्याग करते हो तो तुम घोषणा करते हो-"मैं जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक बुद्धिमान हूं। मैं इस दिव्य स्रोत की तुलना में, जहां से प्रत्येक वस्तु आती है, कहीं अधिक बुद्धिमान हूं।" जब तुम परित्याग करते हो तो तुम कहते हो-"मैं चुनता हूं।" जब तुम परित्याग करते हो तो तुम अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हो, इससे अहंकार सृजित होता है।
जब मैं कहता हूं कि परित्याग मत करो तो मैं कह रहा हूं कि इच्छा शक्ति
के अधीन मत चलो, एक चुनावकर्ता मत बनो। जो कुछ भी हो रहा है वह तुम्हारे कारण नहीं हो रहा है, इसलिए कुछ भी चुनाव कर पाना तुम्हारे हाथ में नहीं है, तुम कौन होते हो चुनाव करने वाले? जो भी हो रहा है उसे होने दो। तुम क्या कर सकते हो? अधीर और व्याकुल मत बनो।
परित्याग करना ठीक एक पलायन की तरह है। चूंकि तुम्हें चोट लगती है, क्योंकि तुम व्याकुल हो जाते हो, तुम किसी भी चीज़ को छोड़ देते हो। तुम उस दृष्टिकोण का परित्याग नहीं करते जो तुम्हें चोट पहुंचाता है, तुम उस स्थिति को ही त्याग देते हो। तुम घावों से भरे उस हृदय का परित्याग नहीं करते, जिसे कोई भी व्यक्ति चोट पहुंचा सकता है। तुम उस मन का परित्याग नहीं करते जो रुग्ण है और जो हमेशा तुम्हें बाधा पहुंचाने को तैयार है। तुम संसार का परित्याग करते हो, यह अधिक आसान है। तुम पलायन कर हिमालय पर भाग जाते हो, लेकिन जो कुछ भी तुम्हारे अंदर था, वह तुम्हारे साथ ही बना रहेगा। उसमें कुछ भी अंतर नहीं पड़ेगा। यह एक धोखा है।
संपूर्ण, स्थिर, मौन और प्रसन्न बने रहो और संसार में जो भी घट रहा है, उसे स्वीकार करो। तुम परित्याग करने अथवा छोड़ने वाले कौन हो? तुम स्वयं को जहां कहीं भी, जिस भी स्थिति में पाते हो, बस वहां वैसे ही बने रहो। पूर्ण, स्थिर, मौन और प्रसन्न बने रहो। हिमालय पर मत जाओ, हिमालय को अपने अंदर ही सृजित करो। जब मैं कहता हूं कि संसार का परित्याग मत करो तब मेरे कहने का यही अर्थ है कि पहाड़ों पर मत जाओ, बल्कि वहां की शांति और मौन को अपने अंदर सृजित करो। तब तुम जहां भी जाते हो, पहाड़ तुम्हारे साथ ही गतिशील होते रहेंगे।
संबंध जोड़ना सुंदर है, क्योंकि वह एक दर्पण है, लेकिन कुछ मूर्ख लोग
भी हैं, वे दर्पण में अपने चेहरे देखते हैं और उसे कुरूप पाते हैं तो दर्पण को नष्ट कर देते हैं। उनका तर्क एकदम स्पष्ट है कि दर्पण ही उन्हें कुरूप दिखा रहा है, इसलिए दर्पण को तोड़ दो और तब वे सुंदर ही हैं।
संबंध एक दर्पण की तरह होता है। जहां कहीं भी तुम किसी व्यक्ति से संबंधित हो, चाहे पति, पत्नी, मित्र, प्रेमी अथवा शत्रु, एक दर्पण सब जगह है। पत्नी, पति कोप्रतिबिंबित करती है। तुम वहां स्वयं को देख सकते हो और यदि तुम्हें एक कुरूप पत्नी दिखाई देती है तो अपनी पत्नी को छोड़ने का प्रयास मत करो, क्योंकि वह कुरूपता तुम्हारे ही अंदर है। उस कुरूपता को छोड़ो। दर्पण सुंदर है, इस दर्पण के प्रति धन्यवादी बनो।
लेकिन मूर्ख और कायर लोग हमेशा पलायन और परित्याग करते हैं। साहसी और बुद्धिमान लोग हमेशा संबंधों में जीते हैं और उसका उपयोग एक दर्पण की

भांति करते हैं। किसी व्यक्ति के साथ रहते हुए तुम निरंतर चारों ओर प्रतिबिंबित हो रहे हो। प्रत्येक क्षण दूसरा व्यक्ति तुम्हें उघाड़ता है, प्रकट करता है। संबंध जितना अधिक निकटतम होता है, दर्पण में उतना ही अधिक स्पष्ट दिखाई देता है और संबंध में जितनी अधिक दूरी होती है, दर्पण में उतनी ही कम स्पष्टता होती है। इसी कारण परित्याग करना वास्तव में प्रेम का, पत्नी अथवा पति का परित्याग करना बन जाता है। वह संबंध तोड़ने के लिए एक आधार बन जाता है, क्योंकि एक व्यक्ति के साथ एक ही घर में चौबीसों घंटे रहना, चौबीस घंटे का संबंध बने रहना...
जब एक पत्नी बात नहीं कर रही है, वह अपने पति से कुछ भी नहीं कह रही है,
तो वह प्रतिबिंबित कर रही है। जब एक पति केवल अपना समाचार पत्र पढ़ रहा है, वह प्रतिबिंबित कर रहा है। जिस ढंग से वह समाचार पत्र पकड़े हुए है, पत्नी जानती है कि समाचार पत्र केवल एक दीवार सृजित कर रहा है। पति उस दीवार के पीछे स्वयं को छिपा रहा है। हो सकता है वह स्वयं कोधोखा दे रहा है कि वह समाचार पत्र पढ़ रहा है लेकिन हो सकता है कि वह एक ही समाचार को दूसरी और तीसरी बार पढ़ रहा हो। संभव है कि वह बिल्कुल पढ़ ही न रहा हो, बल्कि केवल यांत्रिक रूप से शब्दों को देख रहा हो। लेकिन जिस ढंग से वह समाचार पत्र के पीछे स्वयं को छिपा रहा है, वह एक दर्पण बन जाता है। वह पत्नी से बच रहा है, वह पत्नी के साथ ऊब चुका है, वह अपनी पत्नी की और अधिक उपस्थिति नहीं चाहता है, वह उसकी ओर देखना नहीं चाहता है। उसे पत्नी की उपस्थिति मात्र ही बहुत अधिक बोझिल प्रतीत होती है। वह किसी तरह से उससे दूर बना रहना चाहता है।
जब तुम प्रेम में होते हो तो भाषा की आवश्यकता नहीं होती। मुद्राएं...
और यहां तक कि मौन ही बातचीत बन जाता है, तब मौन ही सुवक्ता हो जाता है। निरंतर प्रतिबिंबित होना जारी रहता है और प्रत्येक व्यक्ति कुरूप लगता है, क्योंकि सुंदरता कुछ ऐसी चीज़ है, जो केवल धीमे-धीमे तभी प्रकट होती है, जब तुम्हारा आंतरिक अस्तित्व प्रकट होता है। अहंकार सदा कुरूप होता है, इसलिए जब अहंकार नहीं होता है, केवल तब ही कोई व्यक्ति सुंदर लगता है। वह अहंकार ही है जो संबंधों में प्रतिबिंबित हो रहा है।
जो भी तुम्हें निरंतर यह स्मरण दिलाता है कि तुम कुरूप हो, वह शत्रु
बन जाता है। तुम उसका परित्याग करना चाहते हो। लेकिन क्या दर्पण का परित्याग करना एक बुद्धिमानी है? यह मूर्खतापूर्ण है। यहां तक कि जब कोई भी व्यक्ति तुम्हें प्रतिबिंबित नहीं करता है, तो तुम वैसे ही बने रहोगे। जब कोई भी व्यक्ति तुम्हें स्मरण नहीं दिलाता है कि तुम गलत हो तो तुम एक ही दिशा में चलते रहोगे। दर्पण सुंदर है और अच्छा है। वह तुम्हारी सहायता करता है और यदि तुम सजग हो तो तुम धीमे-धीमे अहंकार को छोड़ सकते हो। तब दूसरे व्यक्ति के दर्पण में तुम्हारी सुंदर आत्मा प्रकट होगी।
एक बार तुम शून्य हो जाओ, एक श्वेत बादल हो जाओ, तो संसार की सभी झीलें तुम्हारी धवलता और शुभ्रता कोप्रकाशित करेंगी। तब संसार की समस्त झीलें तुम्हारे तथाता स्वरूप को, तुम्हारे मस्तमौला स्वभाव कोप्रदर्शित करेंगी। इसलिए मैं कहता हूं कि केवल एक ही चीज़ त्यागने योग्य है और वह है परित्याग, वह है अस्वीकार।
वहां रहो, जहां परमात्मा अथवा अखंड अस्तित्व है और यदि तुम परमात्मा शब्द को पसंद नहीं करते हो तो कोई भी समस्या नहीं है, वह केवल एक शब्द है। इसलिए परमात्मा अथवा अखंड अस्तित्व, जहां कहीं भी तुम पाते हो कि अखंड अस्तित्व में तुम थिर हो गए हो, वहीं बने रहो। अखंड अस्तित्व कभी भी किसी व्यक्ति को परित्याग करने हेतु नियुक्त नहीं करता है, कभी भी नहीं। वह सदा तुम्हें किसी न किसी संबंध में ले जाता हैक्योंकि कोई भी व्यक्ति अकेला नहीं जन्मा है और अकेले में जीवित भी नहीं रह सकता है, ऐसा हो ही नहीं सकता। कम से कम माता-पिता की आवश्यकता होगी, एक समाज और एक परिवार का होना आवश्यक है। अखंड अस्तित्व हमेशा तुम्हें किसी न किसी संबंध में ले जाता है। इसी वजह से मैं कहता हूं कि परित्याग करना अखंड अस्तित्व के विरुद्ध होने जैसा है।
गुरजिएफ अंतर्दृष्टि का धनी है। उसकी अंतर्दृष्टि कहती है कि सभी धार्मिक लोग परमात्मा के विरुद्ध हैं। यह बात अजीब लगती है, लेकिन सत्य

है। मैं पूरी तरह से इसका समर्थन करता हूं, वह ठीक कहता है। सभी धार्मिक लोग परमात्मा के विरोध में हैं, क्योंकि वे स्वयं को न्यायाधीशों की भांति स्थापित कर निर्णय लेते हैं कि यह गलत है अथवा यह ठीक है, यह होना चाहिए अथवा यह नहीं होना चाहिए और किस व्यक्ति को संसार से दूर भाग जाना चाहिए। परमात्मा तुम्हें संसार में भेजता है और तथाकथित धार्मिक उपदेशक तुम्हें संसार का परित्याग करना सिखाते हैं।
मैं उस तरह का धार्मिक व्यक्ति नहीं हूं। मैं परमात्मा और अखंड अस्तित्व के साथ हूं। वह जहां कहीं भी तुम्हें ले जाता है, एक श्वेत बादल की तरह गतिशील होते हुए उसके साथ जाओ और स्वयं को पूर्ण रूप से अखंड अस्तित्व को सौंप दो। केवल एक बात का स्मरण बना रहे और वह हैं विरोधी ध्रुव- मौन, संतुलन, समता और पूर्णता इन सब के बीच विरोधों का भी स्वीकार बना रहे।
तुम कहते हो कि यह कठिन होगा। हां, यह कठिन होगा। यदि तुम बहुत परम आनंदित हो तो एक रूग्ण परिवार में रहना कठिन होगा और लगभग प्रत्येक परिवार रूग्ण है। वहां रहना ऐसा ही होगा जैसे तुम्हें एक पागलखाने में रहने के लिए बाध्य किया जा रहा हो, यह कठिन होगा, क्योंकि वहां प्रत्येक व्यक्ति ही पागल होगा।
इसलिए तुम क्या कर सकते हो? यदि तुम एक पागलखाने में फेंक दिए जाते होऔर तुम स्वयं पागल नहीं हो तथा वहांप्रत्येक अन्य व्यक्ति पागल है, तो तुम क्या करोगे? यदि तुम वास्तव में पागल नहीं हो तो तुम पागल होने का अभिनय करोगे। वहां रहने का केवल यह ही बुद्धिमत्तापूर्ण उपाय है, इससे कोई भी व्यक्ति यह नहीं जान पाता है कि तुम समझदार हो, क्योंकि यदि वे यह जान लेते हैं, तो वे मुसीबत उत्पन्न करेंगे। एक पागलखाने में वास्तव में एक बुद्धिमान व्यक्ति किसी भी अन्य पागल व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक पागल होने का अभिनय करेगा। वहां सुरक्षा से रहने का केवल यह एक ही ढंग है। इसलिए इस जीवन में, जहां प्रत्येक व्यक्ति पागल है, तुम क्या कर सकते हो? यह पूरा ग्रह ही एक बहुत बड़ा पागलखाना है, प्रत्येक व्यक्ति असंवेदनशील, असंतुलित और रुग्ण है, आखिर तुम क्या कर सकते हो? अभिनय करो... जब भी तुम्हें जरूरत लगे, अभिनय करो। अनावश्यक रूप से अपने लिए कठिनाई उत्पन्न करने का प्रयास मत करो। जब भी जरूरत पड़े तो बस अभिनय करो और उस अभिनय का आनंद भी लो। पागल लोगों के साथ स्वयं भी पागल होने का अभिनय करते हुए आनंदपूर्ण बनकर रहो। मेरे कहने का क्या अर्थ है? मेरा अर्थ है कि यदि पास-पड़ोस में कोई व्यक्ति मर जाता है, तो तुम क्या करोगे? क्या वहां परम आनंद से भर जाओगे? तब तुम्हारी पिटाई हो जाएगी। वहां रोने, चीखने और चिल्लाने का सुंदर अभिनय करो, पूरी दक्षता से करो, क्योंकि जहां मृत्यु को स्वीकार नहीं किया जाता है, जहां मृत्यु एक बुराई है, उस रुग्ण स्थिति में, उस रूग्ण समाज में इस अभिनय के अलावा किया भी क्या जा सकता है? किसी भी अन्य व्यक्ति के लिए कोई कठिनाई सृजित मत करो।
यदि तुम बुद्धिमान हो तो अभिनय करो और इतनी सुंदरता से अभिनय करो कि कोई भी व्यक्ति तुम्हारी तुलना में रुदन न कर पाए, उसका आनंद लो। वह तुम्हारे भीतर की बात है उसे आनंदपूर्ण बनाओ। लेकिन बाहर के उन लोगों के लिए जो तुम्हारे चारों ओर एकत्रित हैं, अपने अभिनय को सुंदरता से करो। संसार के सर्वश्रेष्ठ अभिनेता बनो। जब तुम एक अभिनेता हो तो तुम अपने अंदर क्षुब्ध और व्याकुल नहीं हो, क्योंकि तब तुम जानते हो कि यह केवल एक अभिनय है। यह पूरा जीवन ही एक महान मनोविक्षिप्त नाटक की तरह है। यहां एक अभिनेता बनो और अपने भीतर अपनी निरहंकारपूर्ण परमानंदस्थिति में मग्न भी बने रहो।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
बारहवां प्रवचन

समग्र बनो

पहला प्रश्नः
ओशो! आपने सदगुरु के प्रति पूर्ण समर्पण के बारे में हमें बताया, लेकिन निर्देशों का शब्दश: पालन न करने के लिएहमारा मन प्रायः कई कारण ढूंढ लेता है। हम लोग इस तरह की बातें कहने लगते हैं कि सदगुरु आज की व्यावहारिक परिस्थितियों को नहीं समझ सकते हैं, वे पश्चिमी देशों के हालात से परिचित नहीं हैं।
क्या हमें सदगुरु की प्रत्येक बात का अक्षरश: अनुसरण करना चाहिए? अथवा कभी-कभी किसी विशेष समय में अपने विवेक का भी प्रयोग करना चाहिए?

तुम्हें या तो अक्षरश: पूर्ण अनुसरण करना चाहिए अथवा बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए। कोई भी समझौता नहीं होना चाहिए, क्योंकि आधे-अधूरे हृदय से की गई कोई भी चीज़ केवल व्यर्थ ही नहीं होती, बल्कि हानिकारक भी होती है। आधे-अधूरे हृदय से की गई कोई भी चीज़ तुम्हें विभाजित कर देती है। यह विभाजन सबसे बड़ी हानि है। तुम्हें अविभाजित इकाई बने रहना चाहिए।
इसलिए या तो पूर्ण रूप से समर्पण करो, तब तुम्हारी तरफ से कुछ भी सोचने की कोई आवश्यकता नहीं है, केवल अंधानुसरण करो। मैं "अंधानुसरण" शब्द पर ज़ोर दे रहा हूं, जैसे मानो तुम्हारे पास अपनी आंखे ही नहीं हैं। कोई ऐसा व्यक्ति जिसके पास आंखें हैं, वह तुम्हारा नेतृत्व कर रहा है। तब तुम एक अविभाजित इकाई बन जाओगे। ऐसे में अविभाजित और पूर्ण होकर तुम विकसित होवोगे।
अथवा यदि तुम अनुभव करते हो कि यह असंभव है और नहीं किया जा सकता, तो बिल्कुल भी अनुसरण मत करो। तब तुम पूर्ण रूप से केवल स्वयं का अनुसरण करो। ऐसे में भी तुम अविभाजित बने रहोगे। अविभाजित बने रहना ही लक्ष्य है, यही उद्देश्य है। इसलिए दोनों ही विधियां कार्य करेंगी और अंतिम परिणाम समान होगा। यदि तुम बिना सदगुरु के अकेले चल सकते हो, यदि तुम अपनी चेतना का अनुसरण कर सकते हो, चेतना के अनुसार गमन कर सकते हो तो वह एक ही बात है और परिणाम समान होगा, इसलिए यह तुम पर निर्भर करता है।
लेकिन मन हमेशा कहता है:"दोनों ही करो।" मन कहता है कि सदगुरु का अनुसरण करो, लेकिनसोच-विचार करो और केवल उन बातों का अनुसरण करो, जिन्हें तुम ठीक समझते हो। परंतु तब अनुसरण कहां है? तब कहां है समर्पण? यदि तुम न्यायाधीश हो और निर्णय भी तुम ही लोगे कि किस बात का अनुसरण करना है और किसका अनुसरण नहीं करना है, तब समर्पण कहां है, तब आस्था कहां है? इसलिए तब अच्छा यही है कि तुम अपनी चेतना का अनुसरण करो, लेकिन धोखा मत दो, कम-से-कम स्वयं के साथ कोई भी धोखा नहीं होना चाहिए। अन्यथा तुम स्वयं का ही अनुसरण किए चले जाते हो और सोचते हो कि तुम एक सदगुरु का अनुसरण कर रहे हो।
यदि तुम ही निर्णायक हो, यदि तुम ही चयनकर्ता हो, यदि तुम्हें ही तथ्यों को छांटना है और अपनी इच्छानुसार स्वीकार करना है, तब तुम स्वयं अपना ही अनुसरण कर रहे हो। लेकिन तुम अपने चारों ओर यह छवि निर्मित कर सकते हो और तुम स्वयं को यह धोखा दे सकते हो कि तुम सदगुरु का अनुसरण कर रहे हो। ऐसे में कुछ भी परिणाम नहीं आएगा। तुम विकसित नहीं हो पाओगे, क्योंकि स्वयं कोधोखे में रखने के कारण तुम्हारा कोई भी विकास नहीं हो सकता और तुम अधिक से अधिक भ्रमित हो जाओगे।
यदि तुम्हें निर्णय लेना है कि क्या किया जाए और क्या न किया जाए, यदि तुम्हें अपने सदगुरु के निर्देशों में से भी चुनाव करना है तो तुम एक उपद्रव और अव्यवस्था उत्पन्न करोगे, क्योंकि जब कभी भी एक सदगुरु तुम्हें मार्गदर्शन देता है, तो उसके मार्ग-निर्देशन में एक मूलभूत एकता होती है। प्रत्येक निर्देशएक दूसरे निर्देश से संबंधित होता है। सदगुरु के निर्देश अपने आप में सघनता और समग्रता से पूर्ण होते हैं। तुम उनमें से आधा छोड़ नहीं सकते और आधे का अनुसरण नहीं कर सकते हो। यदि तुम ऐसा करते हो

तो तुम नष्ट हो जाओगे, तूफान में फंसे किसी जलयान की भांति बर्बाद हो जाओगे। सदगुरु के निर्देशों में से यदि तुमने लेशमात्र भी छोड़ दिया तो सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाता है। तुम नहीं जानते कि सब किस तरह से परस्पर संबंधित है।
इसलिए मेरा यह सुझाव है कि एक अविभाजित इकाई बनकर रहो, निर्णय लो। यदि तुम्हें निर्णय लेना है तो समग्रता से निर्णय लो कि मैं स्वयं का ही अनुसरण करूंगा। तब समर्पण मत करो, उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं है।
यही बात कृष्णमूर्ति निरंतर चालीस पचास वर्षों से कहते आ रहे हैं :"अनुसरण मत करो।" लोग किसी भी व्यक्ति का अनुसरण किए बिना भी पहुंच सकते हैं। लेकिन यह मार्ग बहुत श्रमपूर्ण और लंबा है, क्योंकि तुम कठिनाई से मुक्तिदिलाने वाली किसी भी संभव सहायता अथवा मार्गदर्शन हेतु तैयार नहीं हो। यही बात कृष्णमूर्ति कहते आ रहे हैं, पर किसी भी व्यक्ति ने इसका पालन नहीं किया है।
मन की यही समस्या है। मन अनुसरण न करने की बात को स्वीकार कर सकता है, इसलिए नहीं कि वह समझ गया है, बल्कि इसलिए कि अनुसरण न करना, तुम्हारे अहंकार को परिपूर्ण कर रहा है। कोई भी व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति का अनुसरण नहीं करना चाहता है। बहुत गहराई में अहंकार प्रतिरोध करता है। इसलिए कृष्णमूर्ति के चारों ओर सभी अहंकारी लोग एकत्रित हो गए हैं,
वे सब पुनः स्वयं को धोखा दे रहे हैं। वे सोचते हैं कि वे किसी भी व्यक्ति का अनुसरण नहीं कर रहे हैं, क्योंकि वे लोग अनुसरण द्वारा होने वाले अटकाव-भटकाव के तर्क को पूर्णतः समझ गए हैं, वे सोचते हैं कि वे समझ गए हैं कि इस मार्ग पर अकेले ही यात्रा करनी है, कोई भी सहायता संभव नहीं है और कोई भी व्यक्ति सहायता कर ही नहीं सकता है, कोई भी व्यक्ति तुम्हारा मार्गदर्शन नहीं कर सकता है और तुम्हें यात्रा अकेले ही करनी है। वे लोग ऐसा सोचते हैं कि वे समझ गए हैं और इसी कारण वे किसी भी व्यक्ति का अनुसरण नहीं कर रहे हैं। पर यह वास्तविकता नहीं है, वे स्वयं को धोखा दे रहे हैं, वे लोग अनुसरण नहीं कर रहे हैं, क्योंकि उनका अहंकार उन्हें इसकी अनुमति नहीं देता परंतु अभी भी वे लोग कृष्णमूर्ति को सुने चले जा रहे हैं। वर्षों से वे बार बार उनके पास मिलने एक ही स्थान पर जाते हैं।
यदि कोई भी सहायता संभव नहीं है, तो तुम बार-बार कृष्णमूर्ति के पास क्यों जाते हो? यदि कोई भी व्यक्ति तुम्हें मार्गदर्शन नहीं दे सकता है, तो बार-बार कृश्णमूर्ति को सुनने का प्रयोजन क्या है? यह अर्थहीन है। यह दृष्टिकोण कि तुम्हें मार्ग पर अकेले ही यात्रा करनी है, यहां तक कि यह दृष्टिकोण भी तुम्हारे द्वारा नहीं खोजा गया है, यह भी कृष्णमूर्ति द्वारा ही अनावृत्त किया गया है। बहुत गहरे में वह तुम्हारे सदगुरु बन गए हैं। लेकिन तुम कहे चले जाते हो कि तुम किसी का अनुसरण नहीं करते, यह एक धोखा है।
यही धोखा विपरीत ओर से भी हो सकता है। तुम मेरे पास आते हो, तुम सोचते
हो कि तुमने समर्पण कर दिया है परंतु अभी भी तुम अपना निर्णय और अपना चुनाव किए चले जाते हो। यदि मैं कोई बात कहता हूं जो तुम्हें संतुष्ट करती है, यानि तुम्हारे अहंकार को संतुष्ट करती है, तो तुम उसका अनुसरण करते हो। यदि मैं कुछ ऐसी बात कहता हूं जो तुम्हारे अहंकार को संतुष्ट नहीं करती है, तो तुम तर्क और प्रमाण की सहायता से उसे गलत सिद्ध करना शुरू कर देते हो और कहते हो-"शायद यह मेरे लिए नहीं है।" इसलिए तुम अनुभव करते हो कि तुमने मुझे समर्पण कर दिया है परंतु तुमने समर्पण नहीं किया है। कृष्णमूर्ति के पास जो लोग हैं, वे सोचते हैं कि वे किसी भी व्यक्ति
का अनुसरण नहीं कर रहे हैं परंतु वे अनुसरण कर रहे हैं। मेरे समीप रहते हुए तुम सोचते हो कि तुम मेरा अनुसरण कर रहे हो परंतु तुम मेरा अनुसरण नहीं कर रहे हो। मन सदैव ही धोखेबाज है। तुम जहां कहीं भी जाओ, वह तुम्हें धोखा दे सकता है, वह तुम्हें धोखा देगा ही, इसलिए सजग बने रहो।
मैं तुमसे कहता हूं-"तुम बिना अनुसरण किए भी पहुंच सकते हो, लेकिन मार्ग बहुत सुनसान है, एकाकी है और बहुत लंबा है, उसका ऐसा होना सुनिश्चित है। कोई भी पहुंच सकता है, असंभव नहीं हैऔर कुछ लोग पहुंचे भी हैं। मैं स्वयं ही बिना अनुसरण किए हुए पहुंचा हूं, तुम भी पहुंच सकते हो। लेकिन

स्मरण रहे कि अनुसरण न करना अहंकार को संतुष्ट करने का साधन नहीं बनना चाहिए, अन्यथा तुम कभी नहीं पहुंचोगे।
सदगुरु है अथवा नहीं है, यह मूल बात नहीं है। आधारभूत बात है अहंकार, तुम्हारा अहंकार। अहंकार न हो, तब बिना एक सदगुरु के भी तुम पहुंच सकते हो। परंतु अहंकार के साथ बुद्ध भी तुम्हारा पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकते। अतः या तो पूर्ण रूप से अनुसरण करो अथवा पूर्ण रूप से अनुसरण न करो, लेकिन जो भी करो पूर्णता से करो। इसलिए निर्णय तुम्हें ही करना है। मन के धोखे से बचते हुए, स्वयं के भीतर गहराई में देखो। जो कुछ तुम कर रहे हो उसके प्रति सचेत बने रहो। यदि तुम समर्पण कर रहे हो तब समर्पण करो।
मुझे याद आता है कि एक बार गुरजिएफ के शिष्यों के साथ एक घटना घटित हुई। गुरजिएफ अपने कुछ शिष्यों के साथ था। गुरजिएफ ने कहा कि जो कुछ भी वह कहेगा उन सब शिष्यों को उसका अनुसरण करना होगा। वह एक विशिष्ट साधना का अभ्यास करने में उनकी सहायता कर रहा था, जिसे वह "स्टॉप एक्सरसाइज़" कहता था। अतः जब भी वह कहता था-स्टॉप! तब शिष्यों को रुक जाना होता था, चाहे वे उस समय कुछ भी कार्य कर रहे हों। यदि तुम उस समय चल रहे हो और वह कहता था-"रुको", तो तुम्हें वहीं रुक जाना होता था, भले ही तुम्हारा एक पैर भूमि से ऊपर उठा रहे। तुम बात कर रहे हो, तुम्हारा मुंह खुला है और यदि वह कहता था-"रुक जाओ", तो तुम्हें खुले मुंह के साथ ही रुक जाना होता था। तुम्हें उस स्थिति को बदलना नहीं है, तुम्हें अपनी स्थिति को अपनी इच्छानुसार सुविधाजनक बनाने की आज्ञा नहीं थी, क्योंकि वह एक धोखा हो जाता और तुम किसी अन्य को नहीं बल्कि स्वयं को ही धोखा दे रहे हो।
एक दिन सुबह के समय जब कुछ शिष्य कैंप के बाहर अभ्यास कर रहे थे, कुछ शिष्य पास में बहती हुई एक नहर को पार कर रहे थे कि अचानक कैंप के अंदर से ही गुरजिएफ ने चिल्लाकर कहा:"स्टॉप"! इसलिए सब लोग जहां थे, जैसे थे, वहीं रूक गए। जो चार लोग नहर को पार कर रहे थे, उस समय वह नहर सूखी थी और उसमें पानी नहीं था, इसलिए वे लोग भी वहीं रुक गए। लेकिन अचानक किसी व्यक्ति ने पास के बांध से नहर में पानी छोड़ दिया और नहर में पानी भरना शुरू हो गया। तब उन चारों ने सोचा कि अब क्या किया जाए? गुरजिएफ डेरे के अंदर था और वह नहीं जानता था कि वे लोग नहर के बीच में खड़े हैं और नहर में पानी तेज़ी से बढ़ रहा था। लेकिन उन्होंने प्रतीक्षा की, क्योंकि कुछ क्षणों के लिए मन प्रतीक्षा कर सकता है।
जब पानी उनकी गर्दन तक आ गया तो एक शिष्य बाहर कूद गया और उसने कहा:"यह
तो हद हो गई है। "वह" कुछ नहीं जानता है।"
तब नहर में पानी का तल और अधिक बढ़ा और जब पानी ठीक उनकी नाक के निकट आ गया तो दूसरे दो शिष्य भी कूदकर बाहर आ गए, क्योंकि अब वे डूब जाते, मर जाते, और तर्क बिल्कुल सीधा-साफ था। यदि तुम होते तो तुम भी यही करते। वे लोग मरने जा रहे थे और सदगुरु डेरे के अंदर था, वह इस बात से अनजान था।
अब केवल एक शिष्य बचा। पानी उसके सिर से ऊपर बहने लगा था और वह खड़ा ही रहा। तब गुरजिएफ तेज़ी से अपने तंबू से बाहर निकला और उस शिष्य को नहर से बाहर निकाला। वह लगभग बेहोश हो चुका था। वह ठीक मरने की स्थिति में था और उसके शरीर से पानी को बाहर निकाला गया। परंतु जब उसने अपनी आंखें खोलीं तो वह कोई दूसरा ही व्यक्ति था। पुराना व्यक्ति वास्तव में मर चुका था। यह एक रूपांतरण था। वह पूर्ण रूप से एक भिन्न व्यक्ति हो गया था।
मृत्यु के उस क्षण में क्या हुआ था? उसने सदगुरु को स्वीकार कर लिया था। उसने अपने मन को और उसके तर्क तथा प्रमाणों को अस्वीकार कर दिया था। उसने स्वयं अपने जीवन की लालसा को अस्वीकार कर दिया था। उसने अपनी आंतरिक जैविक प्रवृत्ति को अस्वीकार कर दिया था। उसने सबकुछ छोड़ दिया था। उसने कहा:"जब सदगुरु ने कहा है कि रुक जाओ, मैं रुक गया हूं। अब कोई भी चीज़ मुझे गतिशील नहीं कर सकती है।"
यह निश्चित ही बहुत कठिन रहा होगा, लगभग असंभव। लेकिन जब तुम कोई असंभव कार्य करते हो तो तुम रूपांतरित हो जाते हो। मरते हुए भी उसने मन को हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी। मृत्यु एकदम निकट थी, लेकिन अपने मन और उसके निर्णय की तुलना में उसने मृत्यु को स्वीकार कर लिया।

वह फिर वही पहले वाला व्यक्ति नहीं रह गया था, कोई भी उस पुराने व्यक्ति से फिर कभी नहीं मिला। तब दूसरे लोगों ने अनुभव किया कि वे लोग एक महान अवसर से चूक गए हैं। वे तीन लोग, जो कूदकर नहर से बाहर आ गए थे, वे लोग एक महान अवसर से चूक गए थे।
यह संपूर्ण समर्पण है। प्रश्न इस बात का नहीं है कि वह तुम्हारे मन को आकर्षित कर रहा है अथवा नहीं और तुम्हारा मन "हां" कहता है अथवा "नहीं"। जब तुम समर्पण करते हो तो तुमने "नहीं" कहने की सभी संभावनाओं को भी समर्पित कर दिया है। चाहे जैसी भी स्थिति हो, तुम "ना" नहीं कहोगे। संपूर्ण "हां" का अर्थ है पूर्ण समर्पण। कठिन है, इसी कारण रूपांतरण हो पाना कठिन है। आसान नहीं है, इसी कारण आध्यात्मिक जन्म लेना सरल नहीं है।
लेकिन मैं यह नहीं कहता कि तुम अकेले नहीं पहुंच सकते हो। तुम अकेले पहुंच सकते हो, तुम एक सदगुरु के साथ भी पहुंच सकते हो, तुम एक समूह में भी पहुंच सकते हो और तुम एक वैयक्तिक इकाई की भांति भी पहुंच सकते हो। सभी संभावनाएं खुली हुई हैं। निर्णय तुम्हें लेना है और स्वयं को कोईधोखा दिए बिना यह निर्णय लेना है।
स्मरण रहे, यह प्रश्न पूरब और पश्चिम का नहीं है। भीतर गहराई में मन
एक समान है, सभी भेद उथले हैं। पूरब और पश्चिम, ये केवल सतह हैं, सांस्कृतिक और जातिगत विशिष्टताएं हैं, पर वे केवल बाह्य धरातल पर हैं। भीतर गहराई में मनुष्य का मन एक समान है। तुम कहां से हो, किस जगह से हो, यह बात असंगत है।
समर्पण करो या नितांत अकेले बने रहो, लेकिन दोनों पथों पर केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा यात्रा की जा सकती है, जो संपूर्ण हैं, समग्र हैं। बुद्ध अकेले ही बुद्धत्व तक पहुंचे, और बुद्ध का अनुसरण करते हुए अनेक लोग भी उसी बुद्धत्व तक पहुंचे।
मैं पक्षपाती नहीं हूं। मैं यह नहीं कहता, जैसे कि कृष्णमूर्ति कहते हैं:"केवल यही एक मार्ग है", मैं नहीं कहता, जैसा कि मेहर बाबा कहते हैं :"केवल यही एक मार्ग है।" मैं भली-भांति जानता हूं कि वह तुम्हारी सहायता के लिए ऐसा कहते हैं, क्योंकि एक बार जब तुम जान जाते हो कि कोई दूसरा मार्ग भी हो सकता है, तो तुम्हारे भीतर भ्रम और उलझन पैदा हो जाती है। तब तुम झूले की तरह डोलना शुरू कर देते हो, कभी तुम यह सोचते हो और कभी तुम वह सोचते हो। इसी कारण सदगुरु कहते रहे हैं:"केवल यही एक मार्ग है"। केवल तुम्हारे मन को भ्रम से बचाने के लिए ही वे ऐसा कहते रहे हैं। अन्यथा विरोधी मार्ग तुम्हें आकर्षित करेगा और तुम निरंतर अपने दृष्टिकोण को बदलते चले जाओगे। तुम्हें संपूर्ण एवं समग्र बनाने के लिए ही सदगुरु इस बात पर बल देते आए हैं।
लेकिन मैं कहता हूं कि दोनों ही मार्ग हैं। क्यों? क्योंकि एक का आग्रह करना अब पुरानी बात हो गई है और तुमने बहुत सुन लिया कि यही एक मार्ग है। अब तो यह एक मृत तकिया कलाम बन गया है। अब यह सहायता नहीं करता है। अतीत में यह सहायक हुआ करता था, पर अब यह सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि अब समस्त संसार संबंधित है, पूरी पृथ्वी एक गांव की तरह बन गईहै:वसुद्यैव कुटुम्बकम्... और प्रत्येक धर्म दूसरे धर्म को जानता है। आज सभी लोगों को लगभग सभी मार्गों का ज्ञान है। अब मनुष्यता सभी मार्गों, सभी संभावनाओं और सभी विकल्पों से परिचित हो गई है।
अतीत में लोग केवल एक मार्ग ही जानते थे, जिसमें उनका जन्म हुआ था। तब
इस बात पर बल देना अच्छा था कि केवल एक ही मार्ग है, जिससे उनका मन आश्वस्त और आस्थापूर्ण बन सके। लेकिन अब यह स्थिति नहीं हैं। एक हिन्दू कुरान पढ़ता है, एक ईसाई मार्गदर्शन खोजने के लिए भारत आता है और एक मुसलमान गीता एवं वेदों के प्रति सचेत है। सभी मार्ग सभी को ज्ञात हैं। चारों तरफ एक भ्रम की स्थिति है और ऐसे में जो कोई भी यह कहता है कि केवल यही एक मार्ग है, वह आज के समय में सहायता नहीं कर सकेगा क्योंकि तुम भलिभांति जानते हो कि दूसरे मार्ग भी उपलब्ध हैं। तुम जानते हो कि लोग दूसरे मार्गों से भी पहुंचते हैं और पहुंच रहे हैं। इसलिए मैं किसी भी मार्ग पर बल नहीं देता हूं।

यदि तुम समर्पण करते हो तो तुम मेरी सहायता ले सकते हो, यदि तुम समर्पण नहीं करते हो तब भी तुम मेरी सहायता ले सकते हो, लेकिन तुम्हें इस बारे में स्पष्ट करना होगा। यदि तुम समर्पण का मार्ग चुनते हो, तब तुम्हें पूर्ण रूप से मेरा अनुसरण करना होगा। यदि तुम चुनाव करते हो कि तुम समर्पण नहीं कर रहे हो, तब उसका निर्णय कर लो। मैं उस मार्ग पर भी एक मित्रबन सकता हूं और मुझे वहां एक सदगुरु बने रहने की आवश्यकता नहीं है। मैं उस मार्ग पर केवल एक मित्र बना रहूंगा अथवा एक मित्र भी नहीं।
तुम खोज रहे हो और तुम एक अनजबी से पूछते हो-"नदी कहां है? नदी तक कौन
सा मार्ग जाता है" जब वह तुम्हें मार्ग बता देता है तो तुम उसे धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाते हो। मैं केवल एक अजनबी की तरह हो सकता हूं। एक मित्र बनाने की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि एक मित्र के साथ भी तुम संबंध बना लेते हो। तो तुम मेरी सहायता ले सकते होऔर मेरी सहायता बेशर्त है।
मैं यह नहीं कहता कि ऐसा करो, तब मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। मैं नहीं कहता कि समर्पण करो, केवल तभी मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। लेकिन इतना मैं अनिवार्य रूप से कहता हूं कि जो कुछ तुम्हें पसंद है वही करो, लेकिन उसे समग्रता और पूर्णता से करो। यदि तुम पूर्ण हो तो रूपांतरण निकट हैं, यदि तुम विभाजित हो तो रूपांतरण लगभग असंभव है।

दूसरा प्रश्नः
झेन कथा है कि जब वाकूयां नामक शिष्य ने लंबी दाढ़ी वाले सदगुरु बोधिधर्म का चित्र देखा तो उसने शिकायत की-"इन महाशय के पास दाढ़ी क्यों नहीं है"
ओशो! आपके पास भी दाढ़ी क्यों नहीं है?

झेन की परंपरा वास्तव में बहुत सुंदर है। बोधिधर्म ने दाढ़ी बढ़ा रखी
है और एक शिष्य पूछता है:"इन महाशय ने दाढ़ी क्यों नहीं रखी है" यह प्रश्न सुंदर है, आकर्षक है, लेकिन केवल एकझेन शिष्य ही ऐसा प्रश्न उठा सकता है क्योंकि दाढ़ी का संबंध बोधिधर्म से नहीं बल्कि उसके शरीर से है। वह शिष्य दाढ़ी विहीन है, क्योंकि शरीर केवल एक घर है। यह प्रश्न व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण प्रतीत होता है, लेकिन यह अर्थपूर्ण है और ऐसे प्रश्न कई बार पूछे गए हैं।
बुद्ध सुबह से लेकर शाम तक, एक गांव से दूसरे गांव में, निरंतर बोलते
ही रहते थे, निरंतर चालीस वर्षों तक वह घूम-घूम कर बोलते रहे। एक दिन सारिपुत्र ने उनसे पूछा:"आप मौन ही क्यों बने रहे? आप हम लोगों से बात क्यों नहीं करते"प्रकट रूप से यह प्रश्न असंगत और मूर्खतापूर्ण है। बुद्ध हंसे और उन्होंने कहा:"तुम ठीक कहते हो।" परंतु यह व्यक्ति बातचीत तो कर रहा था, कोई भी व्यक्ति इतना अधिक नहीं बोला है, जितना अधिक बुद्ध बोलते रहे हैं। लेकिन सारिपुत्र भी ठीक कह रहा था, क्योंकि यह बातचीत केवल बाहरी तल पर घटित हुई थी और अंदर से बुद्ध मौन बने रहे।
एक झेन सदगुरु रिंझाई कहा करता था-"यह बुद्ध नाम का व्यक्ति न कभी जन्मा, न कभी इस पृथ्वी पर उसने भ्रमण किया और न ही वह कभी मरा, वह केवल एक स्वप्न है।" परंतु प्रतिदिन रिंझाई मठ में जाया करता और बुद्ध की मूर्ति के सामने झुक कर प्रणाम करता।
तब किसी व्यक्ति ने उससे कहा, "रिंझाई! तुम बिल्कुल पागल हो। प्रतिदिन तुम यह दोहराए चले जाते हो कि इस व्यक्ति का न कभी जन्म हुआ, न वह कभी मरा और न कभी पृथ्वी पर उसने भ्रमण किया और उसके बाद भी तुम मंदिर के भीतर जाकर उनकी मूर्ति के सामने झुकते हो, प्रणाम करते हो।"
रिंझाई ने कहा:"चूंकि इस व्यक्ति का न कभी जन्म हुआ, न कभी उसने पृथ्वी पर भ्रमण किया और न ही कभी वह मरा, इसी कारण मैं मंदिर जाकर उसकी मूर्ति के सामने झुकता हूं और प्रणाम करता हूं।"
प्रश्नकर्ता ने आग्रह करते हुए कहा:"हम आपकी बात नहीं समझ सकते हैं।
या तो आप पागल हैं अथवा हम लोग पागल हैं, लेकिन हम लोग समझ नहीं सकते हैं कि आपके कहने का अर्थ क्या है"

रिंझाई ने कहा:"इस व्यक्ति का जन्म लेना, मेरे लिए केवल एक स्वप्न था। उसका पृथ्वी पर चलना भी मेरे लिए केवल एक स्वप्न था। उसकी मृत्यु भी सत्य नहीं थी, वह एक लंबे स्वप्न का केवल एक अंत था और यह व्यक्ति सदा ही अपने अस्तित्व के केंद्र पर, जन्म और मृत्यु के पार बना रहा।"
यह कहा जाता है कि बुद्ध हमेशा सातवें स्वर्ग में ही रहे। वह नीचे कभी नहीं आए, यहां केवल उनका प्रतिबिंब प्रकट हुआ था। और यह सत्य है। यह तुम्हारे लिए भी सत्य है। तुम कभी भी नीचे नहीं आए हो, केवल तुम्हारा प्रतिबिंब आया है। लेकिन तुमने प्रतिबिंब के साथ इतना अधिक तादात्म्य बना लिया है कि तुम स्वयं को भूल ही गए हो। तुम सोचते हो कि तुम नीचे आए हो। तुम नीचे आ ही नहीं सकते, अपने सारभूत तत्त्व से नीचे गिरने का कोई भी उपाय नहीं है।
तुम एक नदी में झांककर देख सकते हो, तुम उस नदी में अपने प्रतिबिंब को देख सकते हो और तुम उस प्रतिबिंब के साथ इतना अधिक तादात्म्य बना सकते हो कि तुम्हें लगेगा कि तुम पानी के नीचे ही हो। इस कारण तुम कष्ट भोग सकते हो, तुम घुटन अनुभव कर सकते हो और तुम यह भी अनुभव कर सकते हो कि तुम मरने जा रहे हो। परंतु तुम तो हमेशा नदी के किनारे पर ही खड़े हो, तुम कभी पानी के नीचे गए ही नहीं हो और तुम जा भी नहीं सकते।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि केवल बुद्ध ही नहीं, कोई भी व्यक्ति सातवें स्वर्ग से कभी भी नीचे नहीं आया है। लेकिन कुछ लोग अपने प्रतिबिंबों के साथ तादात्म्य जोड़कर उन्मादित हो जाते हैं। यह वही है, जिसे हिन्दू माया का संसार अर्थात प्रतिबिंबों का संसार कहते हैं। हम ब्रह्म में ही बने रहते हैं, हम शाश्वत रूप से जड़ें जमाए हुए अंतिम सत्य में ही बने रहते हैं। कोई भी कभी नीचे नहीं आता है, लेकिन हम स्वप्न के साथ, प्रतिबिंब के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं।
इसलिए तुम मुझसे ठीक ही पूछते हो कि यह व्यक्ति बिना दाढ़ी का है। यदि तुम मेरे शरीर की ओर देखते हो तो तुम मेरी ओर नहीं देख रहे हो। यदि तुम मेरी ओर देखोगे, तब तुम समझोगे। दाढ़ी स्वयं विकसित नहीं हो सकती। दाढ़ी केवल शरीर पर ही उग सकती है। यह दाढ़ी वास्तव में बहुत प्रतीकात्मक है कि आत्मा जीवित है। शरीर आधा मृत और आधा जीवित है, दाढ़ी तो लगभग मृत है। तुम्हारे बाल तुम्हारे शरीर के मृत भाग हैं। इसी कारण तुम उन्हें काट सकते हो और काटने पर तुम्हें किसी दर्द का अनुभव नहीं होता है। अपनी उंगुली काटो, तुम दर्द का अनुभव करोगे। तुम्हारे बाल भी तुम्हारे शरीर का भाग हैं, लेकिन यदि तुम उन्हें काटते हो तब तुम किसी दर्द का अनुभव नहीं करते हो। वे शरीर की मृत कोशिकाएं हैं। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि तुम एक मुस्लिम कब्रिस्तान में जाओ और एक कब्र खोदकर मृत शरीर को बाहर निकालो, तो हो सकता है कि कब्र में पड़ा हुआ वह व्यक्ति बिना दाढ़ी के मरा हो परंतु अब उसके चेहरे पर दाढ़ी होगी। यहां तक कि मुर्दा शरीरों पर भी दाढ़ियां विकसित हो सकती हैं, क्योंकि दाढ़ियां मृत हैं, वे केवल मृत कोष हैं।
दाढ़ी का विकसित होना अच्छा है, क्योंकि तब दर्पण के सामने खड़े होकर तुम अपनी सभी परतों को देख सकते हो... पूर्ण रूप से मृत परतों को, आधी मृत और आधी जीवित परतों को तथा पूर्ण रूप से जीवंत परतों को देख सकते हो। दाढ़ी पदार्थगत है या पदार्थ है, शरीर में पदार्थ और आत्मा दोनों मिल रहे हैं, मिलन हमेशा कठिन होता है। तुम्हारा शरीर, पदार्थ और आत्मा की एक मिलन भूमि है। जब कभी भी यह मिलन टूटता है, संतुलन नष्ट हो जाता है और तुम मर जाते हो। पदार्थ पुनः पदार्थ में अवशोषित हो जाता है और आत्मा या चेतना पुनः आत्मा में लीन हो जाती है।
यह व्यक्ति भी दाढ़ी विहीन है।
पूरा प्रश्न यही है कि बोधिधर्म पदार्थ क्यों नहीं है? और उत्तर यह है
कि आत्मा पदार्थ नहीं बन सकती।
झेन शिष्य एक विशिष्ट ढंग से पूछते हैं। कहीं किसी भी जगह ऐसे प्रश्न नहीं पूछे गए हैं। तुम एक ईसाई-पोप से यह नहीं पूछ सकते-"यह जीसस महाशय बिना दाढ़ी के क्यों हैं" यह प्रश्न ही अधार्मिक समझा जाएगा। तुम जीसस के साथ अधिक अंतरंग नहीं हो सकते। तुम उन्हें एक व्यक्ति अथवा एक मित्र की

भांति "महाशय" कहकर संबोधित नहीं कर सकते। यह धार्मिक नहीं लगेगा, पवित्र नहीं लगेगा। तुम्हारा इस प्रकार का आचरण जीसस के प्रति अपमानजनक प्रतीत होगा। परंतु झेन परंपरा के साथ ऐसा नहीं है। झेन कहता है कि यदि तुम अपने सदगुरु से प्रेम करते हो तो तुम उनके संदर्भ में हंस भी सकते हो। यदि तुम उन्हें प्रेम करते हो तो वहां कोई भी भय नहीं होगा। यदि तुम उनसे प्रेम करते हो तो उनके धार्मिक व्यक्ति होने का भय भी मिट जाता है। यदि तुम सदगुरु से प्रेम करते हो तो भय समाप्त हो जाता है।
इसलिए ईसाई धर्मशास्त्रा जब पहली बार झेन परंपरा के प्रति सजग हुए तो
वे विश्वास ही न कर सके कि कोई ऐसा धर्म भी मौजूद हो सकता है, क्योंकि झेन भिक्षु बुद्ध का ही हास-परिहास किए चले जाते हैं। कभी-कभी वे ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं कि तुम विश्वास ही नहीं कर सकते। वे बुद्ध के लिए इतना तक कह सकते हैं:"यह मूर्ख व्यक्ति" और यदि तुम उनसे पूछो तो वे कहेंगे-"हां, वह मूर्ख था, क्योंकि वह ऐसी बात कहने का प्रयास कर रहा था, जिसको कहा नहीं जा सकता है और वह हमें रूपांतरित करने का प्रयास कर रहा था, जो असंभव है। वह एक मूर्ख व्यक्ति था, वह असंभव को संभव करने का प्रयास कर रहा था।"
झेन सदगुरुओं ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो कोई भी धर्म नहीं
कर सकता है। लेकिन इसी कारण मैं कहता हूं कि झेन जैसा धार्मिक कोई भी धर्म नहीं है, क्योंकि यदि तुम वास्तव में प्रेम करते हो, तो भय है कहां? तुम मजाक कर सकते हो, तुम हंस सकते हो और बुद्धत्व को उपलब्ध बुद्ध जैसा व्यक्ति भी तुम्हारे साथ हंसेगा। इस में कोई भी समस्या नहीं हैं। उसके हृदय को चोट का अनुभव नहीं होगा, यदि वह चोट अथवा आघात का अनुभव करता है तो वह किसी भी प्रकार से बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ ही नहीं है। वह यह नहीं कहेगा कि ऐसी तुच्छ और अधार्मिक भाषा का प्रयोग मत करो, क्योंकि बुद्ध के लिए तो समस्त भाषाएं ही तुच्छ और अधार्मिक हैं। बुद्ध के लिए केवल मौन ही धार्मिक है।
इसलिए तुम बुद्ध को चाहे मूर्ख कहो चाहे बुद्ध पुरूष कहो, उनके लिए दोनों ही समान है। भाषा स्वयं में ही अधार्मिक है। केवल मौन ही पवित्र है। इसलिए तुम जो कुछ भी कहते हो, वह सब एक समान है।
यह शिष्य वाकूयां पूछ रहा है:"इस बोधिधर्म नामक व्यक्ति के पास दाढ़ी क्यों नहीं है" बोधिधर्म, झेन परंपरा के प्रथम सदगुरु हैं। बोधिधर्म ने ही इस सदा प्रवाहित होने वाली, नित नूतन झेन सरिता को उत्पन्न किया है। बोधिधर्म चौदह सौ वर्षों पूर्व चीन गया। जब उसने चीन में प्रवेश किया
तो वह अपने दोनों जूतों में से एक को अपने सिर पर रखे हुए चल रहा था। एक जूता उसके पैर में था और एक जूता उसके सिर पर रखा हुआ था। सम्राट स्वयं उसका स्वागत करने आया था। वह बहुत उलझन में पड़ गया कि इस व्यक्ति का यह कैसा शिष्टाचार है? वह इतनी लंबी अवधि से बोधिधर्म की प्रतीक्षा कर रहा था और वह सोच रहा था कि एक महान धार्मिक व्यक्ति, एक असाधारण संत और एक अद्भुत ऋषि आ रहा है, लेकिन यह व्यक्ति तो एक विदूषक के समान व्यवहार कर रहा है। सम्राट बहुत व्याकुल हो उठा और उसने बेचैनी का अनुभव किया। पहला अवसर मिलते ही उसने बोधिधर्म से पूछ लिया, "आप यह क्या कर रहे हैं? लोग हंस रहे हैं और वे मुझ पर भी हंस रहे हैं, क्योंकि मैं आपका स्वागत करने आया हूं। आप जिस ढंग से आचरण कर रहे हैं वह बिल्कुल भी उचित नहीं है। आपको एक संत के समान आचरण करना चाहिए।"
बोधिधर्म ने कहा:"केवल वे ही लोग, जो संत नहीं हैं... संतों के समान आचरण करते हैं। मैं एक संत हूं। केवल वे लोग जो संत नहीं हैं, संतों के समान व्यवहार करते हैं।" और वह ठीक कह रहा है, क्योंकि तुम अपने आचरण की फिक्र करते हो, लेकिन यह फिक्र तब ही हो पाती है जब आचरण सहज एवं स्वाभाविक नहीं होता है।
सम्राट ने कहा:"मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि एक जूते को आप अपने सिर पर क्यों रखे हुए हैं? आप एक मसखरे की भांति प्रतीत होते हैं।"
बोधिधर्म ने कहा:"हां, क्योंकि वह सब कुछ जो देखा जा सकता है, एक मसखरी
ही है। केवल जोदिखाई नहीं देता है... आपका यहां एक सम्राट के समान खड़ा होना, विशिष्ट अलंकृत वस्त्र पहनना, सिर पर मुकुट धारण करना, यह सब एक

मसखरापन है। केवल आपको यह बताने के लिए ही मैं एक जूते को अपने सिर पर ढो रहा हूं। यह सब कुछ एक अभिनय और मसखरापन ही है। बाहर की इस परिधि पर वास्तविकता नहीं है। मेरी ओर देखिए, मेरे शरीर को मत देखिए। यह प्रतीकात्मक है कि मैं अपने एक जूते को सिर पर रखे हुए हूं। मैं कहता हूं कि जीवन में न तो कुछ धार्मिक है और न ही कुछ अधार्मिक है। यहां तक कि एक जूता भी आपके सिर की भांति धार्मिक और पवित्र है। मैं इस जूते को एक प्रतीक की भांति रखे हुए हूं।"
यह कहा जाता है कि यह सुनकर सम्राट बहुत अधिक प्रभावित हुआ। लेकिन उसने बोधिधर्म से कहा:"आप वाकई अनोखे हैं। मैं केवल एक बात आपसे पूछना चाहता हूं कि मैं अपने मन को कैसे शांत रख सकता हूं। मैं बहुत अधिक अधीर, क्षुब्ध, व्याकुल और बेचैन रहता हूं।"
बोधिधर्म ने कहा:"आप सुबह चार बजे आ जाइए और अपने मन को भी अपने साथ लेते आइए। मैं उसे शांत बना दूंगा।"
सम्राट भलीभांति समझ न सका। उसने सोचना शुरू कर दिया कि इस व्यक्ति
के कहने का क्या अर्थ है:"अपने मन को भी अपने साथ ले आना।" जब वह मंदिर की सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था, जहां कि बोधिधर्म ठहरा हुआ था, बोधिधर्म ने उसे पुनः कहा:"याद रहे, अकेले मत आइएगा, अन्यथा मैं किसे शांत करूंगा? मन को अपने साथ लेते आइएगा। ठीक चार बजे आ जाइए और बिना रक्षकों के अकेले ही आइएगा। अन्य कोई भी व्यक्ति साथ में न हो।"
सम्राट पूरी रात सो नहीं सका। वह सोच रहा था-"यह व्यक्ति थोड़ा-सा सनकी प्रतीत होता है। जब मैं वहां जाऊंगा तो स्पष्ट है कि मेरा मन भी मेरे साथ ही होगा। इतना आग्रह करने का क्या अर्थ है कि अपने मन को भी अपने साथ जरूर लाइएगा" एक बार तो उस सम्राट ने सोचा कि बेहतर होगा कि मैं वहां न ही जाऊं, क्योंकि कौन जाने अकेले में वह मुझ पर हमला कर दे या कोई चोट कर दे... उसका विश्वास नहीं किया जा सकता है, उस व्यक्ति के बारे में कोई पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है।
लेकिन अंत में सम्राट ने जाने का निर्णय ले लिया, क्योंकि वास्तव में बोधिधर्म के पास एक चुंबकीय आकर्षण था। उसकी आंखों में कुछ खिंचाव था, एक अग्नि थी जिसका संबंध इस पृथ्वी से नहीं था। उसकी श्वास में कुछ अद्भुत बात थी, एक शांति और ऐसा मौन था जो उस पार के जगत से आता हुआ मालूम होता था। इसलिए सम्राट आया, जैसे मानो वह सम्मोहित कर दिया गया था और जो पहली बात बोधिधर्म ने पूछी, वह थी-"ठीक है, आप आ गए हैं। आपका मन कहां है" उस समय बोधिधर्म एक बड़े डंडे के साथ टिककर बैठा हुआ था।
सम्राट ने कहा:"लेकिन जब मैं आ गया हूं तो मेरा मन भी मेरे साथ ही आ गया है। वह मेरे अंदर है। वह किसी वस्तु की भांति नहीं है, जिसे मैं उठाकर साथ ला पाता।"
तब बोधिधर्म ने कहा:"ठीक है, तो आप सोचते हैं कि मन आपके अंदर ही है।
तब बैठ जाइए और अपनी आंखें बंद कर लीजिए और उस मन को खोजने का प्रयास कीजिए कि वह कहां है? आप बस मुझे इशारा कर दीजिए और मैं उसे शांत बना दूंगा। यहां पर यह डंडा रखा हुआ है और मैं आपके एक इशारे पर आपके मन कोशांत कर दूंगा, बिल्कुल भी फिक्र मत कीजिए।"
सम्राट ने अपनी आंखें बंद कीं और अंदर देखने का प्रयास किया और बोधिधर्म ठीक उसके सामने बैठा हुआ था। उसने प्रयास किया, निरंतर प्रयास किया, वह प्रयास करता ही गया। समय बीतता गया और जब सूर्योदय हुआ तो सम्राट का चेहरा पूर्ण रूप से शांत था, तब उसने अपनी आंखें खोलीं। सामने बैठे हुए बोधिधर्म ने पूछा:"क्या आप उसे खोज सके"
सम्राट ने हंसना शुरू कर दिया और कहा:"आपने उसे ठीक कर दिया है, क्योंकि जितना मैं उसे खोजने का प्रयास करता था, उतना ही मुझे यह अनुभव होता था कि वह मिल नहीं रहा है। वह केवल एक छाया थी और इस छाया के होने का कारण यही था कि मैं कभी भी अपने अंदर गहराई में प्रविष्ट नहीं हुआ था। वह केवल मेरी अनुपस्थिति थी। जब मैं अपने अंदर उपस्थित हो गया तब वह छाया विलुप्त हो गई।

यह बोधिधर्म वास्तव में एक बहुत दुर्लभ व्यक्ति था। उसके शिष्य उसके संदर्भ में हास-परिहास कर सकते थे, उस पर हंस सकते थे और वह उसका आनंद लेता था।
बुद्ध पुरूष एक प्रकार के निरंतर हास्य से आपूरित होता है। बुद्ध पुरूष कभी भी गंभीर व्यक्ति नहीं होता है, जैसी कि आम धारणा है। तुम जहां कहीं भी गंभीरता देखो, तो भलीभांति समझ जाना कि कहीं कुछ गड़बड़ है, क्योंकि गंभीरता रुग्ण चित्त का एक भाग है। कोई भी फूल गंभीर नहीं होता है, जब तक कि वह बीमार न हो। कोई भी पंछी गंभीर नहीं होता है, जब तक कि वह बीमार न हो। कोई भी वृक्ष गंभीर नहीं होता, यदि उसके साथ कुछ गलत न हुआ हो। जब कभी भी कुछ गलत होता है, तब ही गंभीरता घटित होती है। गंभीरता एक बीमारी है। जब प्रत्येक चीज़ ठीक है तो उन्मुक्त हास्य उत्पन्न होता है।
बोधिधर्म निरंतर हंस रहा है और उसका हास्य नाभि से उठने वाला एक अट्टहास है, वह एक गर्जना है। उसके शिष्य जब प्रश्न पूछा करते थे तो सिवाय बोधिधर्म के अन्य कोई भी व्यक्ति उत्तर नहीं दे सकता था।
और मैं तुमसे कहता हूं कि वह व्यक्ति बिना दाढ़ी का था, यहां बैठा यह व्यक्ति भी बिना दाढ़ी का है।

तीसरा प्रश्नः
झेन फकीर गोसो ने एक दिन पूछा:"जब तुम राह में एक सदगुरु से मिलते हो,
तब तुम उससे बातचीत नहीं कर सकते और न ही तुम उसके साथ मौन रह पाते हो। ऐसे में तुम्हें क्या करना चाहिए"
ओशो! जब हम यहां इस स्थान में "गुरुओं के गुरु" से मिलते हैं, तब हमें क्या करना चाहिए?

हां, यह सत्य है। जब तुम सड़क पर एक झेन सदगुरु से मिलते हो, तुम उसके साथ बातचीत नहीं कर सकते, क्योंकि तुम उसके साथ किस बारे में और क्या बात कर सकते हो? तुम्हारे संसार बहुत अधिक भिन्न हैं और तुम्हारी भाषाएं दो विभिन्न आयामों से संबंधित हैं। तुम उसके साथ किस बारे में बात कर सकते हो? तुम उससे क्या पूछ सकते हो? क्या कोई प्रश्न वास्तव में पूछने योग्य है? क्या कोई प्रश्न वास्तव में अर्थपूर्ण है? जब तुम एक झेन सदगुरु से मिलते हो तो तुम उससे किस बारे में बात करोगे? तुम जिस बारे में बात कर सकते हो, वह सब इस संसार से, इस तुच्छ बाजार से, घर और परिवार से संबंध रखता है। वह सभी कुछ, जिसके बारे में तुम बात कर सकते हो या वह सब जो तुम हो, वह बिल्कुल ही व्यर्थ है।
यह सत्य है। जब तुम मार्ग पर एक झेन सदगुरु से मिलते हो और तुम एक सदगुरु से हमेशा मार्ग पर ही मिलते हो, क्योंकि सदगुरु हमेशा गतिशील रहता है। तुम उससे अन्य किसी और जगह पर मिल ही नहीं सकते। स्मरण रहे, तुम एक सदगुरु से हमेशा मार्ग पर ही मिलते हो, क्योंकि वह हमेशा भ्रमण कर रहा है। वह एक नदी की भांति है, कभी भी स्थिर नहीं है और कभी भी अचल नहीं है। यदि तुम उसके साथ गति नहीं कर सकते हो तो तुम उससे चूक जाओगे। वह हमेशा ही गतिशील है। तुम हमेशा उससे मार्ग पर ही मिलते हो।
तुम किस बारे में उससे बात कर सकते हो? तुम मौन भी नहीं रह सकते हो, क्योंकि तुम्हारे लिए मौन बने रहना लगभग असंभव है। तुम उससे बातचीत भी नहीं कर सकते, क्योंकि सदगुरु का संबंध एक भिन्न संसार से है। तुम मौन भी नहीं रह सकते, क्योंकि तुम जिस संसार के हिस्से हो, वह कभी भी मौन नहीं रहता है। तुम्हारा मन बक-बक किए चले जाता है। तुम्हारा मन निरंतर बक-बक करने वाला एक स्वचालित यंत्र है। संगत और असंगत विचार उसमें चलते ही रहते हैं और इन अनर्गल विचारों का कहीं कोई अंत ही नहीं है, वे एक दुष्चक्र की भांति घूमते रहते हैं।
तुम मौन भी नहीं रह सकते और तुम बातचीत भी नहीं कर सकते, तब करना क्या है? यदि तुम बातचीत करना शुरू करते हो तो वह एक मूर्खता होगी। यदि तुम मौन बने रहना चाहो, तो वह संभव नहीं होगा। अच्छा यही है कि तुम स्वयं कोई भी निर्णय न लो। सदगुरु से ही पूछो कि क्या करना है? सदगुरु से कहो कि-"मैं बातचीत नहीं कर सकता क्योंकि हम लोग भिन्न-भिन्न संसारों के हिस्से हैं।

मैं जो कुछ भी पूछूंगा, वह निरर्थक होगा और जो कुछ भी आप उत्तर देंगे, मैं उस पर कोई प्रश्न नहीं उठा सकता। मैं जो कुछ भी प्रश्न करूंगा वे निरर्थक हैं और वे उत्तर देने योग्य भी नहीं है। मैं मौन भी नहीं रह सकता, क्योंकि मैं नहीं जानता कि मौन क्या होता है? मैंने मौन को कभी जाना ही नहीं है, कभी भी मौन मुझे घटित नहीं हुआ है। मैं केवल एक तरह का ही मौन जानता हूं, वह मौनजो दो विचारों के मध्य एक अंतराल की भांति आता है और वह मौन जो दोशब्दों के मध्य एक अंतराल की भांति बना रहता है।"
हमारी शांति ठीक उस शांति की भांति है, जो दो युद्धों के बीच होती है।
यह वास्तविक शांति नहीं है, यह तो केवल एक अन्य युद्ध की तैयारी है। वह शांति कैसे हो सकती है जो युद्धों के बीच सेतु का कार्य करती है। अंतर केवल इतना ही है कि इस सेतु के नीचे भी भूमिगत रूप से युद्ध चलता रहता है। यह एक तरह का शीत-युद्ध है, यह किसी भी कीमत पर शांति नहीं है। हमारी शांति और मौन ठीक ऐसा ही है।
इसलिए सदगुरु से कहो-"मैं मौन भी नहीं रह सकता और मैं बात भी नहीं कर सकता, इसलिए मुझे बताइये कि क्या करना चाहिए" अपनी ओर से कुछ भी शुरू मत करो, क्योंकि तुम जो भी शुरूआत करोगे वह गलत ही होगी। बातचीत अथवा मौन-तुम जो भी शुरू करोगे, वह गलत ही होगा। बस, प्रत्येक चीज़ सदगुरु पर छोड़ दो और उनसे ही पूछो-"मुझे क्या करना है" यदि वह कहते हैं कि बात करो तब बातचीत करना और यदि वह कहते हैं कि मौन बने रहो तब शांत और मौन होने का प्रयास करना। सदगुरु जानता है और वह केवल वही बात कहेगा, जो तुम्हारे लिए संभव होगी।
अंतिम रूप से वह असंभव के बारे में बताएगा, लेकिन प्रारंभ में कभी नहीं। अंत में वह असंभव के बारे में कहेगा, क्योंकि तब तक वह संभव हो गया होगा। लेकिन प्रारंभ में वह केवल संभव के बारे में कहेगा। धीमे-धीमे वह तुम्हें उस अंतिम गहन खाई की ओर धकेलेगा, जहां असंभव घटित होता है। यदि वह कहता है:बातचीत करो, तभी बात करना। तब तुम्हारा बात करना भी तुम्हारे लिए एक सहायता होगी। लेकिन तब तुम वास्तव में बात नहीं कर रहे हो, तुम केवल एक रेचन की क्रिया कर रहे हो। तुम अपने मन को बाहर ला रहे हो, तुम मन को बाहर लाने का कार्य कर रहे हो। तुम स्वयं को खोल रहे हो। तुम कुछ कह नहीं रहे हो, बल्कि तुम अपने को उघाड़ रहे हो। यह खुलना, यह उघाड़ना तुम्हारी सहायता करेगा। तुम भार से मुक्त हो जाओगे।
जब एक सदगुरु तुम्हारे निकट होता है, और तुम वास्तव में इतने सच्चे और निष्कपट हो सको कि जो भी तुम्हारे भीतर उठ रहा है, उसे कह सको... संगत-असंगत, सही-गलत, अपनी परवाह किए बिना, बिना किसी जोड़-तोड़ के, बिना किसी गणना के, बिना किसी नियंत्रण के, बिना किसी व्यवस्था के, वह सब कुछ जो तुम्हारे अंदर से बाहर आ रहा है, यदि सदगुरु के सामने तुम वह सब कह सको तो यह एक तरह की "जिबरिश" होगी। यदि तुम नियंत्रित न करो तो वह सब एक पागल आदमी की बातों की तरह होगा।
लेकिन जब एक सदगुरु तुम्हारे निकट होता है और यदि तुम निष्कपट, ईमानदार और सच्चे हो तो अपने मन को बाहर लाओ और तब सदगुरु पिछले दरवाजे से तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होगा। सामने वाले मुख्य द्वार से तुम्हारा मन बाहर जा रहा है और पिछले द्वार से सदगुरु तुम्हारे अंदर प्रवेश कर रहा है। इसलिए जब लॉन में मेरे निकट होते हो, तोईमानदार और सच्चे बने रहो। ऐसे प्रश्न मत करो, जो बुद्धिगत हों, वे निरर्थक हैं। आध्यात्मिक तत्त्व-मीमांसा और सैद्धांतिक दर्शन संसार में सबसे अधिक निरर्थक बात है। कोई भी सैद्धांतिक दर्शन संबंधी प्रश्न मत करो, वे सत्य नहीं हैं और वे तुम्हारे हैं भी नहीं। हो सकता है उनके बारे में तुमने सुना अथवा पढ़ा हो, लेकिन वे तुम्हारे अपने नहीं हैं। अपनी व्यर्थ की बातों को, वे चाहे जो भी हों, बाहर लाओ और उन्हें नियंत्रित करने का प्रयास मत करो। अपनी बातों कोप्रमाण देकर सत्य सिद्ध करने की कोशिश न करो और उन पर रंग-रोगन लगाने का प्रयास मत करो। जितना अधिक संभव हो अपनी बातों को कच्चा, अधूरा और प्रामाणिक बना रहने दो क्योंकि एक सदगुरु के सामने तुम्हें नवजात शिशु की तरह नग्न हो जाना चाहिए। तुम्हें सिद्धांतों के वस्त्र पहनकर स्वयं को छिपाना नहीं चाहिए।

ऐसा करना अपने को उघाड़ना है और यदि तुम अपने हृदय को खोलते हुए बात कर सको, किसी भी चीज़ के लिए व्यर्थ पूछताछ या जांच पड़ताल न करते हुए, केवल अपने हृदय को पूर्णता से खोल सको, तब ही भीतर एक मौन उतरेगा, क्योंकि जब तुमने अपने मन को खुलकर प्रकट कर दिया है और इसके द्वारा तुम एक रेचन क्रिया से गुज़र चुके हो, तो निश्चित ही मौन और शांति उतर आती है। यह बलपूर्वक साधा हुआ, एक नियंत्रित मौन नहीं जो तुम्हारे किसी प्रयास के द्वारा साधा गया हो, यह एक बिल्कुल अलग तरह का मौन है।
जब तुमने अपने मन को पूरी तरह प्रकट कर दिया है, जो भी भीतर छुपा है, उसे उघाड़ दिया है तब तुम्हारे ऊपर एक मौन अवतरित होता है, एक ऐसा मौन आता है जो तुम्हें अभिभूत कर देता है, एक ऐसा मौन जो समझ के पार है, एक ऐसा मौन जो स्वयं तुमसे भी पार है। वह ऐसा मौन है जो किसी व्यक्ति विशेष का न होकर संपूर्ण अस्तित्व का है। तब तुम दोनों ही हो सकते हो। तब तुम एक झेन सदगुरु के साथ मार्ग पर चलते हुए बातचीत भी कर सकते हो और मौन भी रह सकते हो।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
तेरहवां प्रवचन

ईश्वर भी तुम्हें खोज रहा है!

पहला प्रश्नः
ओशो! कल आपने हमें बहुत स्पष्ट रूप से यह बताया था कि हमें सदगुरु द्वारा कही गई बातों का शब्दश: पालन करना आवश्यक है, लेकिन हम आपसे बार-बार, प्रत्येक विवरण पर परामर्श नहीं कर सकते हैं। ऐसे मेंहमारा मन हमेशा सरल मार्ग चुनने के लिए उत्सुक होता है, तब उस परिस्थिति में हम ठीक मार्ग का चुनाव कैसे करें?

वास्तविक समस्या सदगुरु से परामर्श करना नहीं है, बल्कि अधिक ध्यानपूर्ण होने की कला सीखना है, क्योंकि सदगुरु का भौतिक पक्ष उतना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक नहीं है। यदि तुम पूरी तरह से ध्यानपूर्ण हो, तो तुम प्रत्येक क्षण सदगुरु से परामर्श कर सकते हो। तब भौतिक उपस्थिति आवश्यक नहीं है और भौतिक उपस्थिति केवल तभी अति आवश्यक होती है, जब तुम ध्यानपूर्ण नहीं हो। क्योंकि तुम अपने शरीर को ही स्वयं का होना मानते हो और शरीर से एक गहरा संबंध जोड़ लेते हो, इसलिए तुम्हारे मन में सदगुरु का परिचय भी उनके शरीर तक ही सीमित रह जाता है। तुम सोचते हो कि तुम एक शरीर हो और इसलिए सदगुरु भी एक शरीर ही हैं। सदगुरु मात्र एक शरीर नहीं हैं, और जब मैं यह कह रहा हूं कि सदगुरु मात्रशरीर नहीं हैं तो मेरे कहने का यही अर्थ है कि वह समय और स्थान की सीमा में सीमित नहीं हैं।
यह सदगुरु की उपस्थिति में वहां होने का प्रश्न नहीं है। यदि तुम ध्यानपूर्ण हो तो तुम जहां कहीं भी हो, तुम उनकी उपस्थिति में हो। जब सदगुरु शरीर त्याग देते हैं, तब भी उनसे सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। बुद्ध से आज भी सलाह ली जा सकती है और उत्तर प्राप्त होते हैं। ऐसा नहीं है कि बुद्ध कहीं बैठे हुए हैं और तुम्हें उत्तर दे रहे हैं, लेकिन जब तुम गहन ध्यान में होते हो तो तुम ही बुद्ध हो जाते हो। तुम्हारा बुद्ध स्वभाव उत्पन्न होता है, और तुम्हारा बुद्ध-स्वभाव ही तुम्हें उत्तर देता है, चैतन्य ही तुम्हें उत्तर देता है। बुद्ध या चेतनता कहीं भी और कभी भी सीमाबद्ध नहीं हैं। जो व्यक्ति मतांध है उसके लिए बुद्ध कहीं भी नहीं पाए जाते हैं, लेकिन जो भीतरी आंख से देख सकता है और समझ सकता है, उसके लिए वे सर्वत्र उपस्थित हैं।
तुम जहां कहीं भी रहो, तुम अपने सदगुरु के साथ संपर्क में बने रह सकते हो। सदगुरु के पास जाने का कोई बाहरी मार्ग नहीं है, मार्ग तो अंदर है, अपने ही अंदर जाकर सदगुरु से साक्षात्कार होता है। तुम स्वयं अपने ही अंदर जितनी अधिक गहराई में जाते हो, उतनी ही गहराई में तुम सदगुरु में प्रविष्ट हो जाते हो।
तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर तुम्हें मिल रहे होंगे और तुम अनुभव करोगे कि वे उत्तर तुम्हारे मन के द्वारा या तुम्हारी बुद्धि के द्वारा नहीं दिए गए हैं। उन उत्तरों के गुण और लक्षण पूर्ण रूप से भिन्न होंगे। वह गुण इतनी परिपूर्णता से बदल जाते हैं और उनके संदर्भ में कोई भी भ्रम नहीं हो सकता। जब तुम्हारा मन उत्तर देता है, तो तुम अनुभव करते हो कि तुम ही उत्तर दे रहे हो। परंतु जब मन वहां नहीं होता है, तुम पूर्ण रूप से ध्यानपूर्ण होते हो, तो उत्तर तुमसे नहीं आते जैसे मानो वे किसी अन्य व्यक्ति से आते हैं। तुम केवल उसे सुनते हो। यही कुरान का रहस्य है, मुहम्मद ने सोचा कि उन्होंने उसे सुना हैऔर वह ठीक थे। पर मुसलमान गलत हैं जब वह सोचते हैं कि खुदा बोल रहा था। मुहम्मद बिल्कुल ठीक हैं कि उन्होंने कुरान सुना परंतु मुसलमान गलत हैं जब वे सोचते हैं कि खुदा ने कहा। नहीं, कोई भी नहीं बोल रहा था।
वास्तव में, जब तुम्हारा मन मौन होता है, तो उत्तर तुम्हारी आत्मा की वास्तविक गहराइयों से उत्पन्न होते हैं और वह गहराई इतनी अधिक है कि वह

तुम्हारे तथाकथित मन के पार है और तुम अनुभव करते हो कि तुमने उसे सुना है, वह तुम तक आई है और वह तुम पर प्रकट हुई है।
तुम्हारा परिचय सदैव बाहर की परिधि के साथ है और उत्तर तो अंतरतम की गहराई से आते हैं। तुम स्वयं की अथाह गहराई को नहीं जानते हो, इसी कारण तुम अनुभव करते हो कि परमात्मा उत्तर दे रहा है अथवा सदगुरु उत्तर दे रहे हैं। एक तरह से तुम ठीक हो क्योंकि जब उत्तर तुम्हारी अनंत गहराई से आता है तो वह सदगुरु से ही आता है।
हिन्दु हमेशा से ही कहते रहे हैं कि तुम्हारा प्रामाणिक सदगुरु तुम्हारे ही भीतर है और बाहरी सदगुरु केवल तुम्हारे अंदर के इस सदगुरु कोप्रकट करने का कार्य कर रहे हैं, बाहरी सदगुरु केवल भीतरी सदगुरु को कार्यशील बनाने हेतु प्रयास कर रहा है। जिस क्षण भी तुम्हारे अंदर के सदगुरु ने कार्य करना प्रारंभ कर दिया, तो बाहर के सदगुरु का कार्य पूर्ण हो जाता है। बाहर का सदगुरु तो केवल भीतरी सदगुरु का प्रतिनिधि है।
मैं तुम्हारी अनंत गहराई में बसा हुआ हूं। एक बार तुम्हारी वह गहराई क्रियाशील हो जाए तब मेरी शारीरिक उपस्थिति आवश्यक नहीं है। जब मैं अनुभव करता हूं कि तुम्हारी अनंत गहराई ने तुम्हें उत्तर देना प्रारंभ कर दिया है, तब मैं तुम्हें उत्तर देना बंद कर दूंगा। मेरे उत्तर वास्तव में तुम्हारे प्रश्नों से संबंधित नहीं हैं, मेरे सभी उत्तर तो एक प्रयास हैं कि कैसे भीतर से तुम्हें ग्रहणशील बनाया जाए ताकि तुम्हारी आंतरिक गहराई ही तुमसे वार्तालाप करना प्रारंभ कर दे? और इस तरह तुम्हारी चेतना ही तुम्हारी सदगुरु बन जाए।
अधिक ध्यानपूर्ण बनो, अधिक मौन बनो। अधिक से अधिक स्थिरता, गहन मौन और असीम शांति को अपने भीतर प्रवेश करने की अनुमति दो।
आखिर करना क्या है? कैसे अधिक ध्यानपूर्ण बना जाए? एक अर्थ में प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी नहीं किया जा सकता है क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से तुम जो कुछ भी करोगे, मन बीच में आ जाता है। यदि तुम मौन होने का प्रयास करते हो तो तुम नहीं हो सकते, क्योंकि मन प्रयास कर रहा है। जहां भी मन का प्रयास होता है, वह एक उपद्रव होता है। जहां भी मन का हस्तक्षेप होता है वहां अशांति और कोलाहल है। मन ही सबसे बड़ा विघ्न है, मन ही उपद्रव है। इसलिए यदि तुम शांत और मौन होने का प्रयास करते हो, तो मन ही वह प्रयास कर रहा है। अब इस प्रयास के साथ तुम और अधिक कोलाहल उत्पन्न करोगे, और आश्चर्य की बात है कि इस कोलाहल के द्वारा तुम मौन के साथ संबंध बनाने का प्रयास कर रहे हो। अब तुम प्रयास करोगे, नई युक्तियां सोचोगे, भिन्न-भिन्न उपाय करोगे और ऐसा करने से तुम अत्यंत बेचैन हो जाओगे।
मौन के संबंध में कुछ भी नहीं किया जा सकता है। मौन पहले ही से वहां मौजूद है, तुम्हें केवल उसे स्वीकार करना है, उसमें प्रवेश करना है। मौन ठीक सूर्य के प्रकाश के समान है। तुम्हारी खिड़कियां बंद हैं इसलिए तुम धूप को बांधकर अथवा बर्तनों में भरकर घर के अंदर नहीं ला सकते। तुम कदापि ऐसा नहीं कर सकते। यदि तुम ऐसा करने का प्रयास करते हो तो तुम मूर्ख बनोगेऔर अनेक लोग ऐसे ही मूर्ख बन रहे हैं। तुम केवल सहजता से खिड़कियों और दरवाजों को खोल दो। हवा को भीतर की ओर बहने की अनुमति दो। सूर्य की किरणों को अंदर आने दो। उन्हें आमंत्रित करो और उनकी प्रतीक्षा करो। तुम सूर्य के प्रकाश को बाध्य नहीं कर सकते। जब भी तुम बाध्य करते हो, बल का प्रयोग करते हो तो चीज़ें कुरूप हो जाती हैं। यदि एक व्यक्ति मौन और शांत होने के लिए स्वयं को विवश करता है तो उसकी शांति कुरूप, उत्पीड़ित, थोपी हुई और नकली होगी। वह शांति केवल बाहरी परिधि पर ही होगी। भीतर गहराई में वहां कोलाहल होगा, हलचल होगी।
इसलिए करना क्या है? अपने मन को खुला रखो और प्रतीक्षा करो। वृक्षों
की ओर देखो, चीत्कार करते हुए तोतों की ओर देखो। अपनी ओर से कोईप्रयास मत करो, बस उन्हें चुपचाप सुनो। जो कुछ भी तुम्हारे चारों ओर हो रहा है, उसके प्रति केवल एक निष्क्रिय जागरूकता रखो। झील पर चमकता प्रकाश, बहती हुई नदी, चारों ओर की ध्वनियां, बच्चों का खेलना, उनका ठहाके लगाकर हंसना, कानाफूसी और बातों के बीच उनकी दबी हुई हंसी... तुम कुछ मत करो, केवल वहां मौजूद रहो, एक निष्क्रिय उपस्थिति बनी रहे, केवल सुनो, देखो, ग्रहणशील बनो

पर सोचो मत। वृक्षों पर बैठे हुए पक्षी गीत गा रहे हैं, वे एक शोर उत्पन्न कर रहे हैं, तुम बस उसे सुनो।
सोचो मत, क्या हो रहा है? अपने मन में विचारों का क्रम सृजित मत करो।
जो भी हो रहा है केवल उसे होने दो और कभी न कभी तुम अनुभव करोगे कि मन मिट गया है और तुम पर एक गहन शांति और मौन उतर आया है। तुम वास्तव में इसे अनुभव करोगे कि वह शांति और मौन तुम पर उतर रहा है और शरीर के रोम-रोम में प्रविष्ट होता हुआ भीतर गहराई तक जा रहा है।
प्रारंभ में यह अनुभव केवल कुछ क्षणों के लिए होगा, क्योंकि तुम सोच-विचार में बहुत अभ्यस्त हो, किसी शराबी या नशेड़ी व्यक्ति की तरह तुम भी सोच-विचार रूपी नशे के इतने आदी हो गए हो कि केवल कुछ क्षणों के लिए ही एक अंतराल आता होगा और तुम पुनः सोचना शुरू कर देते हो। तुम इस मौन के बारे में भी सोचना शुरू कर सकते हो, जो तुम पर उतर रहा है। तुम सोच सकते हो कि वाह! यह वही मौन है, जिसके बारे में सदगुरु हमेशा बात करते रहे हैं और मैंने इस मौन को नष्ट कर दिया। तुम यह भी सोच सकते हो कि यह वही मौन है जिसे उपनिषदों ने मनुष्य का परम लक्ष्य कहा है, यह वही मौन है जिसके बारे में कवि बात करते रहे हैं और यह वही मौन है जो समझ के पार होता है, मैं इससे चूकता ही गया।
तुम्हारे सोच-विचार के साथ ही, तुम्हारे भीतर सदगुरु ने, कवियों ने और उपनिषदों आदि ने प्रवेश कर लिया, तुम उस मौन से पुनः चूक गए, तुम विफल हो गए और तुमने उसे खो दिया। अब तुम फिर से व्याकुल और क्षुब्ध हो, अब तुम निष्क्रिय नहीं हो, अब तुम सजग नहीं हो। अब वे गीत गाते पक्षी और खेलते हुए बच्चे जैसे तुम्हारे लिए उपरिस्थत ही नहीं हैं, क्योंकि तुम्हारा मन बीच में आ गया है। अब वे सुंदर वृक्ष विलुप्त हो गए हैं। अब सूर्य भी आकाश में नहीं रह गया तथा न ही अब बादल आकाश में तैर रहे हैं। अब तुम खुले हुए नहीं हो, ग्रहणशील नहीं हो, बंद हो गए हो, तुमने अपने भीतर की खिड़कियां और दरवाजे बंद कर लिए हैं।
सोच-विचार, मन को बंद करने का एक ढंग है और निर्विचार हो जाना ही उसे खोलने का ढंग है। जब भी तुम व्यर्थ की सोच में व्यस्त नहीं हो तो तुम खुले हो और जब भी तुम सोच-विचार में संलग्न हो, तो बीच में एक दीवार खड़ी हो गई है। प्रत्येक विचार एक ईंट बन जाता है और सोचने की पूरी प्रक्रिया ही एक दीवार बन जाती है। तब तुम दीवार के पीछे छिप जाते हो, तुम रोते और चीखते हो कि धूप तुम तक क्यों नहीं पहुंच रही है? इसमें धूप का कोई दोष नहीं है बल्कि यह तुम ही हो जिसने अपने चारों ओर दीवार खड़ी कर ली है।
अधिक ध्यानपूर्ण बनो। जब कभी भी तुम्हारे पास कोई अवसर हो, कोई खाली समय हो, तब केवल अपने चारों ओर चीज़ों को घटित होने की अनुमति दो। गहनता से ध्यानपूर्ण होकर देखो, लेकिन सक्रिय मत बनोक्योंकि सक्रिय होने का अर्थ है सोचना। शांत होकर मौन बैठे रहो और चीज़ों को अपने से होने दो। धीरे-धीरे तुम शांत और मौन होते जाओगे।
तब तुम जान पाओगे कि मौन और शांति मन का गुण नहीं है। मन कोशांत नहीं किया जा सकता। मौन और शांति तुम्हारे भीतर स्थित आत्मा का गुण है, तुम्हारे अस्तित्व का गुण है। वह हमेशा वहां मौजूद है, लेकिन मन के शोरगुल और मन की निरंतर बक-बक के कारण तुम उसे सुन नहीं पाते हो। जब कभी भी तुम निष्क्रिय हो जाते हो, निर्विचार हो जाते हो, तुम उसके प्रति सचेत हो जाते हो। तब तुम व्यस्त नहीं हो। उस अव्यस्तता के क्षण में ही ध्यान घटित होता है।
इसलिए चाहे जो भी स्थिति हो, चहल पहल से भरे बाजार में बैठे हुए यह मत सोचना कि आसपास पक्षियों का गीत होना अनिवार्य है, नहीं, ऐसा नहीं है। व्यस्त बाजार का शोरगुल भी उतना ही आकर्षक और सुंदर है, जितना कि पक्षियों का चहचहाना। लोग अपना कार्य कर रहे हैं, बातें कर रहे हैं, चारों ओर शोर है, तुम केवल निष्क्रिय हो कर वहां बैठे जाओ।
दोशब्दों को याद रखो-एक "निष्क्रिय" और दूसरा "सजगता", इन दोनों को सदा याद रखो। निष्क्रिय सजगता ही कुंजी है। निष्क्रिय बने रहो, कोई भी कार्य मत करो, केवल सुनो। सुनना कोई क्रिया नहीं है। किसी भी ध्वनि को सुनना कोई कार्य नहीं है। तुम्हारे कान हमेशा खुले रहते हैं। देखने के

लिए तुम्हें अपनी आंखें खोलनी पड़ती हैं, कम-से-कम आंखों को इतना तो करना ही होता है। पर सुनने के लिए इतना भी नहीं करना पड़ता। कान हमेशा ही खुले रहते हैं और तुम हमेशा ही सुन रहे हो। बस कोई भी कार्य मत करो और केवल सुनो। टिप्पणी मत करो, व्याख्या मत करो, क्योंकि व्याख्या करने के साथ ही विचार शुरू हो जाते हैं। एक बच्चा रो रहा है, अपने भीतर व्याकुल मत हो जाओ कि वह क्यों रो रहा है? दो व्यक्ति आपस में झगड़ रहे हैं तो अपने भीतर यह मत कहो कि वे क्यों झगड़ रहे हैं? मत सोचो कि मुझे जाकर उनका झगड़ा बंद करवाना चाहिएं? नहीं, भीतर कुछ भी मत कहो। केवल सुनो कि क्या हो रहा है? जो भी हो रहा है, केवल उसके साथ बने रहो और अचानक वहां शांति और मौन प्रकट होता है। यह मौन तुम्हारे द्वारा सृजित किए गए मौन से पूर्णतः भिन्न होता है। तुम भी मौन सृजित कर सकते हो, तुम अपने घर के दरवाजे बंद करके बैठ सकते हो, तुम एक माला ले सकते हो और तुम उसके मनकों का जाप कर सकते हो। निश्चित ही एक मौन वहां होगा, लेकिन वह सच्चा मौन नहीं होगा। यह ठीक वैसा ही होगा जैसे एक शरारती बच्चे को कोई नया खिलौना दे दिया गया है, इसलिए वह उससे खेलते हुए अपनी शरारतें भूल जाता है और अपने खेल में ही खो जाता है, तब वह उतना शरारती नहीं रह जाता।
माता-पिता बच्चे कोशरारत से दूर करने के लिए, खिलौने का प्रयोग एक चालबाजी की भांति करते हैं। खिलौने के कारण बच्चा एक कोने में बैठे जाता है और खेल में मस्त हो जाता है और उतनी देर तक मां-बाप बिना किसी परेशानी के अपना कार्य पूरा कर पाते हैं, अब वह बच्चा उनके लिए एक निरंतर बाधा नहीं है। लेकिन वास्तव में, बच्चा शरारत के पार नहीं गया है, केवल उसकी शरारत खिलौने की ओर चली गई है। बस दिशा बदल गई है, शरारत भी वहां है और बच्चा भी वहां है। जल्दी ही जब वह खिलौने से थक जाएगा तो ऊबकर उसे फेंक देगा और शरारत वापस लौट आएगी।
जाप करने वाली मालाएं भी बूढ़ों के खिलौने हैं। ठीक जैसे तुम बच्चे को
एक खिलौना देते हो, बड़े होकर बच्चे भी अपने बड़े-बूढ़ों को यह मालाएं दे देते हैं, जिससे वे अब उनकी ज़िंदगी में दखल न दें, बस एक कोने में बैठ जाएं और अपनी माला के मनके फेरते रहें। लेकिन बूढ़े भी इन मालाओं से थक जाते हैं, तब वे मालाएं बदलते रहते हैं। वे लोग कभी एक सदगुरु के पास जाते हैं तो कभी दूसरे के पास और नया मंत्र पूछते हैं, क्योंकि पुराना मंत्र अब कार्य नहीं कर रहा है। वे एक मंत्र से भी ऊब जाते हैं फिर नए मंत्र की तलाश करते हैं... हालांकि वे मानते हैं कि यही मंत्र जब नया था तो कुछ दिन तक प्रभावशाली था।
मेरे पास अनेक लोग आते हैं और कहते हैं कि हम एक मंत्र का जाप करते रहे हैं, प्रारंभ में तो वह सहायक था, बहुत सहयोगी था, लेकिन अब वह कोई परिणाम नहीं देता। अब उस मंत्र द्वारा कुछ भी अनुभव नहीं होता है और उसे जपते रहना ऊबाऊ सा हो गया है। हम उसे एक कर्तव्य की भांति करते हैं लेकिन उसके प्रति प्रेम विलुप्त हो गया है। यदि हम उसका जाप नहीं करते हैं तो हमें लगता है कि आज हमसे कुछ छूट गया है, चूक हो गई है और यदि हम उसका जाप करते हैं तो कुछ भी प्राप्त नहीं होता है।
इसे ही आदी होना या अभ्यस्त होना कहा जाता है। यदि तुम उसे करते हो तो कुछ भी प्राप्त नहीं होता है और यदि तुम उसे नहीं करते हो तो लगता है कि कुछ छूट गया। ऐसा ही अनुभव एक धूम्रपान करने वाला व्यक्ति महसूस करता है। यदि वह धूम्रपान करता है तो वह जानता है कि कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। वह जानता है कि वह बुद्धिहीन कार्य कर रहा है, मूर्खतापूर्ण कार्य कर रहा है, वह जानता है कि वह केवल धुएं को अंदर-बाहर ले जा रहा है। लेकिन धुंए का यह अंदर और बाहर जाना भी तो माला और जाप की तरह ही है। तुम धुंआ अंदर लेते हो और बाहर निकालते हो... श्वास... प्रश्वास... श्वास... प्रश्वास... श्वासों का यह निरंतर क्रम माला के मनके बदलने जैसा ही है। तुम श्वास के रूप में मनके ही तो बदल रहे हो और इसे भी तुम एक मंत्र बना सकते हो। जब तुम धुएं को अंदर लेते हो तो"राम" कहो और जब तुम धुआं बाहर फेंकते हो, तब भी "राम" कहो, यह माला जपने जैसा बन जाता है।
कोई भी चीज़ जिसे तुम निरंतर दोहरा सकते हो, एक मंत्र बन जाती है। मंत्र का अर्थ है एक विशिष्ट शब्द अथवा किसी विशिष्ट ध्वनि का दोहराव। एक

मंत्र मन को तल्लीन होने में सहायता प्रदान करता है, वह मंत्र एक खिलौना मात्र है। कुछ क्षणों के लिए तुम अच्छा महसूस करते हो, क्योंकि तुम्हारे मन का उपद्रव रूक जाता है और तुम इतने अधिक तल्लीन हो जाते हो कि मन बचता ही नहीं है। यह बलपूर्वक लाया गया मौन है। यह लौकिक और रुग्ण है, यह नकारात्मक है, यह विधायक नहीं है। यह मौन उस तरह का मौन है, जैसा एक कब्रिस्तान में होता है, यह मृत्यु की खामोशी है।
लेकिन मैं जिस मौन के बारे में बात कर रहा हूं, वह गुणात्मक रूप से पूर्णतः भिन्न है। वह मन के उपद्रव को चालाकी से रोकना नहीं है और वह बलपूर्वक थोपी गई व्यस्तता नहीं है, वह कोई मंत्र-सम्मोहन नहीं है। यह एक ऐसा मौन है, जो तुम्हारी निष्क्रिय सजगता में घटित होता है। तुम बिल्कुल निष्क्रिय हो, तुम कोई भी कार्य नहीं कर रहे हो, यहां तक कि अपनी माला भी नहीं जप रहे हो। तुम पूर्ण रूप से निष्क्रिय हो परंतु सजग हो।
स्मरण रहे निष्क्रियता नींद भी बन सकती है। इसी कारण मैं सजगता शब्द
पर बल दे रहा हूं क्योंकि तुम निष्क्रिय होकर नींद में भी जा सकते हो। निद्रा, ध्यान नहीं है। नींद का एक गुण निष्क्रियता है, और नींद का एक अन्य गुण जागरण भी है, यह सजगता का गुण है। ऐसे विश्रामपूर्ण रहना जैसे तुम नींद में होते हो और साथ ही इतना सजग रहना जैसे कि तुम पूर्णतः जागे हुए हो।
नींद का एक गुणधर्म ध्यान में नहीं है, वह है अचेतनता और उसे यहां होना भी नहीं चाहिए, क्योंकि ध्यान अचेतन नहीं हो सकता। जागरण का भी एक गुणधर्म ध्यान में नहीं होता है, वह है व्यस्तता; क्योंकि यदि तुम व्यस्त हो तो मन कार्य कर रहा है और तुम विचारों से घिरे हुए हो।
जब तुम जाग्रत अवस्था में हो तो वहां दो चीज़ें होती हैं:सजगता और व्यस्तता। जब तुम नींद की अवस्था में हो तो वहां भी दो चीज़ें होती हैं :निष्क्रियता और अचेतना। इन दोनों चीज़ों में से एक-एक को चुन कर ध्यान निर्मित होता है:एक चीज़ जागरण से यानि "सजगता" और एक चीज़ नींद से यानि "निष्क्रियता"। यदि तुम दूसरे दो अंश, व्यस्तता और अचेतनता चुन लेते हो तो तुम पागल हो जाते हो। वे दो तत्त्व व्यस्तता और अचेतनता पागलपन उत्पन्न करते हैं, तुम्हें पागल बनाते हैं। निष्क्रियता और सजगता तुम्हें ध्यानपूर्ण बनाती हैं, एक बुद्ध पुरूष बनाती हैं। तुम्हारे पास यह चारों तत्त्व हैं, इनमें से दो को मिलाओ तो तुम पागल बन जाओगे और अन्य दो को मिलाओ तो तुम ध्यानपूर्ण बन जाओगे।
इसे याद रखो-मैं बार-बार कहता हूं कि जब तुम्हारा हृदय खुला है, उस समय शांति, मौन और परमानंद तुम्हें और अधिक फैलाव देते हैं, लेकिन यह शांति और मौन तुम्हारे द्वारा लाया गया नहीं है। यह तो बेफिक्री की एक स्थिति में उतरता है। यह विश्रामपूर्ण अवस्था में तुम्हे घटित होता है। यह तुम तक आता है। लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि हम लोग परमात्मा की खोज कर रहे हैं, कैसे उस तक पहुंचा जाएं? और मैं उनसे कहता हूं कि तुम न उसकी खोज कर सकते हो और न ही तुम उस तक पहुंच सकते हो क्योंकि तुम उसे जानते नहीं हो। तुम कैसे पहचानोगे कि वह ही परमात्मा है? तुम उसे नहीं जानते हो। तुम कैसे आगे बढ़ोगे? तुम कैसे मार्ग का चुनाव करोगे? तुम उसे नहीं जानते हो। तुम कैसे निर्णय करोगे कि यही उसका घर है और यही उसका निवास स्थान है? नहीं, तुम ऐसा नहीं कर सकते। तुम परमात्मा की खोज नहीं कर सकते। वस्तुतः इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि परमात्मा हमेशा ही तुम्हारे निकट है, वह तुम्हारे ही भीतर है। जब भी तुम उसे अनुमति दोगे वह तुम्हें खोज लेता है, वह तुम तक पहुंच जाता है। परमात्मा तुम्हारी तलाश में है। परमात्मा हमेशा ही तुम्हारी खोज में रहता है। तुम्हारे द्वारा उसे खोजे जाने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।
तुमने खोजा और तुम चूक जाओगे।
उसे खोजो मत। पूरी तरह से निष्क्रिय और सजग बने रहो, ताकि जब कभी भी वह
आए तो तुम ग्रहणशील बने रहो। अनेक बार वह आता है और तुम्हारा द्वार खटखटाता है, लेकिन तुम गहरी नींद में सोये हुए होते हो अथवा यदि तुम खटखटाने की वह ध्वनि सुन भी लो तो तुम अपने ढंग से उसकी व्याख्या कर लेते

हो। तुम सोचते हो कि तेज़ हवा चल रही है या किसी अनजबी ने दरवाजा खटखटाया है और वह स्वयं ही चला जाएगा, मुझे अपनी नींद खराब करने की क्या आवश्यकता है? तुम्हारी अपनी व्याख्याएं ही तुम्हारी शत्रु हैं और तुम कुशल व्याख्याकार हो। जो कुछ भी होता है तुम तुरंत उसकी एक व्याख्या गढ़ लेते हो। तुम्हारा मन तुरंत कार्य करना शुरू कर देता है, वह मंथन करता है और तुम परिस्थिति को तुरंत ही बदल देते हो। तुम उसे अपने मनपसंद रंग से ढक देते हो और ऐसा भिन्न अर्थ दे देते हो जो कभी था ही नहीं। तुम अपनी छवि की छाप उस पर छोड़ देते हो, तुम उसे दूषित कर देते हो, तुम उसे नष्ट कर देते हो।
सत्य को किसी भी व्याख्या की आवश्यकता नहीं होती है। सत्य के बारे में सोचने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। सोच-विचार की प्रक्रिया के द्वारा कोई भी सत्य तक नहीं पहुंचा है। यही कारण है कि पूरी फिलॉसफी नकली है और उसका मिथ्या होना सुनिश्चित है। कोई भी तत्त्वज्ञान सत्य हो ही नहीं सकता। दार्शनिक झगड़ते रहते हैं और वे यह सिद्ध करने के संघर्ष में लगे रहते हैं कि उनका ही ज्ञान सत्य है। कोई भी तत्त्वज्ञान सत्य हो ही नहीं सकता। सत्य को किसी तत्त्वज्ञान की आवश्यकता नहीं है। फिलॉसफी का अर्थ है किसी संदर्भ में सोच-विचार करना, तर्क सहित प्रमाणों से सिद्ध करने का प्रयास करना और अपने ढंग से तथ्यों की व्याख्या करना।
धर्म कहता है, जो भी है, उसको घटित होने की अनुमति दो, उसे स्वीकार करो। सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जो तुम कर सकते हो, वह यही है कि कृपया उसमें बाधा मत बनो, केवल उसे घटित होने दो। सजग और निष्क्रिय बने रहो और तब तुम्हें मेरे पास आने की कोई आवश्यकता नहीं है, मैं ही तुम्हारे पास आऊंगा। कई बार पहले भी मैं तुम्हारे पास पहुंचा हूं... जब तुम मौन थे। इसलिए यह कोई सिद्धांत नहीं है। तुममें से अनेक लोग इसे अनुभवगत रूप से भी जानते हैं, लेकिन तुम इसकी भी व्याख्या करते हो।
लोग मेरे पास आते हैं और वे कहते हैं कि आज सुबह ध्यान करते हुए मैंने अचानक आपकी उपस्थिति को अनुभव किया, लेकिन मैंने सोचा कि यह मेरे मन की कल्पना हो सकती है। कुछ लोग कहते हैं किपिछली रात अचानक मैंने एक उपस्थिति का अनुभव किया, मैं सजग हो गया और तब मैंने सोचा कि हो सकता है उधर से कोई गुज़रा हो अथवा कमरे में आने वाली तेज हवा ने कागजों को तितर-बितर कर दिया हो अथवा केवल कोई बिल्ली ही गुज़री हो। इसलिए जो मैं कह रहा हूं वह तुम में से अनेक लोगों ने पहले ही अनुभव किया है। इसी वजह से मैं यह कह रहा हूं अन्यथा मैं इसे नहीं कहता।
इसलिए जब तुम किसी दिव्य उपस्थिति का अनुभव करो तो बाधा मत बनो, व्याख्या मत करो और उसे घटित होने दो, उसको स्वीकार करो। यदि तुम उसे स्वीकार करते हो तो वह अनुभूति और अधिक सघन तथा घनीभूत होती जाएगी। यह संभव है कि जैसे मैं यहां बैठा हूं वैसे ही वास्तविकता में वहां भी उपस्थित होऊंगा बल्कि इससे भी कहीं अधिक क्योंकि यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम उस उपस्थिति को कितनी सत्यता से स्वीकार करते हो और उसे किस सीमा तक घटित होने की अनुमति देते हो। तब तुम्हें अपने प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे। अधिक ध्यानपूर्ण बनो और तब तुम मेरे करीब हो। जब तुम समग्र रूप से ध्यानपूर्ण होवोगे, तब तुम वही हो, जो मैं हूं। तब वहां कोई भी अंतर नहीं है।
एक बात और है कि जितना अधिक तुम ध्यान करते हो उतना ही प्रश्न पूछना
कम हो जाएगा। प्रश्न स्वतः ही समाप्त हो जाएंगे। सभी प्रश्न एक गैर-ध्यानी चित्त की उपज हैं। ध्यान के अभाव में अधिक से अधिक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। यदि एक प्रश्न का उत्तर मिल भी जाए तो उस उत्तर में से ही दस प्रश्न और उत्पन्न हो जाएंगे। मनुष्य का मन, प्रश्नों का सृजन करने वाली एक असाधारण शक्ति है जो प्रश्नों का निमार्ण करती रहती है। तुम एक उत्तर देते हो और मन उस पर हावी हो जाता है, वह उस उत्तर के कई टुकड़े करके अन्य दस प्रश्न सृजित कर लेता है। जब तुम ध्यानपूर्ण होते हो तो कम-से-कम प्रश्न पैदा होंगे।
यह तुम्हें विरोधाभासी प्रतीत होगा, लेकिन यह सत्य है और मुझे इसे कहना ही पड़ेगा कि जब प्रश्न होते हैं तो कोई भी उत्तर नहीं होंगे और जब कोई प्रश्न नहीं है केवल तब ही उत्तर प्राप्त होता है। उत्तर तभी प्राप्त

होगा जब तुम प्रश्नों से रहित हो और ध्यान के द्वारा ही तुम्हारे भीतर यह प्रश्नहीनता घटितहोगी।
यह मत सोचो कि बहुत अधिक प्रश्नों की भांति बहुत अधिक उत्तर भी हैं।
नहीं, उत्तर केवल एक ही है। प्रश्न लाखों हैं परंतु उत्तर एक ही है।
बीमारियां लाखों हैं, पर दवा एक ही है। केवल एक और सब कुछ हल हो जाता है।
परंतु वह "एक" तुम्हारे अनुभव में नहीं आता है क्योंकि तुम उस "एक" को घटित होने की अनुमति नहीं देते हो। तुम भयभीत हो जाते हो।
इसी बात को सीखना है। केवल यही एक अनुशासन है, जो मैं तुमसे चाहता हूं
कि तुम अपने भय को विसर्जित करो और उस "एक" अनुभव को घटित होने की अनुमति दो। नदी प्रवाहित हो रही है, उसे धकेलने का असंभव कार्य मत करो। उसकी कोई आवश्यकता नहीं है, वह स्वयं ही प्रवाहित हो रही है। तुम बस तट पर बैठकर प्रतीक्षा करो और उसे बहने दो। यदि तुम पर्याप्त साहसी हो तो स्वयं को नदी में गिरा दो और उसके साथ बहो। तैरो मत, क्योंकि तैरने का अर्थ है संघर्ष करना, केवल बहो।
वास्तव में, तब तुम किसी लक्ष्य का पीछा नहीं कर सकते, क्योंकि तुम्हारा और नदी का लक्ष्य समान नहीं हो सकता। तब तुम्हें निराशा होगी। यदि तुम तैर रहे हो या संघर्ष कर रहे हो तो तुम एक लक्ष्य का पीछा कर सकते हो। तुम धारा के विरुद्ध ऊपर की ओर भी तैर सकते हो, तब वहां एक असाधारण संघर्ष होगा। जब तुम लड़ते हो अथवा संघर्ष करते हो तो तुम्हारा अहंकार मजबूत हो जाता है और तुम नदी के विरुद्ध जीवंत होने का अनुभव करते हो। लेकिन वह जीवंतता क्षणिक है। कभी न कभी तुम थक जाओगे। कभी न कभी तुम समाप्त हो जाओगे और नदी तुम्हें अपने में समेट लेगी।
गंगा नदी के तट पर ग्रामीण लोग मृत शरीरों को लाते हैं और उन्हें गंगा में बहा देते हैं। लेकिन जब तुम मृत हो तो तुम्हें नदी में बहा देना व्यर्थ है, जब तुम मुर्दा हो तो नदी के साथ ही बहोगे, लेकिन तब इस का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि तुम अब जीवित ही नहीं हो।
मैं यही कर रहा हूं कि मैं तुम्हें गंगा में जीवित छोड़ रहा हूं। यदि तुम जीवंत, सचेत और पूर्ण रूप से सजग रह कर बह सको तो तुम नदी ही बन जाओगे और नदी जहां कहीं भी पहुंचती है, वही तुम्हारी मंज़िल होगी, वही तुम्हारा लक्ष्य होगा। तब तुम्हारी रूचि, तुम्हारी उत्सुकता इस बात में नहीं होगी कि नदी कहां पहुंचाएगी? प्रत्येक क्षण प्रामाणिक रूप से बहना ही परमानंद बन जाता है। प्रत्येक क्षण सजगता से बहना और जीवंत बने रहना ही मुख्य लक्ष्य बन जाता है। तब प्रत्येक क्षण ही मंजिल होती है। साधन ही साध्य बन जाता है और प्रत्येक क्षण शाश्वत बन जाता है।
हां, तुम्हें सदगुरु का संपूर्ण रूप से अनुसरण करना है। कभी ऐसा भी हो सकता है, जब तुम भौतिक रूप से उनका परामर्श न ले सको और कभी न कभी तोसदगुरु शरीर से भी विदा हो जाएगा। तब भौतिक रूप से परामर्श लेने की कोई भी संभावना नहीं होगी। बेहतर यही है कि तुम सदगुरु के अशरीरी रूप के साथ लयबद्ध हो जाओ, अन्यथा तुम रोते और बिलखते ही रहोगे।
मेरा शरीर किसी भी क्षण मिट सकता है। वास्तव में अब इसे और अधिक ढोने
की कोई आवश्यकता भी नहीं है, इसे केवल तुम्हारे लिए ही ढोया जा रहा है। यदि तुम मेरे अशरीरी अस्तित्व के साथ लयबद्ध नहीं होते हो तो कभी न कभी तुम उदासी और निराशा से भर जाओगे। तब उस समय मेरे अशरीरी रूप से संबंध स्थापित कर पाना बहुत कठिन होगा।
इसलिए तुम्हें सजग और सचेत करने हेतु मैं तुम्हारे साथ अपने भौतिक संपर्क कोधीरे-धीरे तोड़ रहा हूं ताकि तुम मेरे अशरीरी रूप से लयबद्ध हो सको। तुम अरूप के साथ लयबद्ध हो सकते हो, यह कठिन नहीं है। अधिक ध्यानपूर्ण बनो और सबकुछ स्वतः ही घटित होना प्रारंभ हो जाएगा।

दूसरा प्रश्नः
ओशो! हमारेपास स्त्रैण ऊर्जा के संदर्भ में कुछ प्रश्नहैं। कुछ स्त्रियां कहती हैं कि आपसे मिलने के बाद अब कोई भी नश्वर व्यक्ति उन्हें पर्याप्त रूप से संतुष्ट कर पाने में सक्षम नहीं है। यद्यपि अभी भी उन स्त्रियों की शारीरिक इच्छाएं विद्यमान हैं। कुछ अन्य स्त्रियां यह भी

कहती हैं कि जब से वे आपसे मिली हैं, उसके बाद से वे स्वयं को अधिक प्रेमपूर्ण अनुभव करने लगी हैं। गुरजिएफ ने कहा है कि पुरूष के बिना एक स्त्री बोध को उपलब्ध नहीं हो सकती है। अतः स्त्रैण ऊर्जा के बारे में कृपया हमें कुछ बताएं।

हां, गुरजिएफ ने कहा है कि एक स्त्री केवल एक पुरुष के द्वारा ही बोध
को उपलब्ध हो सकती है, और उसने ठीक कहा है। वह ठीक है, क्योंकि स्त्रैण ऊर्जा पुरुष ऊर्जा से भिन्न है। यह ठीक ऐसा है जैसे मानो कोई व्यक्ति यह कहे कि केवल एक स्त्री ही बच्चे को जन्म दे सकती है। एक पुरुष किसी बच्चे को जन्म नहीं दे सकता है, पुरूष केवल एक स्त्री के माध्यम से ही बच्चे को जन्म दे सकता है। स्त्री की शारीरिक बनावट में गर्भाशय मौजूद है परंतु पुरुष का शारीरिक ढांचा बिना गर्भाशय के होता है। पुरूष एक बच्चे को केवल स्त्री के माध्यम से ही प्राप्त कर सकता है। ठीक ऐसा ही, विपरीत क्रम में, आध्यात्मिक जन्म की प्रक्रिया में घटित होता है। एक स्त्री केवल एक पुरुष के द्वारा ही बुद्धत्व कोप्राप्त कर सकती है। स्त्री और पुरूष की शारीरिक बनावट की भांति उनकी आध्यात्मिक ऊर्जा में भी अंतर है।
क्यों? ऐसा क्यों होता है? स्मरण रहे, यह प्रश्न समानता अथवा असमानता
का नहीं है। यह प्रश्न केवल भिन्नता का है। स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा निम्नतर नहीं हैं, क्योंकि वे सीधे ही ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकती हैं और पुरुष भी स्त्री की अपेक्षा निम्नतर नहीं है क्योंकि वह एक बच्चे कोप्रत्यक्ष रूप से जन्म नहीं दे सकता है। स्त्री एवं पुरूष दोनों ही भिन्न हैं। वहां समानता अथवा असमानता का कोई प्रश्न नहीं है, वहां मूल्यांकन का भी कोई प्रश्न नहीं है। वे दोनों सामान्य रूप से भिन्न हैं और यह एक तथ्य है।
एक स्त्री के लिए प्रत्यक्ष रूप से बुद्धत्व को उपलब्ध होना कठिन क्यों है? और पुरुष के लिए प्रत्यक्ष रूप से बुद्धत्व को उपलब्ध होना क्यों संभव है? आधारभूत रूप से बुद्धत्व प्राप्त करने के दो ही मार्ग हैं, मूलभूत रूप से केवल दो ही उपाय हैं। एक है ध्यान और दूसरा है प्रेम। तुम इन्हें "ज्ञानयोग" और "भक्तियोग" भी कह सकते हो-प्रज्ञा का मार्ग और प्रेम का मार्ग। मौलिक रूप से केवल यही दो ही मार्ग हैं। प्रेम में किसी दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता होती है और ध्यान अकेले ही किया जा सकता है। पुरुष ध्यान के द्वारा उपलब्ध हो सकता है और इसी कारण वह प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध हो सकता है। वह अकेला रह सकता है। वह अकेला ही अपने भीतर की गहराई तक उतर सकता है। पुरुष में स्वाभाविक रूप से अकेलापन होता है। स्त्री के लिए अकेले रहना कठिन है, बहुत कठिन है और लगभग असंभव है। उसका पूरा अस्तित्व ही प्रेम की एक गहन प्यास है और प्रेम के लिए दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता होती है। यदि दूसरा वहां मौजूद न हो तो तुम कैसे प्रेम कर सकते हो? यदि दूसरा नहीं है तो तुम ध्यान अवश्य ही कर सकते हो क्योंकि इस में कोई भी समस्या नहीं है।
स्त्री या स्त्रैण ऊर्जा प्रेम के माध्यम से ही ध्यान तक पहुंचती है
और पुरूष ऊर्जा ध्यान के माध्यम से प्रेम तक पंहुचती है। महात्मा बुद्धध्यान के द्वारा ही एक असाधारण प्रेमपूर्ण शक्ति बन गए। जब बुद्ध अपने महल में वापिस लौटे तो उनकी पत्नी बहुत नाराज़ थी, स्वभाविक भी है क्योंकि बारह वर्षों तक बुद्ध ने अपना चेहरा नहीं दिखलाया था। एक रात वह अचानक कुछ कहे बिना चले गए थे। जब उनकी पत्नी सो रही थी तब वह एक कायर के समान पलायन कर गए थे।
यह सत्य है कि बुद्ध की पत्नी यशोधरा ने शायद उन्हें जाने की अनुमति
दे दी होती। वह एक साहसी स्त्री थी। यदि बुद्ध ने उससे पूछा होता तो वह जाने की अनुमति दे देती। कोई भी समस्या नहीं होती, लेकिन बुद्ध ने उससे नहीं पूछा। बुद्ध भयभीत थे कि कुछ समस्या हो सकती है, वह रोना या चीखना या चिल्लाना शुरू कर सकती है। वास्तव में, भय उसके कारण नहीं था, भय तो स्वयं बुद्ध के ही अंदर था। वह भयभीत थे कि रोती-चीखती हुई यशोधरा को छोड़ना उनके लिए कठिन होगा। भय हमेशा स्वयं से ही होता है। यह बहुत बड़ी निर्दयता होगी और वह इतने निर्दयी नहीं हो सकते थे, इसलिए अच्छा यही था कि यशोधरा को सोया

हुआ छोड़कर वे पलायन कर जाएं। इसलिए वह महल छोड़कर चले गए और बारह वर्षों बाद वापिस लौटे।
यशोधरा ने उनसे कई बातें पूछीं। उनमें से एक यह थी-"मुझे बतलाइए, जो कुछ भी आपने वहां जंगल में उपलब्ध किया, क्या आप यहां मेरे साथ रहते हुए उसे प्राप्त नहीं कर सकते थे? अब आप उपलब्ध हो चुके हैं, इसलिए यह बात मुझे बता सकते हैं।" कहा जाता है कि बुद्ध मौन रहे। लेकिन मैं उत्तर देता हूं कि बुद्ध उपलब्ध नहीं हो सकते थे, क्योंकि एक व्यक्ति जो गहन प्रेम में हो... वे यशोधरा के साथ गहराई तक प्रेम में डूबे थे और उनका संबंध बहुत घनिष्ठ था। यदि यशोधरा के साथ प्रेम का प्रगाढ़ संबंध न होता, यदि वह एक सामान्य हिन्दू पत्नी होती, जिसका पति से कोई भी प्रेम संबंध नहीं होता है, तब बुद्ध उसके साथ रहते हुए भी उपलब्ध हो सकते थे।
तब वास्तव में कोई समस्या न थी। दूसरा केवल परिधि पर है, तुम उससे संबंधित नहीं हो और यदि तुम संबंधित नहीं हो तो दूसरे का वजूद ही नहीं है। वह केवल एक भौतिक उपस्थिति के रूप में परिधि पर उपस्थित रहता है।
लेकिन बुद्ध गहन प्रेम में थे और एक पुरुष के लिए, जबकि वह प्रेम में है, ध्यान को उपलब्ध होना कठिन हो जाता है। यह समस्या बहुत कठिन है, क्योंकि जब कोई पुरूष गहन प्रेम में है और वह मौन में बैठता है, तो उसके मन में तुरंत उसका प्रेमपात्र आ जाता है और उसका पूरा अस्तित्व उस के चारों ओर घूमना शुरू हो जाता है। यही भय था और इसी कारण बुद्ध ने पलायन किया। इससे पूर्व किसी ने भी इस बारे में बातचीत नहीं की है, लेकिन बुद्ध ने महल से, पत्नी से, बच्चे से इसलिए पलायन किया, क्योंकि वह वास्तव में उनसे प्रेम करते थे। यदि तुम एक व्यक्ति से प्रेम करते हो तो कभी न कभी अपनी व्यस्तता में उसे भूल सकते हो, लेकिन जब तुम व्यस्त नहीं हो तो दूसरे की याद तुरंत आएगी और तब ऐसे में दिव्यता कोप्रवेश करने का मार्ग नहीं मिल पाता है।
जब तुम व्यस्त होते हो, दुकान पर कार्य कर रहे हो या जब बुद्ध अपने सिंहासन पर बैठे हुए राज्य का काम-काज देख रहे होते, तब यह ठीक था, वह यशोधरा को भूल सकते थे, लेकिन जब वह व्यस्त नहीं थे तो वहां उनके भीतर यशोधरा मौजूद थी। भीतर के शून्य को, उस अंतराल को यशोधरा द्वारा भरा जा रहा था और दिव्यता के आने के लिए कोई भी रास्ता न बचा था।
पुरुष प्रेम के द्वारा उस दिव्यता को उपलब्ध नहीं हो सकता। उसकी पूरी ऊर्जा स्त्रैण ऊर्जा से भिन्न है। पुरूष को पहले ध्यान को उपलब्ध होना चाहिए, तब उसे प्रेम घटित होता है। तब कोई भी समस्या नहीं है। पहले उसे दिव्यता तक पहुंचना चाहिए, तब प्रेमिका भी दिव्य हो जाती है।
बुद्ध बारह वर्षों बाद वापस लौटे। अब वहां कोई समस्या नहीं है, अब यशोधरा में भी परमात्मा है। परंतु इसके पहले यशोधरा कुछ और ही थी और उसमें परमात्मा को खोजना कठिन था। अब समग्र रूप से सर्वत्र परमात्मा है, सर्वस्व परमात्मा है, अब उस पुरानी यशोधरा के लिए कोई स्थान ही नहीं बचा है।
स्त्रैण उर्जा इसकी ठीक विपरीत स्थिति में होती है। वह ध्यान नहीं कर सकती, क्योंकि उसका पूरा अस्तित्व दूसरे के प्रति एक गहन प्यास है। वह अकेली नहीं रह सकती। जब कभी भी वह अकेली होती है, वह दुखी होती है। इसलिए यदि तुम कहते हो कि अकेला होना एक आनंद है, अकेले होने में परमानंद है, तोस्त्री इसे नहीं समझ पाती है। पूरे संसार में एकांत साधना पर जो बल दिया गया है, वह केवल पुरूष प्रवृत्ति के कारण ही है क्योंकि ज्यादातर खोजी पुरुष ही हैंजैसे बुद्ध, महावीर, जीसस और मुहम्मद आदि। ये सभी एकांत में गए और केवल उस एकांत में ही बोध को उपलब्ध हुए। अतः इन सभी ने एक परिवेश निर्मित कर दिया।
एक स्त्री जब कभी भी अकेली होती है, वह भीषण वेदना का अनुभव करती है। यदि उसका प्रेमी है, चाहे वह मन में, उसकी यादों में ही क्यों न हो, वह प्रसन्न रहती है। यदि कोई व्यक्ति उसे प्रेम करता है या किसी के द्वारा उसे प्रेम किया जाता है, यदि एक स्त्री के चारों ओर प्रेम विद्यमान होता है तो वह प्रेम ही उसकी वृद्धि में सहायक होता है, वह प्रेम उसका सूक्ष्म भोजन है, वह प्रेम उसका पोषण करता है। जब कभी एक स्त्री यह अनुभव करती है

कि उसके पास प्रेम नहीं है, तो वह प्रेम की भूख में आतुर हो जाती है, प्रेम के अभाव में वह घुटन महसूस करती है और उसका पूरा अस्तित्व सिकुड़ जाता है।
इसलिए एक स्त्री कभी यह सोच भी नहीं सकती कि अकेलापन या एकांत या ध्यान भी आनंदपूर्ण हो सकता है।
स्त्रैण ऊर्जा ने प्रेम, भक्ति और समर्पण का मार्ग सृजित किया है। स्त्रैण ऊर्जा हेतु एक आलौकिक या एक दिव्य प्रेमी भी पूर्ण रूप से पर्याप्त है, उसे किसी भौतिक प्रेमी को खोजने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। जैसे मीरा के लिए कृष्ण एक दिव्य प्रेम-पात्र थे, वहां कोई भी समस्या नहीं है, क्योंकि मीरा के लिए उसका प्रेमी उसके मन में सदा ही मौजूद है। हो सकता है कि कृष्ण न रहे हों, कृश्ण केवल पौराणिक कथाओं के काल्पनिक पात्र हों, लेकिन मीरा के लिए वह हैं, वह विद्यमान हैंऔर मीरा प्रसन्न है, मीरा मस्त है, वह नाच सकती है, वह गीत गा सकती है और इसी प्रेम में वह विकसित हो रही है।
यही एक विचार, यही प्रामाणिक धारणा, यही वास्तविक अनुभव कि दूसरा मौजूद है और उसके आसपास प्रेम बह रहा है... एक स्त्री को संतुष्टि का और आंतरिक समृद्धि का अनुभव देता है। अपने चारों ओर के इस प्रेम के बहाव के कारण ही वह प्रसन्न है, वह जीवंत है। केवल इसी प्रेमी के द्वारा एक दिन वह ऐसी स्थिति में आ जाएगी जब प्रेमी और प्रेमिका एक हो जाते हैं, तब ध्यान घटित होगा।
स्त्रैण ऊर्जा के लिए ध्यान, केवल प्रेम के गहनतम मिलाप में ही संभव होता है। प्रेम के उस गहनतम क्षण में ही उसे ध्यान घटित होता है और तब वह अकेली रह सकती है, तब वहां कोई भी समस्या नहीं है, प्रेमी और प्रेमिका एकदूसरे में विलय हो गए, अब केवल प्रेम ही बचा, वह प्रेम भीतर आविष्ट हो गया है। मीरा, राधा अथवा थेरेसा... इन सभी स्त्रियों ने कृश्ण या जीसस के प्रेम के द्वारा ही उस शिखर को पाया।
यह मेरा स्वयं का अनुभव है कि जब भी कोई पुरुष खोजी मेरे पास आता है,
तो उसकी दिलचस्पी ध्यान में होती है और जब कभी कोईस्त्री साधक मेरे पास आती है तो उसकी दिलचस्पी प्र्रेम में होती है। स्त्री की अभिरुचि ध्यान के प्रति केवल तभी उत्पन्न की जा सकती है जब मैं कहता हूं कि इस ध्यान के द्वारा ही प्रेम घटित होगा। लेकिन आधारभूत रूप से उसकी कामना प्रेम की ही होती है। एक स्त्री के लिए प्रेम ही परमात्मा है।
इस भेद को समझना होगा, बहुत गहराई से समझना होगा, क्योंकि प्रत्येक चीज़ इस पर ही निर्भर है। अतः गुरजिएफ ठीक कहता है। स्त्रैण ऊर्जा प्रेम करेगी और इस प्रेम के द्वारा ही ध्यान तथा समाधि की खिलावट होगी। सतोरी घटित होगी, लेकिन नीचे बहुत गहराई में... जड़ों में प्रेम ही होगा और सतोरी फूल के रूप में प्रकट होगी। पुरुष ऊर्जा के लिए ध्यान, समाधि तथा सतोरी जड़ों में होगी और फूल के रूप में प्रेम खिलेगा, यह प्रेम सही मायने में एक खिलावट होगा।
जब स्त्री साधिकाएं मेरे पास आती हैं तो ऐसा होना सुनिश्चित है कि वे अधिक प्रेम का अनुभव करेंगी, लेकिन तब भौतिक रूप से उनका सहचर उन्हें कम संतुष्ट कर पाएगा। जब भी गहन प्रेम होगा, भौतिक प्रेमालाप असंतोषजनक ही बना रहेगा, क्योंकि भौतिक प्रेमालाप तो केवल परिधि का या शरीर का कार्य पूरा कर सकता है, वह केंद्र को परिपूर्ण नहीं कर सकता। इसी कारण भारत जैसे प्राचीनतम देशों में हमने कभी भी प्रेम करने की अनुमति नहीं दी, हमने परिवार द्वारा आयोजित विवाह-व्यवस्था को ही स्वीकृती दी। यदि प्रेम की अनुमति दे दी जाए तो कभी न कभी जीवन साथी के प्रति विरक्ति पैदा हो जाएगी और तब अवसाद तथा निराशा होगी।
आज पश्चिमी देश व्याकुल और क्षुब्ध है। वहां कोई भी संतुष्टि हो ही नहीं सकती है। एक बार तुम गहन प्रेम की अनुमति दे देते हो, तब एक सामान्य व्यक्ति उस गहन कामना को परिपूर्ण नहीं कर सकता है। एक सामान्य व्यक्तिशारीरिक कामना की पूर्ति कर सकता है, वह उथली और बाहरी इच्छा कोशांत कर सकता है लेकिन वह अंतरतम की गहराई को या आत्मिक गहराई को स्पर्श नहीं कर सकता है। यदि एक बार वह आत्मिक गहराई क्रियाशील हो जाए, यदि एक बार

उस गहनतम तल में हलचल हो जाए, तो फिर परमात्मा ही उसे संतुष्ट कर सकता है, परमात्मा के सिवा अन्य कोई भी नहीं... ।
इसलिए जब स्त्री साधिकाएं मेरे पास आती हैं तो उनको गहराई तक धक्का लगता है। वे एक दिव्य प्रेरणा का अनुभव करती हैं और उनमें एक नूतन आलौकिक प्रेम उत्पन्न हो जाता है। अब उनके पति अथवा उनके प्रेमी अथवा उनके साथी उन्हें संतुष्ट करने में समर्थ न हो सकेंगे। अब कोई उच्चतम गुणात्मक सत्ता ही उन्हें संतुष्ट कर सकती है। हां, ऐसा ही होता है।
इसलिए तुम्हारे प्रेमी अथवा तुम्हारे पति को अधिक ध्यानपूर्ण बनना होगा जिससे उनके अस्तित्व में उच्चतम दिव्य गुण सृजित हो सकें, केवल तभी वह तुम्हारी इच्छा पूरी कर सकेगा अन्यथा रिश्ता टूट जाएगा। वह सेतु ज्यादा देर तक नहीं बना रहेगा और तुम एक नया मित्र खोजोगे। यदि किन्हीं कारणों से एक नया मित्र खोजना असंभव हो, तब तुम्हें परमात्मा से प्रेम करना होगा। जैसा मीरा ने किया। तब स्थूल प्रेम को भूल जाओ, अब प्रेम अभिव्यक्त रूप में तुम्हारे लिए नहीं है, अब सूक्ष्म से... अरूप से प्रेम करते हुए उसमें डूब जाओ।
एक अलग ढंग से, पुरुष खोजियों के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है। जब वे मेरे पास आते हैं तो वे अधिक ध्यानपूर्ण बन जाते हैं। जब वे अधिक ध्यानपूर्ण हो जाते हैं, तो उनके साथी के साथ बना हुआ पुराना सेतु टूटने लगता है, वह डोलने लगता है। अब यहां उनकी प्रेमिका अथवा पत्नी को विकसित होना होगा अन्यथा उनका रिश्ता एक बड़े संकट में पड़ जाएगा।
यह स्मरण रहे कि हमारे सभी संबंध या तथाकथित संबंध केवल एक समायोजन हैं, एक तालमेल हैं। यदि संबंध में कोई एक बदलता है तो तालमेल टूट जाता है। प्रयोजन यह नहीं है कि ऐसा अच्छे के लिए होता है अथवा बुरे के लिए। लोग मेरे पास आते हैं और वे कहते हैं कि यदि ध्यान उच्चतम गुणों को विकसित करता है, तब रिश्ता क्यों टूट रहा है? प्रश्न यह नहीं है। वास्तव में, वह संबंध दो व्यक्तियों के मध्य, जैसे कि वह पहल थे, एक समझौता था, एक समायोजन था। अब एक बदल गया है तो दूसरे को उसके साथ विकसित होना होगा, अन्यथा कठिनाई होगी और सभी बातें झूठी लगेंगी।
जब पुरुष यहां होते हैं तो वह अधिक ध्यानपूर्ण बन जाते हैं। पुरूष जितना अधिक ध्यानपूर्ण होता है, उतना ही अधिक वह अकेले रहना चाहता है। इस बदलाव से उसकी पत्नी अथवा प्रेमिका व्याकुल और क्षुब्ध हो जाएगी। यदि वह स्थिति को नहीं समझ रही है, तब वह समस्या उत्पन्न करना प्रारंभ कर देगी, क्योंकि यह व्यक्ति अब उसके साथ समय न बिताकर, अकेले में रहना चाहता है। यदि स्त्री स्थिति को समझ पाएगी, तब कोई भी समस्या नहीं है, लेकिन वह समझ उसे केवल तब आ सकती है, जब उसका प्रेम भी विकसित हो। यदि वह अत्याधिकप्रेम का अनुभव करती है, तब ही वह इस मित्र को अकेला बने रहने की अनुमति दे सकती है और यहां तक कि वह उसके अकेलेपन की सुरक्षा भी करेगी। वह पूरा प्रयास करेगी कि उस पुरूष के अकेलेपन में बाधा न पड़े... और अब यही उसका प्रेम होगा।
यदि पुरुष भी यह अनुभव करता है... यदि बुद्ध अनुभव करते हैं कि यशोधरा उनकी सुरक्षा और देखभाल कर रही है तथा यशोधरा की उपस्थिति से उनके ध्यान में कोई बाधा नहीं पड़ रही है और उसका मौन उन्हें सहायता दे रहा है, तो यशोधरा से दूर जाने की, पलायन करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। लेकिन ऐसा तभी संभव होगा यदि बुद्ध के साथ साथ यशोधरा का प्रेम भी विकसित हो रहा हो। जब एक पुरुष का ध्यान विकसित हो रहा है तब एक स्त्री का प्रेम भी विकसित होना चाहिए। केवल तभी वे दोनों कदम से कदम मिलाकर साथ चल सकते हैं और ऐसे में ही एक उच्चतम लयबद्धता उत्पन्न होगी जो निरंतर बढ़ती जाएगी। तब एक क्षण ऐसा भी आता है जब पुरुष पूर्ण रूप से ध्यान में होता है और स्त्री पूर्ण रूप से प्रेम में होती है, केवल तभी पूर्ण मिलन होता है, सच्चा मिलन होता है और तभी दो व्यक्तियों के मध्य एक दिव्य मिलन का सर्वोच्च शिखर या परमानंद उपलब्ध होता है। भौतिक नहीं, शारीरिक नहीं, बल्कि दो भिन्न भिन्न अस्तित्व एक दूसरे में संपूर्णता से विलय हो जाते हैं। तब प्रेमी द्वार बन जाता है और प्रेमिका भी द्वार बन जाती है और वे दोनों उस "एक" तक पहुंच जाते हैं।

इसलिए जो भी मेरे पास आता है उसे पूर्ण रूप से सजग होना चाहिए, क्योंकि मेरे निकट आना खतरनाक है। तुम्हारी सभी पुरानी व्यवस्थाओं में बाधा पड़ेगी और मैं इसमें कोई सहायता भी नहीं कर सकता हूं। मैं यहां तुम्हारे आपसी तालमेल को ठीक करने के लिए नहीं हूं, यह निर्णय तुम्हें ही करना है। मैं तो तुम्हें विकसित होने में सहायता कर सकता हूं। ध्यान में विकसित होने में और प्रेम में विकसित होने में सहायता कर सकता हूं। मेरे लिए दोनों शब्दों का अर्थ समान है, क्योंकि वे समान बिंदु तक पहुंचते हैं। आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
चौदहवां प्रवचन

पितृत्व अर्थात बच्चे को संपूर्णता देना

पहला प्रश्नः
ओशो! आपने कहा है कि प्रत्येक बच्चा जन्म से ही परमात्मा होता है। मेरे दोनों बच्चे ठीक जन्म के समय से ही बहुत भिन्न थे। एक बहुत शांत, निर्मल स्वभाव का ईश्वर-तुल्य है, लेकिन दूसरी बच्ची किसी पूर्व परिस्थितियों से प्रभावित प्रतीत होती है, वह शुरू से ही अशांत और क्षुब्ध है। इस समस्या-ग्रस्त बच्ची से हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए?

इससे एक बहुत मौलिक प्रश्न उठ खड़ा होता है। अस्तित्व स्वयं ही दिव्य है, इसलिए अनिष्ट अथवा बुराई कहां से आती है? अशांति, अनैतिकता और अस्वीकृती कहां से आती है? जोशुभ है, जो अच्छा है, वह तो ठीक है, क्योंकि हमने उसे परमात्मा का समानार्थक बनाया है, शुभ यानि परमात्मा। लेकिन अशुभ कहां से आता है? इस प्रश्न ने मनुष्यता को सदियों से उलझन में डाल रखा है। इतिहास में हम जितनी दूर तक पीछे जा सकते हैं, वहां तक यह समस्या मनुष्य के मन में हमेशा से ही बनी रही है।

इसका तर्कपूर्ण समाधान, जो मन खोज सकता है, वह है अस्तित्व को विभाजित करना या द्वैत निर्मित करना, जिससे कहा जा सके कि एक परमात्मा है जो अच्छा और भला है तथा दूसरा शैतान है जो बुरा और दुष्ट है:"बील्जबुल" और "शैतान" जो अशुभ हैं। मन सोचता है कि समस्या का समाधान हो गया, इसलिए जो कुछ भी बुरा है, वह शैतान से आता है और जो कुछ भी अच्छा है, वह परमात्मा से आता है। लेकिन समस्या हल नहीं हुई है, समस्या को केवल थोड़ा सा पीछे धकेल दिया गया है। समस्या ज्यों की त्यों ही बनी हुई है। तुमने उसे थोड़ा स्थगित कर दिया है, लेकिन कुछ भी हल नहीं हुआ है, क्योंकि फिर शैतान कहां से आता है?
यदि परमात्मा सृष्टा है, तो निश्चित ही वह शुरूआत में सारी सृष्टि के साथ ही शैतान का भी सृजन करता अथवा परमात्मा सृष्टा नहीं है। शैतान हमेशा से ही एक शत्रु की भांति अथवा एक विरोधी शक्ति की भांति मौजूद रहा है और दोनों ही शाश्वत हैं। यदि शैतान का सृजन नहीं किया गया है, तब शैतान को नष्ट भी नहीं किया जा सकता है, इसलिए यह संघर्ष निरंतर बना ही रहेगा। परमात्मा कभी भी जीत नहीं सकता क्योंकि उपद्रव करने के लिए सदैव ही शैतान उपस्थित है।
ईसाई धर्मशास्त्र, मुस्लिम धर्मशास्त्र और यहूदी धर्मशास्त्र के लिए यही एक समस्या है, क्योंकि इन्होंने मन द्वारा दिए गए उसी सामान्य समाधान का अनुसरण किया है, लेकिन मन इसे हल नहीं कर सकता। एक दूसरी संभावना भी है जो मन से नहीं आती है और मन के लिए उसे समझना भी कठिन होगा। वह संभावना पूरब में उत्पन्न हुई, विशेष रूप से भारत में उत्पन्न हुई और वह संभावना है कि वहां कोई भी शैतान नहीं है और कोई भी मौलिक द्वैतता नहीं है, केवल अस्तित्व में परमात्मा ही है और कोई दूसरी विरोधी शक्ति नहीं है। इसे ही भारत ने कहा:अद्वैत दर्शन, जिसका अर्थ है केवल परमात्मा है... लेकिन तब भी अशुभ, शैतान और बुराई का वजूद तो है।
हिन्दू कहते हैं कि बुराई का अस्तित्व स्वयं में नहीं है, उसका अस्तित्व केवल तुम्हारी व्याख्याओं में है। तुम उसे बुरा कहते हो, क्योंकि तुम उसे समझ नहीं पाते, क्योंकि तुम इस बुराई के कारण परेशान हो जाते हो। तुम्हारा दृष्टिकोण ही है जो उसे बुरा बनाता है। नहीं, कोई भी बुराई नहीं है। बुराई अस्त्वि में कदापि नहीं हो सकती। केवल परमात्मा ही अस्तित्व में है, केवल दिव्यता ही अस्तित्व में है।
अब इस पृष्ठभूमि के आधार पर मैं तुम्हारे प्रश्न को लेता हूं। दो बच्चों का जन्म हुआ, एक अच्छा है और एक बुरा है। तुम एक को अच्छा और दूसरे को बुरा कहकर क्यों पुकारते हो? यह अच्छा या बुरा वास्तव में है क्या? यह एक वास्तविकता है अथवा केवल तुम्हारी व्याख्या है? यदि बच्चा आज्ञाकारी

है तो अच्छा है और यदि बच्चा आज्ञा का उल्लंघन करने वाला है तो बुरा है। एक वह जो आज्ञा का अनुसरण करता है, अच्छा है। एक वह जोप्रतिरोध करता है, वह बुरा है। तुम जो कुछ भी कहते हो तो एक बच्चा उसे स्वीकार करता है। यदि तुम कहते हो कि शांत और चुप बैठे रहो तो वह बैठ जाता है। यह तुम्हारी अपनी व्याख्या है। तुम जो भी बता रहे हो, वह बच्चे के बारे में नहीं कह रहे हो, वास्तव में तुम अपने मन के बारे में बता रहे हो।
जो आज्ञाकारी है, वह अच्छा क्यों है? वास्तव में जो आज्ञाकारी होते हैं वे कभी भी प्रतिभाशाली नहीं होते, वे कभी भी बहुत दीप्तिवान नहीं होते और वे हमेशा सामान्य बुद्धि के रह जाते हैं। कोई भी आज्ञाकारी बच्चा एक महान वैज्ञानिक अथवा एक महान धार्मिक व्यक्ति अथवा एक महान कवि नहीं बन पाया है। केवल आज्ञा का अनुसरण न करने वाले बच्चे ही महान आविष्कारक और रचनाकार बने। केवल विद्रोही ही पुरातन के पार जाकर अज्ञात और नूतन तक पहुंचते हैं।
लेकिन माता-पिता के अहंकार को आज्ञाकारी बच्चा अच्छा लगता है, क्योंकि वह तुम्हारे अहंकार की पुष्टि करता है। माता-पिता जो कुछ भी कहते हैं और बच्चा उनकी आज्ञा मानता है, उन्हें अच्छा लगता है और जब बच्चा प्रतिरोध करता है, इंकार करता है तो उन्हें बुरा लगता है।
लेकिन वास्तव में, एक जीवंत बच्चा विद्रोही ही होगा।
उसे तुम्हारा अनुसरण क्यों करना चाहिए? तुम हो कौन? उसे क्या केवल इसलिए तुम्हारा अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि तुम उसके पिता हो? एक पिता बनने के लिए तुमने किया क्या है? तुम केवल एक द्वार बने हो, एक माध्यम बने हो और वह भी बहुत अचेतन रूप से। यहां तक कि तुम्हारा सेक्स कृत्य भी सचेतन नहीं था और तुम अचेतन शक्तियों द्वारा उस क्रिया में गतिशील होने के लिए धकेल दिए गए थे। बच्चे का होना तो केवल एक संयोग है। तुम कभी आशा भी नहीं कर रहे थे, तुम चेतन रूप से सजग नहीं थे कि तुम किसी को आने का निमंत्रण दे रहे थे। बच्चा अचानक एक अजनबी की भांति आ गया। तुम उसके जन्म के माध्यम मात्र हो, तुम उसके पिता हो, लेकिनफिर भी तुम एक पिता नहीं हो।
जब मैं कहता हूं कि तुम माध्यम हो, पिता हो, तो यह एक जैविक तथ्य है। तुम आवश्यक नहीं थे, एक सिरिन्ज भी इस कार्य को कर सकती थी। लेकिन तुम एक पिता नहीं हो, क्योंकि तुम सचेत नहीं हो। तुमने उस बच्चे को निमंत्रण नहीं दिया था और न ही तुमने किसी विशिष्ट आत्मा से अपनी पत्नी अथवा प्रेमिका के गर्भ में प्रवेश करने के लिए आग्रह किया था। तुमने उसके लिए कुछ नहीं किया है।
जब बच्चे का जन्म होता है, तब तुम क्या करते रहे? तुम कहते हो कि बच्चे
को तुम्हारा कहना मानना चाहिए। क्या तुम पर्याप्त रूप से विश्वस्त हो कि तुम यह सच जानते हो कि उसे तुम्हारा कहना मानना ही चाहिए? क्या तुम पूरी तरह से आश्वस्त और सुनिश्चित हो और तुमने किसी ऐसी चीज़ का अनुभव किया है, जिसके आधार पर तुम कह सको कि बच्चे को तुम्हारा अनुसरण करना चाहिए?
तुम स्वयं को बच्चे पर बलपूर्वक थोप सकते हो, क्योंकि बच्चा निर्बल
है और तुम शक्तिशाली हो। तुममें और तुम्हारे बच्चे में केवल यही एक अंतर है। अन्यथा तुम भी एक बच्चे की भांति ही हो, तुम भी अज्ञानी हो, तुम भी विकसित नहीं हुए हो और तुम भी अभी परिपक्व नहीं हो। ठीक बच्चे के समान ही तुम भी क्रोधित हो जाओगे, ठीक बच्चे के समान ही तुम ईर्ष्या भी करोगे और ठीक बच्चे के समान ही तुम भी खिलौनों से खेलोगे। तुम्हारे खिलौने बच्चों की अपेक्षा थोड़े बड़े और भिन्न हो सकते हैं।
तुम्हारा जीवन क्या है? तुम कहां तक पहुंचे हो? तुमने कौन सी बुद्धिमत्ता प्राप्त कर ली है, जिससे बच्चे को तुम्हारा अनुसरण करना चाहिए और जब कभी भी तुम अधिकारपूर्वक कुछ कहो तो उसे "हां" ही कहनी चाहिए? यदि एक पिता सचेत होगा तो वह बच्चे को किसी कार्य के लिए बाध्य या विवश नहीं करेगा। वस्तुतः वह बच्चे को स्वयं विकसित होने की अनुमति देगा, वह बच्चे के विकास में सहायता करेगा। वह बच्चे को स्वतंत्रता देगा, क्योंकि यदि पिता ने जीवन में कोईमहत्त्वपूर्ण बात जानी है, तो उसे यह पता होना चाहिए कि केवल स्वतंत्रता के द्वारा ही अंतरस्थ विकसित होता है। यदि पिता ने अपने जीवन में कोई बहुमूल्य अनुभव किया है, तो वह भली-भांति जानता

है कि अनुभव को स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है जितनी अधिक स्वतंत्रता मिलती है, उतना ही अनुभव समृद्ध होता है और जितनी कम स्वतंत्रता होती है उतना ही अनुभव क्षीण होता है। यदि बिल्कुल भी स्वतंत्रता नहीं होती है तब तुम्हारे पास उधार के अनुभव, अनुकरण और छायाएं होती हैं, लेकिन कभी भी असली और प्रामाणिक चीज़ नहीं होगी।
एक बच्चे का पिता बनने का अर्थ होगा उसे अधिक से अधिक स्वतंत्रता देना, उसे अधिक से अधिक मुक्त बनाना और उसे उस अज्ञात में जाने की स्वीकृति देना, जहां कभी तुम भी नहीं जा पाए। बच्चे को पिता से भी आगे जाना चाहिए, उसे तुम्हारे पार जाना चाहिए, जितना तुमने जाना है उसे उन सभी सीमाओं का अतिक्रमण करना चाहिए। बच्चे की सहायता करनी चाहिए, लेकिन उसे बाध्य नहीं करना चाहिए क्योंकि यदि तुम उसे बाध्य करते हो तो तुम उसे नष्ट कर रहे हो और तुम उस बच्चे की हत्या कर रहे हो।
आत्मा को स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है और वह केवल स्वतंत्रता में
ही विकसित होती है। यदि तुम वास्तव में एक पिता हो तो बच्चे के विद्रोही होने पर तुम प्रसन्न होवोगे, क्योंकि कोई भी सही पिता अपनी बच्चे की आत्मा को मारना पसंद नहीं करता है।
लेकिन तुम पिता नहीं हो। तुम रूग्ण हो, तुम अस्वस्थ हो। जब तुम एक बच्चे को अपना अनुसरण करने के लिए बाध्य करते हो तो तुम यही कह रहे हो कि तुम किसी पर प्रभुत्व जमाना चाहते हो। इस प्रभुत्व को तुम संसार में तो लागू नहीं कर सकते, लेकिन कम से कम इस छोटे से बच्चे पर वह प्रभुत्व जमा सकते हो और उसे अपने अधिकार में ले सकते हो। तुम बच्चे के लिए एक राजनीतिज्ञ बन रहे हो। तुम बच्चे के द्वारा अपनी अपूर्ण इच्छाओं को पूरा कर लेना चाहते हो, जैसे प्रभुत्व और तानाशाही। कम से कम एक बच्चे के लिए तो तुम तानाशाह बन सकते हो क्योंकि वह अत्याधिक कमजोर है, वह छोटा और असहाय है और वह तुम पर इतना अधिक आश्रित है कि तुम उसे किसी भी चीज़ के लिए बाध्य कर सकते हो। लेकिन इस बाध्यता के द्वारा तुम उसे मार रहे हो। तुम उसका पालन-पोषण करने की बजाय उसे नष्ट कर रहे हो, बर्बाद कर रहे हो।
वह बच्चा जो अनुसरण करता है, अच्छा प्रतीत होता हैक्योंकि वह मृत है।
वह बच्चा जो विद्रोही है, वह बुरा प्रतीत होता हैक्योंकि वह जीवंत है। चूंकि हम स्वयं अपने ही जीवन से चूक गए हैं, इसलिए हम जीवन के विरुद्ध हैं। क्योंकि हम पहले से ही मृत हैं, हम मृत्यु से पूर्व ही मर चुके हैं, इसलिए हम हमेशा दूसरों को भी मारना चाहते हैं। कईप्रकार के सूक्ष्म हथियारों से हम दूसरों को मारना चाहते हैं। तुम प्रेम के नाम पर किसी को मार सकते हो, तुम सेवा के नाम पर किसी को मार सकते हो, तुम करूणा के नाम पर किसी को मार सकते हो। प्रेम, करूणा और सेवा जैसे सुंदर शब्द हमने खोज लिए हैं परंतु इन सब की गहराई में एक हत्यारा छिपा बैठा है।
इसे अनुभव करो, तब तुम इस तरह से नहीं सोचोगे कि यह बच्चा अच्छा है और
वह बच्चा बुरा है। अपनी व्याख्या मत करो। प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है और प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है। दिव्य सृजनात्मक शक्ति ऐसी है कि वह कभी स्वयं को दोहराती नहीं है।
इसलिए केवल इतना ही कहो कि यह बच्चा उस बच्चे से भिन्न है। यह मत कहो
कि यह अच्छा है और वह बुरा है। तुम स्वयं ही नहीं जानते कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। यह बच्चा आज्ञकारी है और वह बच्चा आज्ञाकारी नहीं है, लेकिन यह कोई नहीं जानता है कि अच्छा क्या है?
विवश मत करो। यदि यह बच्चा सहज और स्वाभाविक रूप से आज्ञाकारी है, तब
यह अच्छा है। यह उसका स्वभाव है, उसे विकसित होने में सहायता करो। यदि एक बच्चा विद्रोही है, आज्ञा का पालन नहीं करता है, तो यह उसका स्वभाव है, उसकी भी विकसित होने में सहायता करो। पहले बच्चे को इस तरह विकसित करो कि वह बिना किसी बाध्यता के, अपने अंतरतम की गहराई से "हां" कह सके और दूसरे बच्चे को इस तरह विकसित करो कि वह बिना किसी बाध्यता के, गहनता से "न" कह सके। लेकिन अपनी व्याख्या मत करो, क्योंकि जिस क्षण तुम व्याख्या करने लगते हो, तुम बच्चे को नष्ट करना करना प्रारंभ कर देते हो। एक बच्चे का स्वभाव है:"हां" कहना और दूसरे बच्चे का स्वभाव है:"न" कहना, दोनों ही आवश्यक हैं।

जीवन बहुत सपाट और धीमा हो जाएगा, यदि कोई भी व्यक्ति"न" कहने वाला न हो। यदि प्रत्येक व्यक्ति"हां" कहेगा तो जीवन निश्चित ही मंद, उदास और मूर्खतापूर्ण होगा। "न" कहना भी आवश्यक है, वह विपरीत ध्रुव है। आज्ञाकारिता बिल्कुल अर्थहीन हो जाएगी यदि विद्रोही व्यक्ति मौजूद नहीं होगा। इसलिए चुनाव मत करो, बस सहजता से दोनों के अंतर को महसूस करो और उनकी सहायता करो। स्वयं को उन पर थोपना नहीं है, हिंसक मत बनो।
प्रत्येक पिता हिंसक होता है और प्रत्येक मां हिंसक होती है। तुम हिंसक हो सकते हो क्योंकि तुम प्रेम के नाम पर यह हिंसा कर रहे हो। कोई भी व्यक्ति तुम्हारी आलोचना नहीं करेगा, क्योंकि तुम कहते हो कि तुम अपने बच्चे अत्याधिकप्रेम करते हो... इतना प्रेम कि तुम्हें उसे पीटना भी होगा। तुम उससे इतना अधिक प्रेम करते हो कि तुम्हें उसे ठीक करना ही होगा। तुम कहते हो कि तुम उससे प्रेम करते हो, इसी कारण तुम उसे ठीक करने का प्रयास कर रहे हो, क्योंकि वह गलत रास्ते पर जा रहा है।
क्या तुम सुनिश्चित हो कि क्या गलत है और क्या ठीक है? कोई भी व्यक्ति सुनिश्चित नहीं है, कोई भी व्यक्ति सुनिश्चित हो ही नहीं सकता, क्योंकि जीवन का घटनाक्रम ही कुछ ऐसा है कि जो इस क्षण अच्छा है, वह अगले ही क्षण बुरा हो जाता है, जो दिशा प्रारंभ में बुरी प्रतीत होती है, वही अंत में जाकर अच्छाई की ओर मुड़ जाती है। जीवन एक प्रवाह है, वह प्रत्येक क्षण बदल रहा है।
इसलिए एक प्रामाणिक और सच्चे माता-पिता अपने बच्चों को नैतिक आदर्श न देकर केवल सचेतनता और सजगता देंगे, क्योंकि नैतिक आदर्श खोखले और मृत होते हैं। तुम कहते हो कि यह अच्छा है, इसका अनुसरण करो लेकिन अगले ही क्षण वह चीज़ बुरी बन जाती है, तो बच्चा उस स्थिति में क्या करे? अगले ही क्षण जीवन बदल जाता है, वह बदल ही रहा है, जीवन निरंतरता से होने वाला एक परिवर्तन है और तुम्हारे नैतिक आदर्श स्थिर हैं:तुम कहते हो यह अच्छा है और इसका अनुसरण करना ही है। तब तुम मृत बन जाते हो। जीवन बदलता चला जा रहा है और तुम अपने स्थिर एवं मृत आदर्शों को लेकर चलते हो। इसी कारण तथाकथित धार्मिक लोग इतने अधिक मंद, सुस्त और उदास दिखाई देते हैं:उनकी आंखों में खालीपन है, नकलीपन है, उथलापन है, गहराई नहीं है, क्योंकि गहराई केवल तभी संभव है, यदि तुम जीवन सरिता के साथ-साथ प्रवाहित होते हुए चलो।
इसलिए एक माता-पिता द्वारा अपने बच्चों को उपहार रूप में क्या दिया जाना चाहिए? केवल सजग बने रहने की कला देनी चाहिए। अपने बच्चों को अधिक सजग बनाओ। उन्हें स्वतंत्र होने की अनुमति दो और उन्हें यह भी सिखाओ कि वे सजग होकर स्वतंत्रता के साथ आगे बढ़ें। उन्हें कहो कि यदि तुमसे कुछ गलती हो जाए तो डरो मत, क्योंकि जीवन में गलतियों के द्वारा ही सीखा जाता है और गलतियों के द्वारा ही मनुष्य अधिक सजग बनता है, इसलिए डरो मत। गलतियां मनुष्य से ही होती हैं। यदि तुम सजगता के साथ गलती भी करते हो तो एक बात अवश्य होगी कि तुम वैसी ही गलती दोबारा नहीं करोगे। एक बार तुम गलती करते हो, उसका अनुभव करते हो, अब तुम उसके बारे में सजग हो जाओगे और अंततः वह विलुप्त हो जाएगी। वह गलती तुम्हें समृद्ध बनाएगी और तुम निर्भय होकर आगे बढ़ोगे। केवल एक बात का स्मरण रखो-तुम जैसी भी परिस्थितियों से गुजरो, बस केवल जागरूक बने रहो। यदि तुम "हां" कहते हो तो होशपूर्वक कहो। यदि तुम "नहीं" कहते हो तो भी उसे होशपूर्वक कहो।
जब एक बच्चा "नहीं" कहता है तो माता-पिता को चोट नहीं पंहुचनी चाहिए, क्योंकि एक बच्चे के बारे में कुछ तय करने वाले तुम कौन होते हो? वह तुम्हारे द्वारा आता है, तुम केवल एक मार्ग हो। एक तानाशाह मत बनो, प्रेम कभी भी आदेश नहीं देता है और यदि तुम कभी आदेश नहीं देते हो तो यह अच्छाई और बुराई विलुप्त हो जाएगी। तब तुम दोनों से प्रेम करोगे। तुम्हारा प्रेम बेशर्त रूप से प्रवाहित होगा। ऐसा ही बेशर्त प्रेम परमात्मा की ओर से पूरे संसार में प्रवाहित हो रहा है।
मैने सुना है कि एक सूफी रहस्यदर्शी जुन्नैद से किसी व्यक्ति ने कहा :"एक बहुत दुष्ट और बुरा व्यक्ति आपको सुनने के लिए आया है और आपने उसे इतनी निकटता तथा अंतरंगता की स्वीकृति दी है। कृपया उसे बाहर निकाल दीजिए, वह एक अच्छा व्यक्ति नहीं है।"

जुन्नैद ने कहा:"यदि परमात्मा उसे अपनी कुदरत से बाहर नहींफेंकता है
तो मैं उसे बाहर फेंकने वाला कौन होता हूं? यदि परमात्मा उसे स्वीकार करता है... तो मैं परमात्मा से ऊंचा नहीं हूं। परमात्मा उसे जीवन देता है, परमात्मा जीवित बने रहने में उसकी सहायता करता है और वह व्यक्ति अभी युवा और जीवंत है और शायद वह तुमसे भी अधिक आयु तक जीवित रहेगा। इसलिए निर्णय लेने वाला मैं कौन होता हूं? परमात्मा अच्छे और बुरे दोनों पर ही अपनी रहमतें बरसाता है।"
स्थिति बिल्कुल साफ है, पूर्णतः सुस्पष्ट है कि परमात्मा के लिए न कोई अच्छा है और न कोई बुरा है। जब मैं कहता हूं कि "परमात्मा" तो मेरा अर्थ ऊपर आसमान में बैठे हुए किसी व्यक्ति से नहीं है। यह तो मनुष्य निर्मित दृष्टिकोण है, हम अपनी धारणाओं के अनुसार परमात्मा का रूप गढ़ लेते हैं। वास्तव में वहां कोई नहीं बैठा है। परमात्मा का अर्थ है :संपूर्ण, यह संपूर्ण अस्तित्व। एक बुरा व्यक्ति भी इस धरती पर उतनी ही सुंदरता से श्वास लेता है, जितना कि एक अच्छा व्यक्ति ले रहा है। अस्तित्व के द्वारा एक पापी भी उसी भांति स्वीकार किया जाता है जैसे कि एक संत को स्वीकार किया जाता है। अस्तित्व कोई भी भेदभाव नहीं करता है। लेकिन द्वैतवादी विचारधारा के कारण, ईसाइयों, मुसलमानों और यहूदियों की सोच द्वंद्वात्मक है। हम लोग द्वन्द और संघर्ष की सीमा के भीतर ही सोचते हैं। इस बारे में एक कहानी है:प्राचीन इज़राइल में सोडोम नामक एक शहर था।
उस नगर के लोग बहुत अधिक विकृत, कुमार्गी और पथभ्रष्ट थे, वे लोग काम-विकृति से पीड़ित थे, समलैंगिक थे। इसलिए यह कहा जाता है कि परमात्मा ने उस शहर को नष्ट कर दिया। पूरा शहर नष्ट हो गया। एक विशाल अग्नि की ज्वाला आसमान से गिरी और प्रत्येक व्यक्ति मर गया।
अनेक सदियां बीत जाने के बाद एक हसीद संत एवं रहस्यदर्शी से किसी ने पूछा:"जब परमात्मा ने सोडोम नगर को नष्ट किया था तो उस शहर में कम से कम थोड़े से अच्छे व्यक्ति भी तो रहे होंगे और वे भी नष्ट हो गए होंगे।" प्रश्नकर्ताका आशय वास्तव में यह था कि बुरे लोग तो नष्ट हो गए, क्योंकि वे कुमार्गी थे, यह समझ में आता है, लेकिन अच्छे लोग नष्ट क्यों हुए"
अब मन की चालबाज़ी को देखो। उस हसीद संत ने कुछ विचार किया और कहा :"परमात्मा ने अच्छे लोगों को इसलिए नष्ट कर दिया, जिससे वे अच्छे लोग खुदा के सामने उन बुरे लोगों की बुराई के साक्षीबन सकें।"यह एक चालाकी से भरी गणना और जोड़-तोड़ है। यह केवल अपने को बचा लेने का एक तरीका है। वास्तविक बात तो यह है कि परमात्मा के लिए न कुछ अच्छा है और न कुछ बुरा है। जब वह सृजन करता है तो वह दोनों का ही सृजन करता है और जब वह विनाश करता है तो वह दोनों को ही नष्ट कर देता है और वह भी बेशर्त।
अच्छे और बुरे का यह दृष्टिकोण वास्तव में मूर्खतापूर्ण है। एक व्यक्ति जो धूम्रपान कर रहा है वह बुरा बन जाता है। एक व्यक्ति जोशराब पी रहा है वह बुरा बन जाता है। एक व्यक्ति जो किसी अन्य व्यक्ति की पत्नी के प्रेम में पड़ जाता है वह बुरा होजाता है। हम सोचते हैं कि परमात्मा ऊपर बैठा हुआ यह हिसाब-किताब लगा रहा है कि यह व्यक्ति धूम्रपान करता है, वह व्यक्तिशराबी है और यह व्यक्ति किसी अन्य स्त्री के प्रेम में पड़ गया है... इन सब को आने दो, मैं इन्हें देख लूंगा। यह मूर्खतापूर्ण है यदि परमात्मा ऐसी तुच्छ चीज़ों के बारे में गणना कर रहा है। इस प्रकार की गणना तो हमारी अपनी सोच का बौनापन है।
अस्तित्व के लिए, कोई व्याख्या नहीं है और न ही कोई विभाजन है। अच्छे
और बुरे की धारणाएं उस परमात्मा की नहीं है बल्कि मनुष्य की हैं। अच्छे और बुरे के प्रति प्रत्येक समाज की अपनी धारणाएं होती हैं। प्रत्येक युग बदलता है और नई पीढ़ी के लिए अच्छे और बुरे की अपनी नई धारणाएं होती हैं। इसलिए अच्छे और बुरे के संदर्भ में सुनिश्चितता नहीं है। अच्छा और बुरा एक दूसरे से संबंधित हैं, सापेक्षिक है:वह समाज, संस्कृति और हम सब से संबंधित है।
परमात्मा सुनिश्चित है, वह है ही, उसके संदर्भ में कोई भी भेद नहीं है।

जब तुम ध्यान में गहरे उतरते हो जहां सब विचार मिट जाते हैं, तब वहां कोई भेद नहीं होता क्योंकि अच्छे और बुरे तो विचार होते हैं। जब तुम मौन हो, निर्विचार हो तो क्या अच्छा और क्या बुरा? जिस क्षण कोई विचार उत्पन्न होता है कि यह अच्छा है और वह बुरा है, तो मौन टूट जाता है। गहन ध्यान की अवस्था में कुछ भी नहींहै:न अच्छा और न बुरा।
संत लाओत्सु ने कहा है कि स्वर्ग और नर्क में एक बाल के बराबर भेद है।
एक ध्यानी व्यक्ति के मन में यदि सूक्ष्म सा अंतर भी उत्पन्न हो जाए तो पूरा संसार विभाजित हो जाता है। ध्यान अभेद है, उसमें कोई अलगाव नहीं है। तुम सामान्य रूप से देखते हो तो तुम संपूर्ण को देखते हो तथा उसे विभाजित नहीं करते हो। तुम यह नहीं कहते कि यह कुरूप है, वह सुंदर है, यह अच्छा है और वह बुरा है। तुम कोई भी विभाजन नहीं करते हो। वहां अद्वैत होता है। ध्यान में तुम परमात्मा ही बन जाते हो। लोग सोचते हैं कि वे ध्यान में परमात्मा का दर्शन करेंगे। यह गलत है वहां दर्शन करने के लिए कुछ भी नहीं है। परमात्मा एक वस्तु नहीं है। वस्तुतः ध्यान में तुम परमात्मा ही बन जाते हो, क्योंकि सभी भेद मिट जाते हैं। ध्यान में तुम संपूर्ण अस्तित्व के साथ एक हो जाते हो, क्योंकि ध्यान में तुम स्वयं को इस संपूर्ण अस्तित्व से अलग कर ही नहीं सकते हो, समस्त भेद गिर जाते हैं।
तुम इतने अधिक शांत और मौन हो जाते हो कि कोई सीमा ही नहीं बचती है। प्रत्येक सीमा एक विघ्न है, एक उपद्रव है। ध्यान में तुम इतने अधिक मौन और शांत होते हो कि वहां "मैं" और "तू" जैसा कुछ भी नहीं होता है। तुम इतने शांत व मौन होते हो कि सारी सीमाएं धुंधली और अस्पष्ट होकर, अंततः मिट जाती हैं। तब एक ही विद्यमान होता है, समग्र एकता से केवल वही "एक" मौजूद रहता है। इसी समग्र एकता को हिन्दू "ब्रह्म" कहते हैं:एक योग, एक एकता, अस्तित्व का परम-एक्य।
यह मन है, जो विभाजित करता है, भेद उत्पन्न करता है और कहता है कि "यह ऐसा है" और "वह वैसा है"। ध्यान में कोई विभाजन नहीं है, वहां ऐसा या वैसा नहीं रहता... वहां केवल "है" होता है। जब तुम ध्यान में होते हो, तुम परमात्मा ही होते हो और केवल ध्यान के उन क्षणों में ही तुम बेशर्त प्रेम को जान पाओगे।
यदि तुम एक पिता हो तो तुम्हारे दोनों बच्चे केवल बच्चे ही होंगे, वे अज्ञात संसार से आने वाले अजनबी होंगे, जो यहां एक अज्ञात अस्तित्व में गतिशील हो रहे हैं, वे यहां विकसित और परिपक्व हो रहे हैं। तुम उन्हें प्रेम करते हो इसलिए अपना प्रेम उन्हें बांट रहे हो, तुम अपने जीवन में उन्हें भागीदार बना रहे हो, तुम अपने अनुभव उन से बांट रहे हो, लेकिन तुम कभी भी किसी चीज़ के लिए उन्हें बाध्य मत करो। जब तुम उन्हें बाध्य नहीं करते हो तब कौन आज्ञाकारी और कौन अवज्ञाकारी है? जब तुम उन्हें बाध्य नहीं करते हो तब तुम कैसे यह निर्णय कर सकते हो कि कौन अच्छा है और कौन बुरा है? अब मैं आखिरी बात पर आता हूं। जब तुम उन्हें विवश नहीं करते हो तो एक कैसे आज्ञाकारी हो सकता है और दूसरा कैसे अवज्ञाकारी हो सकता है? विवश न करने पर यह पूरा दुष्चक्र ही विलुप्त हो जाता है। तब तुम दूसरे व्यक्ति को स्वीकार कर लेते हो-बच्चे को, पत्नी को, पति को और मित्र को वैसा ही स्वीकार करते हो जैसा कि वह है, तब तुम उन्हें एक यथार्थ सत्य के रूप में स्वीकार करते हो। यदि हम एक दूसरे को यथार्थ रूप में बिना किसी योग्यता अथवा अयोग्यता के, बिना किसी शर्त के, बिना किसी अच्छे-बुरे भेद के स्वीकार करते हैं, तो यह जीवन इसी क्षण एक स्वर्ग बन जाएगा। परंतु हम अस्वीकार कर देते हैं। यदि हम किसी व्यक्ति को स्वीकार भी करते हैं, तो उसके आधे भाग को ही स्वीकार करते हैं। हम कहते हैं कि तुम्हारी आंखें तो सुंदर हैं, लेकिन बाकी सब कुरूप है। क्या यह स्वीकृति है? हम कहते हैं कि तुम्हारा यह काम तो अच्छा है, लेकिन अन्य सभी कार्य बुरे हैं और उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता तथा मैं केवल तुम्हारे उस अच्छे कार्य को ही स्वीकार करता हूं। इसका अर्थ है कि मैं केवल उसे स्वीकार करता हूं जो मेरे अनुसार ठीक है।
तुम्हें शायद अनुमान भी नहीं है कि तुम कैसे एक दूसरे को नष्ट कर रहे
हो, क्योंकि जब कभी माता-पिता बच्चे से कहते हैं कि हम केवल तुम्हारे इस

काम को स्वीकार करते हैं और शेष को नहीं, जब एक पत्नी पति से कहती है कि मैं तुम्हारी इस बात को स्वीकार करती हूं पर शेष को नहीं, तब तुम क्या कर रहे हो? तुम दूसरे के मन में भी एक विभाजन उत्पन्न कर रहे हो।
जब पिता कहता है:"इस कार्य को मत करो। मुझे यह पसंद नहीं है।" जब पिता अपने बच्चे को इसलिए दंड देता है, क्योंकि उसके अनुसार उसका बच्चा गलत काम कर रहा है, तो यह पिता क्या कर रहा है? जब वही पिता बच्चे की प्रशंसा करता है, उसे खिलौना देता है, उसके लिए फूल लाता है, मिठाई लाता है और उससे कहता है कि तुमने बहुत बढ़िया काम किया, मैं इससे खुश हूं, तो यह पिता क्या कर रहा है? वह बच्चे में एक विभाजन उत्पन्न कर रहा है। धीरे-धीरे यह बच्चा भी स्वयं के उस भाग को अस्वीकृत कर देगा, जिसे माता-पिता ने अस्वीकृत किया था और वह विभाजित हो जाएगा-वह दो तरह के व्यक्तित्व में बंट जाएगा।
तुमने जरूर कभी छोटे बच्चों का निरीक्षण किया होगा-वे स्वयं को ही दंडित कर लेते हैं। वे स्वयं को ही निर्देश देने लगते हैं कि बॉबी! यह ठीक नहीं है। तुमने एक बुरा कार्य किया है। वे स्वयं के उस भाग को अस्वीकार करना शुरू कर देते हैं, जिसे उनके माता-पिता द्वारा अस्वीकार किया गया था। तब एक विभाजन निर्मित हो जाता है। तुम्हारा अस्वीकृत भाग अचेतन बन जाता है, वह दमित किया हुआ भाग है और स्वीकृत भाग चेतन रहता है, वह अंतःकरण या विवेक बन जाएगा। तब बच्चे का पूरा जीवन एक नर्क बन जाएगा क्योंकि स्वीकृत और अस्वीकृत भाग में संघर्ष चलता रहेगा। निरंतर एक उपद्रव बना रहेगा। अस्वीकृत भाग नष्ट नहीं हो सकता है। वह तुम हो जो कि वहीं मौजूद है।
यह हमेशा तुम्हारे अंदर कार्य करता रहेगा। हो सकता है कि तुमने उसे अंधकार में डाल दिया हो लेकिन वह शक्तिशाली बन जाता है, क्योंकि तुम उसे देख नहीं पाते हो और वह अंधकार के द्वारा ही कार्य करता रहता है। तुम उस के प्रति सचेत नहीं हो सकते हो, वह अपना प्रतिशोध लेता रहता है। जब कभी भी जीवन में कोई कमजोर क्षण आता है और तुम्हारा चेतन भाग शक्तिहीन है तो यह दमित भाग बाहर आ जाता है। तुम तेईस घंटों तक अच्छे और भले बने रह सकते हो, लेकिन शायद एक घंटे में... जब तुम्हारा चेतन मन थक जाता है तब यह अचेतन दृढ़ता से आग्रह करता है।
इसलिए संतों के पास भी कुछ क्षण दोष भरे होते हैं, संत भी अपने संतत्व
को अवकाश देते हैं और उन्हें ऐसा करना पड़ता है। इसलिए यदि तुम किसी संत को उसके अवकाश के क्षणों में देखोगे तो बहुत अधिक क्षुब्ध मत होना, प्रत्येक व्यक्ति को अवकाश लेने का अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति थक जाता है जब तक कि वह अस्तित्वगत रूप से संपूर्ण न हो जाए। संपूर्ण होने पर थकावट नहीं होती, क्योंकि वहां कोई दूसरा भाग नहीं है, जो निरंतर संघर्ष कर रहा हो, कठिनाई उत्पन्न कर रहा हो, स्वयं अपने में आग्रह कर रहा हो या प्रतिशोध ले रहा हो।
इसलिए हमारे पास दोशब्द हैं:एक है संत और दूसरा है ऋषि। संत के भीतर सदैव एक पापी छुपा हुआ है, परंतु ऋषि संपूर्ण होता है। ऋषि अवकाश पर नहीं हो सकता, क्योंकि वह सदा अवकाश पर ही होता है, उसके अंदर कोई अस्वीकृत भाग नहीं होता है, वह संपूर्ण रूप से समग्रता में जीता है। वह क्षण प्रति क्षण एक अखंड की भांति गतिशील होता है और वह कभी किसी चीज़ को अस्वीकार नहीं करता है। उसने स्वयं को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया है।
अस्वीकृति, माता-पिता और समाज के द्वारा उत्पन्न की जाती है। एक छोटा बच्चा हमेशा एक महान अन्वेषक होता है और वास्तव में वह अपनी खोज की शुरूआत अपने ही शरीर से करता है, जो उसके सबसे अधिक निकट है। वह चंद्रमा पर नहीं जा सकता, वह गौरीशंकर शिखर पर नहीं जा सकता, क्योंकि वे उससे बहुत अधिक दूर हैं। किसी दिन वह जा सकता है, लेकिन ठीक अभी तो सबसे अधिक निकट उसका अपना ही शरीर है। वह उसकी खोज करना शुरू करता है। वह अपने शरीर का स्पर्श करता है और उसका आनंद लेता है।
एक छोटे बच्चे को देखो, वह अपने पैर के अंगूठे का स्पर्श करता है, वह इतना अधिक प्रसन्न है जितना तुम चांद पर पंहुच कर भी नहीं हो सकते हो। उसने अपने शरीर की खोजबीन की है, वह अपने पैर के अंगूठे को छूता है, उसका आनंद लेता है और उसे अपने मुंह तक लाता है, क्योंकि यही वह ढंग या उपाय हैं, जिनसे वह खोज करता है। वह उसका स्पर्श करेगा, उसे सूंघेगा और उसका स्वाद

लेगा। लेकिन जब वह अपनी जननेंद्रिय को छूता है तो माता-पिता व्याकुल हो जाते हैं। वह व्याकुलता बच्चे में नहीं, माता-पिता में होती है। बच्चा पैर के अंगूठे अथवा अपनी जननेंद्रिय में कोई भेद नहीं करता है, वे दोनों ही उसके लिए समान हैं। अभी तक उसने अपने शरीर में ऐसा कोई विभाजन नहीं पाया है। उसके लिए पूरा शरीर-अंगुलियां, आंखें, नाक, कान, मुंह, जननेंद्रियां और अंगूठे आदि एक हैं, वे सभी एक प्रवाह में हैं। कोई उच्चतम या निम्नतम का विभाजन नहीं है।
हिंदुओं के पास विभाजन है और पूरे विश्व-भर में सभी संस्कृतियों के पास विभाजन है। हिंदू कहते हैं कि अपने दाहिने हाथ से नाभि से नीचे के भाग का स्पर्श मत करो, क्योंकि नाभि से नीचे का भाग दूषित होता है। नाभि के नीचे के भाग को अपने बाएं हाथ से स्पर्श करो और नाभि के ऊपर के भाग को अपने दाहिने हाथ से स्पर्श करो। शरीर विभाजित है और यह विभाजन मन में इतनी गहराई तक चला गया है कि दाहिने को ही हम ठीक मानते हैं। दाहिने का अंग्रेजी अनुवाद "राईट" है और "राईट" का मतलब है जो सही है, जो ठीक है। बाएं से हमारा आशय है:बुरा। इसलिए यदि तुम किसी का तिरस्कार करना चाहते हो तो बस कह दो कि वह वामपंथी है, साम्यवादी है अर्थात बायां बुरा है।
एक बच्चा नहीं जानता है कि बायां या दायां कौन सा है? बच्चा तो संपूर्ण शरीर के साथ एकता में है, वह नहीं जानता कि कौन सा भाग श्रेष्ठ है और कौन सा निम्न है, उसका शरीर एक अविभाजित प्रवाह है। जब बच्चा अपनी जननेंद्रियों को खोजकर उनके प्रति आकर्षित होता है तो माता-पिता अव्यवस्थित और व्याकुल हो जाते हैं। जब कभी एक छोटा बच्चा या बच्ची अपनी जननेंद्रि को स्पर्श करता है, तो हम तुरंत उससे कहते हैं कि अपना हाथ हटाओ, इसे मत छुओ। बच्चे को आघात लगता है, तुमने जैसे बिजली का एक झटका दे दिया है। वह समझ नहीं पाता है कि तुम क्या कह रहे हो, तुम क्या कर रहे हो?
ऐसा कई बार होगा। तुम बच्चे के मन में लगातार चोट कर रहे हो कि उसके शरीर का कुछ भागअस्पृश्य है, अस्वीकृत है। शरीर का यह जननांग वाला भाग बुरा है। मनोवैज्ञानिक रूप से तुम बच्चे के अंदर एक ग्रंथि निर्मित कर रहे हो। बच्चा विकसित होगा लेकिन वह अपने जननांगों को स्वीकार करने में कभी भी समर्थ नहीं हो पाएगा। यदि तुम अपने शरीर को समग्रता में स्वीकार नहीं कर सकते तो वहां समस्याएं और कठिनाइयां होंगी।
क्योंकि बड़ा होकर जब भी यह बच्चा प्रेम करेगा और काम-कृत्य में संलग्न होगा तब उसके भीतर एक अपराध बोध बना रहेगा कि कुछ गलत हो रहा है और आधारभूत रूप से कुछ गलत घटित हो रहा है। वह स्वयं के प्रति निंदा से भर जाएगा, वह स्वयं को दोषी ठहराएगा। प्रेम इस संसार का सुंदरतम अनुभव है और प्रेम करते हुए यह बच्चा स्वयं को अपराधी महसूस करेगा। वह कभी भी समग्रता से प्रेम नहीं कर सकता है और वह कभी भी दूसरे के प्रति पूर्ण समर्पित नहीं हो पाएगा क्योंकि भीतर ही भीतर वह स्वयं को रोक कर रखेगा। उसका आधा भाग प्रेम कर रहा है और आधा भाग उसे नियंत्रित भी कर रहा है। इसी कारण द्वन्द उत्पन्न होता है और प्र्रेम एक वेदना बन जाता है।
ऐसा जीवन के प्रत्येक आयाम में होता है। प्रत्येक चीज़ दुखदायी बन जाती है, क्योंकि माता-पिता ने प्रत्येक चीज़ में अच्छे और बुरे का एक विभाजन निर्मित कर दिया है। अपने माता-पिता और इस समाज के कारण ही तुम दुखी हो। इसलिए ऐसा ही व्यवहार तुम अपने बच्चों के साथ मत करना। हालांकि यह बहुत कठिन होगा, क्योंकि तुम विभाजित हो और तुम अपने बच्चे को भी विभाजित करना चाहोगे और यह अचेतन रूप से हो ही रहा है।
लेकिन यदि यदि तुम सजग हो जाते हो... यदि तुम वास्तव में ध्यान कर रहे
हो तो तुम सजग हो ही जाओगे। अपने बच्चे के भीतर ऐसी खण्डित मानसिकता को पैदा मत करना, उसे विभाजित मत करना, उसे पृथक मत करना। तुमने बहुत सहन किया है, पर अपने बच्चे के लिए भी वैसे ही दुख और कष्ट निर्मित मत करना। यदि तुम वास्तव में उससे प्रेम करते हो, तो तुम उसे विभाजित नहीं करोगे, क्योंकि यह विभाजन ही दुख का निर्माता है। तुम संपूर्ण और समग्र बनने में उसकी सहायता करोगे, क्योंकि संपूर्णता ही धार्मिकता है और यह संपूर्णता ही परम आनंद की संभावना को उत्पन्न करती है, यह संपूर्णता ही शिखर अनुभवों के लिए द्वार खोल देती है।

तुम एक बच्चे की संपूर्ण बनने में कैसे सहायता कर सकते हो? पहली बात-सजग बने रहना, जिससे अचेतन रूप से तुम उसे विभाजित न कर दो। किसी बात की निंदा न करना। यदि तुम अनुभव करते हो कि कोई चीज़ हानिकारक है, तो बच्चे को बता देना कि यह हानिकारक है, लेकिन यह मत कहना कि वह बुरी है, क्योंकि जब तुम किसी चीज़ को हानिकारक कहते हो तो तुम एक तथ्य बतला रहे हो और जब तुम उसी चीज़ को बुरी कहते हो तो तुम अपना मूल्यांकन कर रहे हो।
माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि उन्हें बच्चे को जीवन की बहुत सी चीज़ों के बारे में बताना है क्योंकि बच्चे बहुत कुछ नहीं जानते हैं। तुम्हें बच्चे को बताना होगा कि आग के निकट मत जाओ क्योंकि यह हानिकारक है। यदि तुम जल गए तो तुम्हें पीड़ा होगी, तुम्हें कष्ट होगा, परंतु फिर भी यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम क्या निर्णय लेते हो? मेरा यह अनुभव रहा है कि जब कभी मैं आग से जला हूं तो मैंने बहुत कष्ट पाया है। मैं तुम्हें अपना अनुभव बता रहा हूं, लेकिन फिर भी यदि तुम आग के निकट जाना चाहते हो, तुम ऐसा कर सकते हो, पर यह हानिप्रद है।
जो हानिकारक है, उसके बारे में कहो... जो लाभदायक है, उसके बारे में कहो, लेकिन किसी चीज़ को अच्छा या बुरा मत कहो। यदि तुम सजग हो तो तुम अपने शब्दकोश में से "अच्छा" और "बुरा", इन दोशब्दों को निकाल दो क्योंकि अच्छे और बुरे के साथ तुम अपना मूल्यांकन बीच में ला रहे हो। तुम कह सकते हो कि यह हानिप्रद है परंतु फिर भी स्वतंत्रता की अनुमति दो, क्योंकि तुम्हारा अनुभव बच्चों का अनुभव नहीं बन सकता। बच्चों को स्वयं अनुभव करना होगा। यहां तक कि हानिकारक अनुभवों से भी गुजरना होगा, केवल तभी वे विकसित हो सकते हैं। कभी कभी उन्हें गिरना भी होगा, ज़ख्मी भी होना होगा, केवल तभी वे उस अनुभव को ले पायेंगे। उन्हें प्रत्येक कृत्य से होकर गुज़रना होगा- गिरना, चोट, भय... परंतु विकसित होने का केवल यही एक मार्ग है।
यदि तुम बच्चे को बहुत अधिक सुरक्षा देते हो तो वह विकसित नहीं होगा। बहुत से लोग बच्चे ही बनेरह जाते हैं और उनकी मानसिक आयु कभी भी बचपन से पार विकसित नहीं हो पाती है। वे बूढ़े हो जाते हैं, हो सकता है कि कोई सत्तर वर्ष का हो लेकिन उसकी मानसिक आयु लगभग सात वर्ष की ही बनी रहती है, क्योंकि वे अत्याधिक सुरक्षा में रहे हैं।
बहुत समृद्ध परिवारों को देखो। उनके बच्चे बहुत अधिक सुरक्षा में रखे जाते हैं, उन्हें गलती करने की, कुछ नया अनुभव करने की, गुमराह होने की या भटकने की स्वतंत्रता नहीं दी जाती है। लगभग हर क्षण उनके सेवक, शिक्षक, गवर्नेस आदि उन के साथ रहते हैं, उन्हें कभी भी अकेले नहीं रहने दिया जाता है। तब देखो कि उनके साथ होता क्या है? अधिकांशतः सदैव ही, धनी परिवार में लगभग औसत अथवा सामान्य बुद्धि के बच्चों का जन्म होता है। प्रतिभावान या कुशाग्र बुद्धि वाले लोग धनी परिवारों से नहीं होते हैं। ऐसा होना कठिन है। युग प्रवर्त्तक या नवीन प्रतिभाएं इन परिवारों से नहीं होते, साहसी लोग इन परिवारों से नहीं होते, वे हो भी नहीं सकते। वे इतने अधिक संरक्षित हैं कि वे कभी विकसित नहीं हो सकते हैं।
विकास के लिए असुरक्षा आवश्यक है, पर सुरक्षा की भी आवश्यकता होती है, दोनों ही चाहिए। एक माली पौधों और वृक्षों की सुरक्षा करता है, उनकी सहायता करता है, उनकी देखभाल करता है, लेकिन फिर भी उन्हें धूप, वर्षा और तूफानों में लहराने की स्वतंत्रता देता है। तूफान, धूप और अन्य खतरों से सुरक्षित रखने के लिए माली अपने पौधों को घर के अंदर नहीं ले जाएगा। यदि तुम वृक्ष को घर के अंदर ले जाओगे तो वह मर जाएगा। शीशे की कृत्रिम पौधशाला में रखे हुए समस्त पौधे अप्राकृतिक होते हैं और हम सब अपने माता- पिता के द्वारा मिले इस आवश्यकता से अधिक संरक्षण के कारण ही शीशे की पौधशाला के अप्राकृतिक पौधों के समान हो गए हैं।
बच्चों की सुरक्षा मत करो परंतु उन्हें असुरक्षित भी मत छोड़ो। एक छाया की भांति उनका अनुसरण करो। उनकी देखभाल करो, सावधानी बरतो और एक संतुलन बनाओ। जब कभी भी कोई जानलेवा खतरा हो तो उनकी सुरक्षा करो, लेकिन जब कभी तुम अनुभव करो कि स्थिति बिल्कुल भी खतरनाक नहीं है तो उन्हें स्वतंत्रता दो। इस स्वतंत्रता से वे विकसित होंगे। वे जितना अधिक विकसित होंगे, तुम उतनी ही स्वतंत्रता की अनुमति दो। समय के साथ, जब बच्चा आयु के

अनुसार परिपक्व बनता है, तब उसे पूरी स्वतंत्रता देनी चाहिए, क्योंकि प्रकृति ने अब उसे एक युवा मनुष्य बना दिया है। अब अत्याधिक चिंता करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। कभी-कभी दुर्घटनाएं होंगी, लेकिन उनका भी अपना एक मूल्य है।
बच्चे को संपूर्णता दो। अपनी सचेतनता और सजगता का संक्रमण उसके भीतर
भी होने दो। उसे प्रेम करो, उसे बताओ कि तुम्हारा अनुभव क्या था, लेकिन तुम्हारे अनुभव का अनुसरण करने के लिए उसे बाध्य मत करो। उस पर कुछ थोपने का प्रयास मत करो। यदि वह स्वयं, अपनी इच्छा से तुम्हारा अनुसरण करे तो ठीक है, परंतु यदि वह अनुसरण नहीं करता है तोप्रतीक्षा करो, कोई जल्दबाजी नहीं है।
सही अर्थों में एक पिता अथवा एक मां बन पाना संसार का सबसे कठिन कार्य
है और लोग सोचते हैं कि मां-बाप बनना सबसे अधिक सरल है।
मैंने सुना है... एक स्त्री टैक्सी में बाजार से घर लौट रही थी और वह टैक्सी ड्राइवर थोड़ा सनकी था। वह बड़ी तेज गति से टेढ़ी-मेढ़ी गाड़ी चला रहा था, किसी भी क्षण दुर्घटना हो सकती थी। वह बहुत तेज़ी से टैक्सी चला रहा था। वह स्त्री बहुत घबराई हुई थी। सीट के एक कोने में सिमटी हुई, वह कई बार उससे कह चुकी थी कि इतनी तेज़ गाड़ी मत चलाओ, मुझे भय लग रहा है। परंतु वह सुन ही नहीं रहा था। तब उस स्त्री ने कहा:"सुनो! मेरे घर पर बारह बच्चे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यदि मुझे कुछ हो गया तो उन बारह बच्चों का क्या होगा"
यह सुनते ही ड्राइवर बोला:"और आप मुझे सजग होने के लिए कह रही हैं। यह करना कठिन है।"
वह इशारा कर रहा है कि आपने बारह बच्चों को जन्म दे दिया और आप सजग नहीं थीं और आप मुझसे ड्राइविंग करने में सजग होने के लिए कह रही हैं। शारीरिक रूप से अनेक बच्चों को जन्म देना सरल है और इस में कोई भी समस्या नहीं है, जानवर भी सरलता से ऐसा कर लेते हैं। परंतु एक मां बनना बहुत कठिन है और यह संसार में सबसे अधिक कठिन कार्य है। एक पिता बनना और भी अधिक कठिन है, क्योंकि एक मां बनना तो स्वाभाविक और प्राकृतिक है, पर एक पिता होना स्वाभाविक नहीं है। पिता बनना एक सामाजिक घटना है। हमने पिता का सृजन किया है, पर वह प्रकृति में मौजूद नहीं है। प्रकृति में माता का अस्तित्व है। इसलिए एक पिता बनना और भी अधिक कठिन है, क्योंकि इसके लिए कोई स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है। पिता होना कठिन है, क्योंकि किसी मनुष्य का निर्माण करना एक सर्वाधिक उत्तम सृजनात्मक कृत्य है। सजग बनो। अधिक स्वतंत्रता दो। अच्छे और बुरे का भेद मत करो, दोनों को स्वीकार करो और दोनों तरह के बच्चों को विकसित होने में उनकी सहायता करो। बच्चों के विकास में उनकी सहायता करना ही तुम्हारे लिए एक गहन ध्यान बन जाएगा और तुम भी उनके साथ विकसित होते रहोगे। जब तुम्हारे बच्चे की "प्रामाणिक-हां" अथवा "प्रामाणिक-न" की पूर्ण खिलावट होगी... क्योंकि इस संसार में कुछ सुंदर और परिपक्व लोग हैं जो"प्रामाणिक-न" की दावेदारी करते हैं, जैसे नीत्शे, परंतु उसकी "न" अत्यंत सुंदर है, उसकी "न" आकर्षक है। "नहीं" कहने की उसकी प्रज्ञा इतनी विलक्षण और अद्भुत है कि यदि नीत्शे जैसे लोग न होते तो संसार इतना समृद्ध न होता। वह "हां" नहीं कह सकता है। यह उसके लिए कठिन है। "नहीं" में ही उसका पूरा अस्तित्व है।
बुद्ध भी एक "प्रामाणिक-न" कहने वाले हैं। उन्होंने कहा कि कोई ब्रह्म अथवा परमात्मा नहीं है, कोई आत्मा नहीं है और कोई संसार नहीं है। उनसे अधिक "न" कहने वाला कोई नहीं है। वह कहते हैं कुछ भी नहीं है। वह "नहीं" कहे चले जाते हैं, वह विलोपन किए चले जाते हैं। उनसे एक "हां" का मिल पाना बहुत कठिन है, लगभग असंभव है। परंतु उस "नहीं" से एक कितना सुंदर सारभूत व्यक्तित्व विकसित हुआ। वह "नहीं" अनिवार्य रूप से संपूर्ण और समग्र होनी चाहिए।
"प्रामाणिक-हां" कहने वाले भी बहुत लोग हुए, सभी भक्त और सभी श्रद्धावान लोगजैसे मीरा, चैतन्य, जीसस अथवा मुहम्मद आदि, ये सब "हां" कहने वाले लोग हैं। इस तरह दोप्रकार के धर्म हुए हैं। निश्चित रूप से एकधर्म जो"नहीं" कहने वालों के द्वारा निर्मित हुआ और दूसरा धर्म जो"हां"

कहने वालों के चारों ओर निर्मित हुआ। तुम्हारा भी इन्हीं दोनों में से किसी एक धर्म से संबंध होगा। यदि तुम "नहीं" कहने वाले हो तो बौद्ध धर्म तुम्हारी सहायता करेगा और यदि तुम "हां" कहने वाले हो तो बौद्ध धर्म तुम्हारी किसी भी प्रकार की सहायता नहीं करेगा, तब वह विनाश करेगा। तब ईसाईधर्म सहायता करेगा, हिन्दु धर्म सहायता करेगा।
दोनों ही आवश्यक हैं। जब मैं ऐसा कहता हूं तो मेरा अर्थ है कि यह दोनों ही प्रकार के धर्म सदैव एक अनुपात में बने रहे हैं, जैसे विश्व में पुरुष और स्त्रियां लगभग एक अनुपात में ही रहे हैं। पूरी दुनिया एक सही अनुपात में विभाजित है:आधे पुरूष और आधी स्त्रियां। यह एक चमत्कार है कि कैसे प्रकृति इस अनुपात को बनाए रखती है? लगभग दूसरे सभी आयामों में भी यह समान अनुपात बना रहता है। आधे लोग "नहीं" कहने वाले और आधे लोग "हां" कहने वाले होते हैं। आधे लोग ज्ञान-मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं और आधे लोग प्रेम-मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं। प्रेम "हां" कह रहा है और ज्ञान हमेशा "नहीं" कह रहा है। प्रकृति के द्वारा यह अनुपात सदैव ही एक संतुलन में स्थापित रहता है।
यदि तुम्हारे दो बच्चे हैं और उनमें से एक "हां" कहने वाला तथा दूसरा "नहीं" कहने वाला है, तो यह ठीक अनुपात है। यह अच्छा है कि तुम्हारे अपने घर में तुम्हारे पास दोनों हैं। तुम उनमें एक लयबद्धता सृजित कर सकते हो। "नहीं" कहने वाले को नष्ट करने का प्रयास मत करो, उसे पीछे धकेलकर केवल "हां" कहने वाले की सहायता मत करो। उन दोनों के मध्य में एक समस्वरता निर्मित करो। ये दो बच्चे, "यिन" और "यांग" ऊर्जा के रूप में दो विरोधी धु्रव हैं और दोनों पूरे संसार के प्रतिनिधि हैं, उनके मध्य एक लयबद्धता सृजित करो और तब तुम्हारा परिवार वास्तव में एक सच्चा परिवार होगा... एक अद्भुत संगठित इकाई... एक सुव्यवस्थित, एक मैत्रीपूर्ण और एक सुसंगत पारिवारिक इकाई होगा।
लेकिन किसी भी प्रकार की व्याख्या मत करो, तिरस्कार मत करो, निंदा मत करो और नैतिकतावादी मत बनो। केवल एक पिता और एक मां बनो। उनसे प्रेम करो, उन्हें स्वीकार करो और एक समृद्ध व्यक्तित्व बनने में उनकी सहायता करो। समस्त प्रेम का यही आधार है कि दूसरे को उसके मूलभूत स्वरूप से परिचित कराने में उसकी सहायता करो। यदि तुम उसे अपनी ओर खींचकर रखना चाहते हो, उसे नियंत्रित करना चाहते हो तो तुम प्रेम में नहीं हो, तब तुम विध्वंसक हो।

दूसरा प्रश्नः
ओशो! पश्चिम में हमारे विकास की अधिकतम विधियों की प्रवृत्ति समूह उन्मुखी है, जैसे एनकाउंटर गु्रप्स और साइकोड्रामा आदि। यद्यपि यहांपूरब में अनेक आश्रम हैं जहां बहुतेरे साधक साथ रहते हैं, परंतु फिर भी व्यक्तिगत विकास पर बल दिया जाता है।
क्या आप इन दोनों मार्गों के बारे में हमें बताने का कष्ट करेंगे?

विकास की दोविधियां हैं। तुम अपने आत्मिक विकास पर अकेले ही कार्य कर सकते हो अथवा तुम एक समूह या संगठन में रहकर भी कार्य कर सकते हो। हालांकि पूरब में दोनों तरह की विधियां हमेशा से ही मौजूद रही हैं। सूफी विधियां, समूह विधियां हैं। भारत में भी समूह विधियां अस्तित्व में रही हैं, लेकिन वे कभी भी इतनी अधिक प्रचलित और व्यापक नहीं हुईं जितनी कि इस्लाम अथवा सूफी धर्म में रहीं। जहां तक मात्रा अथवा परिमाण का संबंध है, यह एक नई घटना है कि पश्चिम पूर्ण रूप से समूह की ओर उन्मुख है। इससे पूर्व ऐसी समूह विधियां कभी भी नहीं रहीं, जैसी कि अब पश्चिम में मौजूद हैं और उनके द्वारा बहुत अधिक लोग कार्य कर पा रहे हैं।
इसलिए एक ढंग से हम यह कह सकते हैं कि पूरब "व्यक्तिगत प्रयासों" की
ओर उन्मुख रहा और अब पश्चिम "समूह-विधियों" की दिशा में विकसित हो रहा है। ऐसा क्यों है और इसमें क्या अंतर है? यह अंतर क्यों है?
समूह-विधियां केवल तभी कारगर हो सकती हैं, जब तुम्हारा अहंकार एक ऐसी स्थिति में आ गया हो कि उसे सहन करना एक बोझ बन जाए। जब अहंकार इतना बोझिल

हो जाता है कि अकेले रहना दुखदायी हो जाता है तब समूह-विधियां अर्थपूर्ण होती हैं, क्योंकि समूह में तुम अपने अहंकार को विलय कर सकते हो।
यदि अहंकार बहुत अधिक विकसित नहीं हुआ है, तब वैयक्तिक विधियां तुम्हारी सहायता कर सकती हैं। तुम किसी पहाड़ पर जा सकते हो, तुम अकेले रह सकते हो अथवा तुम एक आश्रम में सदगुरु के साथ रहते हुए भी अकेले कार्य कर सकते हो। तुम अपना ध्यान करते हो, दूसरे अपना ध्यान करते हैं और तुम कभी एक साथ कार्य नहीं करते हो।
भारत में हिंदुओं ने कभी भी समूहों में प्रार्थना नहीं की। मुसलमानों
के आगमन के साथ ही भारत में समूह-प्रार्थना ने प्रवेश किया। मुसलमान समूह में प्रार्थना करते हैं, हिंदु सदैव एकांत में प्रार्थना करते थे, यहां तक कि जब वे मंदिर भी जाते हैं, तो अकेले ही जाते हैं। यह एक प्रकार का एकल संबंध है, केवल तुम और तुम्हारा परमात्मा। यह तभी संभव है जब अहंकार उतना विकसित न हुआ हो कि वह बोझ लगने लगे। भारत में अहंकार को विकसित होने में कभी सहायता नहीं मिली, क्योंकि प्रारंभ से ही हम लोग अहंकार के विरुद्ध रहे हैं। परंतु तुम अहंकार में विकसित होते हो, लेकिन व्यक्तिगत तौर पर यदि तुम्हारे अहंकार का तल धुंधला है, तुम विनम्र हो, क्योंकि वास्तव में तुम एक अहंकारी व्यक्ति नहीं हो। तुम्हारे भीतर अहंकार का शिखर नहीं है, वहां विनम्रता की समतल सपाट भूमि है। फिर भी तुम अहंकारी की तरह व्यवहार करते होक्योंकि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को वैसा होना अनिवार्य है, लेकिन तुम वास्तव में अहंकारी नहीं हो। तुम हमेशा सोचते हो कि यह अहंकार गलत है और तुम स्वयं को उससे दूर खींचने का प्रयास करते हो। कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में तुम्हें उत्तेजित किया जा सकता है और तुम्हारा अहंकार एक शिखर बन सकता है, लेकिन सामान्य रूप से वह एक शिखर नहीं है और केवल एक समतल भूमि है।
भारत में अहंकार ठीक क्रोध के समान होता है, यदि कोई व्यक्ति तुम्हें उत्तेजित करता है तो तुम क्रोधित हो जाते हो और यदि कोई तुम्हें उत्तेजित नहीं करता है, तो तुम क्रोधित नहीं होते हो। पश्चिम में अहंकार एक स्थाई चीज़ बन गया है। वह क्रोध के समान नहीं है, वह अब श्वास-प्रश्वास के समान है। अब उसे उत्तेजित करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है, वह वहां है ही, वह वहां निरंतर बना रहता है।
इस अहंकार के कारण ही, समूह बहुत सहायक है। समूह में, समूह के लोगों के साथ कार्य करते हुए और स्वयं को समूह में विलीन करते हुए तुम अपने अहंकार को सरलता से पृथक कर सकते हो। इसी वजह से न केवल धर्म में बल्कि राजनीति में भी कुछ तथ्य ऐसे हैं जो केवल पश्चिम में ही मौजूद हो सकते हैं। उदाहरण के लिए एकाधिकार अथवा तानाशाही अस्तित्व में आ सकी और वह पहले जर्मनी में ही संभव हो सकी, जो पश्चिम का सबसे अधिक अहंकारी देश है। पूरे विश्व में जर्मनी के अहंकार जैसा कुछ भी नहीं है।
इसी कारण हिटलर का उदय संभव हो सका, क्योंकि वहां प्रत्येक व्यक्ति अहंकारी है और प्रत्येक व्यक्ति को विलय होने की आवश्यकता है।
नाज़ी की रैलियों में लाखों लोग चल रहे हैं, तुम उस भीड़ में स्वयं को भूल सकते हो, तुम्हारे व्यक्तित्व को वहां मौजूद रहने की आवश्यकता नहीं है। तुम केवल एक भीड़ बन जाते हो, बैंड द्वारा संगीत बज रहा है, सुरों की ध्वनि है, एक उत्तेजना भरा शोर है और हिटलर का सम्मोहित कर देने वाला करिश्माई व्यक्तित्व है। इन सब के बीच तुम्हारे मौजूद होने की आवश्यकता ही नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति हिटलर की ओर देख रहा है, तुम्हारे चारों ओर का पूरा जनसमूह एक सागर के समान है और तुम बस उसकी एक लहर बन जाते हो। तुम्हें अच्छा महसूस होता है, तुम ताजगी और नवीनता का अनुभव करते हो। तुम युवा तथा प्रसन्न होने का अनुभव करते हो। तुम अपने दुख, अपनी वेदना और अपने अकेलेपन को भूल जाते हो। यहां तुम अकेले नहीं हो। एक विशालकाय जनसमूह तुम्हारे साथ है और तुम उसके साथ हो। तुम्हारी व्यक्तिगत या निजी परेशानियां दूर हो जाती हैं। अचानक एक द्वार खुलता है, तुम हल्के हो जाते हो, जैसे मानो तुम आकाश में उड़े जा रहे हो।
हिटलर इस कारण सफल नहीं हुआ कि उसके पास एक अर्थपूर्ण और विशेष विचारधारा थी। बल्किउसके वैचारिक तथ्य मूर्खतापूर्ण थे, बचकाना और

अपरिपक्व थे। वह इसलिए सफल नहीं हुआ कि उसने जर्मनी के लोगों कोप्रभावित कर दिया था और विश्वास दिला दिया था कि वह ठीक है। जर्मन के लोगों कोप्रभावित करना बहुत अधिक कठिन कार्य है और वह सबसे दूभर कार्यों में से एक है, क्योंकि वे लोग तार्किक हैं, उनके मस्तिष्क में तर्क-वितर्क भरा है और प्रत्येक ढंग से उनकी समझ एक परिष्कृत समझ है। इसलिए उनकोप्रभावित करना बहुत कठिन है और वह भी हिटलर द्वारा प्रभावित किया जाना तो लगभगअसंभव था। नहीं, हिटलर ने उन लोगों कोप्रभावित करने का प्रयास कभी नहीं किया। उसने केवल सामूहिक सम्मोहन जैसे तथ्य को निर्मित किया और इसी बात से जर्मन उसका कायल बन गया।
प्रश्न यह नहीं था कि हिटलर क्या कह रहा था? प्रश्न यह था कि जब वे सब भीड़ में थे, समूह में थे तो वह सब क्या अनुभव कर रहे थे? समूह में होना उन सब के लिए भारमुक्त करने वाला अनुभव था, वह भारमुक्त होना इतना सुखदायी था कि उनके लिए इस व्यक्ति का अनुसरण करना महत्त्वपूर्ण बात बन गई। था। वह जो कुछ भी कह रहा था, चाहे ठीक या गलत, तर्कपूर्ण या अतर्कपूर्ण या मूर्खतापूर्ण, इससे कोई औचित्य न था, बस उसका अनुसरण करना मुख्य बात थी। वे जर्मन लोग स्वयं से इतने अधिक ऊब चुके थे कि वह जनसमूह में तल्लीन हो जाना चाहते थे। इसी कारण तानाशाही, एकतंत्रवाद, नाज़ीवाद और इस तरह के सभी सामूहिक पागलपन पश्चिम में संभवतः स्थापित हो सके।
पूरब में केवल जापान ही इसका अनुसरण कर सका, क्योंकि पूरब में जापान
ही जर्मनी के प्रतिरूप है। पूरब में जापान ही सबसे अधिक पश्चिमी देश है। जापान में भी वैसा ही माहौल था इसलिए वह बड़ी आसानी से हिटलरी पागलपन के साथ संबंध जोड़ सका।
ऐसी ही सामूहिक गतिविधियां अन्य क्षेत्रों में भी हैं, जैसे धर्म और मनोविज्ञान में भी यह हो रहा है। वहां सामूहिक ध्यान हो रहे हैं और समूह-ध्यान ही आने वाले समय में ज्यादा देर तक टिक सकेगा। जब सौ लोग एक साथ होते हैं तो तुम आश्चर्य में पड़ जाओगे, विशेष रूप से वे लोग आश्चर्यचकित होंगे, जो पश्चिमी मन से अनभिज्ञ हैं। सौ लोग एक दूसरे का हाथ पकड़कर चुपचाप बैठे हुए हैं और एक दूसरे की उपस्थिति को अनुभव कर रहे हैं और इस में वे लोग बहुत प्रफुल्लता का अनुभव कर रहे हैं।
कोई भी भारतीय शायद इतनी प्रफुल्लता का अनुभव नहीं करेगा। वह कहेगा
कि यह कैसी मूर्खता है? सौ लोग एक दूसरे का हाथ थामे हुए गोल घेरे में बैठे हैं, वे कैसे प्रफुल्लित हो सकते हैं? ऐसे में वे कैसे परम आनंदित हो सकते हैं? ज्यादा से ज्यादा तुम दूसरे के हाथों के पसीने का ही अनुभव कर सकते हो। लेकिन पश्चिम में सौ लोग एक दूसरे के हाथों को पकड़े हुए प्रफुल्लित और आनंदित होते हैं। क्यों? क्योंकि अति अहंकार के कारण वहां किसी दूसरे के हाथों को पकड़ना ही लगभग असंभव है। यहां तक कि पति और पत्नी भी एक दूसरे के साथ संयुक्त नहीं हैं। संयुक्त परिवार जो सामूहिक आधार थे, वह विलुप्त हो गए हैं। समाज विलुप्त हो गया है। अब पश्चिम में, वास्तव में समाज का अस्तित्व ही नहीं है, तुम अकेले ही चल रहे हो। अमेरिका में, मैं उनकी सांख्यिकी गणना के बारे में पढ़ रहा था, वहां प्रत्येक व्यक्ति तीन वर्षों के भीतर ही किसी दूसरे नगर में चला जाता है। अब, भारत के ग्रामीण लोग ही वहां स्थाई रूप से रह पाते हैं बल्कि उनका पूरा परिवार वहां हजारों वर्षों से रह रहा है। यह भारतीय लोग उस भूमि की जड़ों में जम गए हैं। वे वहां के लोगों से प्रसन्नतापूर्वक संबंधित है और अमेरिका वासी भी इनसे संबंधित हैं। यहलोग अमेरिका में अजनबी नहीं है, वह एक खुशहाल गांव की तरह वहां बसे हुए हैं। वह वहीं पैदा हुए हैं और शायद वहीं मर भी जाएं। अमेरिका में, औसत रूप से प्रत्येक तीन वर्षों बाद लोग स्थान बदल लेते हैं, नगर बदल लेते हैं। यह अब तक की सर्वाधिक खानाबदोश संस्कृति है, घुमक्कड़ जाति है, न कोई मकान, न परिवार, न गांव, न शहर और वास्तव में कोई भी घर नहीं। तीन वर्षों में तुम कैसे जड़ें जमा सकते हो? तुम जहां कहीं भी जाते हो, तुम एक अजनबी ही होते हो। पूरा जनसमूह तुम्हारे चारों ओर है, लेकिन तुम उससे संबंधित नहीं हो। इसी कारण वैयक्तिकता का जन्म होता है। एक सामूहिक विधि में, जिसमें तुम विकसित होने के लिए गए हो, उसमें एक दूसरे के शरीरों को स्पर्श करते हुए बैठने से तुम उस समुदाय के हिस्से बन

जाते हो। एक दूसरे के हाथों का स्पर्श करते हुए, एक दूसरे के हाथों को थामकर, केवल परस्पर निकटता से साथ लेटे हुए, तुम "एक होने" का अनुभव करते हो। ऐसे में एक धार्मिक परमानंद का अनुभव होता है। सौ लोग शालीनता से एक दूसरे का स्पर्श करते हुए नाच रहे हैं, वे एक-दूसरे के चारों ओर घूम रहे हैं और कुछ ही क्षणों में उनका अहंकार विलुप्त हो जाता है और उनका परस्पर विलय हो जाता है, वे सब एक हो जाते हैं। यह विलीनता एक प्रार्थनापूर्ण कृत्य बन जाती है। परंतु राजनीतिज्ञ इसका उपयोग विध्वंसक लक्ष्यों के लिए कर सकते हैं। लेकिन धर्म इसका उपयोग बहुत सृजनात्मक ढंग से कर सकता है, यह एक ध्यान भी बन सकता है।
पूरब में लोग अधिकांशतः समुदायों में रहते हैं, इसलिए वे जब भी धार्मिक होना चाहते हैं, तब वे हिमालय जाना चाहते हैं क्योंकि उनके चारों ओर बहुतायत में समाज है। वे लोग स्वयं से थके हुए नहीं हैं, बल्कि वे समाज से थक चुके हैं। यही अंतर है। पश्चिम में तुम स्वयं से ऊब चुके हो और अब तुम कोई सेतु बनाना चाहते हो कि कैसे दूसरों के साथ और समाज के साथ संपर्क स्थापित किया जाए और कैसे दूसरों से संबंधित हुआ जाए? जिससे तुम स्वयं को भूल सको। पूरब में लोग समाज से थक चुके हैं। वे समाज की भीड़ में बहुत लंबी अवधि से रहते आए हैं और उनके चारों ओर के समाज ने उन्हें इतना अधिक घेर रखा है कि वे स्वतंत्रता का अनुभव नहीं कर पाते हैं। इसलिए पूरब में, जब कभी भी कोई व्यक्ति स्वतंत्रता और मिक्त की चाह रखता है या वह शांत और मौन होना चाहता है तो वह हिमालय की ओर प्रस्थान कर जाता है।
पश्चिम में तुम समाज की ओर दौड़ते हो और पूरब में लोग समाज से दूर भागते हैं। इसी कारण पूरब में अकेलेपन की विधियां तथा वैयक्तिक विधियां अस्तित्व में रही हैं और पश्चिम में सामूहिक विधियां अस्तित्व में हैं। मैं यहां क्या कर रहा हूं? मेरी विधि एक संश्लेषण है, एक जोड़ है। सक्रिय ध्यान के प्रारंभिक चरणों में तुम समूह के भाग होते हो और ध्यान के अंतिम चरण में वह समूह विलुप्त हो जाता है और तुम अकेले बचते हो। मैं एक विशेष कारण से ऐसा कर रहा हूं क्योंकि अब पूरब और पश्चिम असंगत हो गए हैं।
पूरब अब पश्चिम की ओर मुड़ रहा है और पश्चिम पूरब की ओर मुड़ रहा है। इस सदी के अंत तक न कोई पूरब होगा और न कोई पश्चिम होगा, केवल एक विश्व होगा। प्राचीन समय से यह भौगौलिक विभाजन चलते आए हैं, परंतु अब यह विभाजन ज्यादा देर नहीं रह पाएगा।
तकनीकी ज्ञान ने इसे पहले से ही विलुप्त करना शुरू कर दिया है, लेकिन
मन के अभ्यस्त व्यवहार के कारण यह विभाजन बना हुआ है। अब यह केवल एक मानसिक धारणा की भांति है, पर यथार्थ में वह विभाजन धीरे-धीरे विलुप्त हो रहा है। इस सदी के अंत तक न पूरब होगा, न पश्चिम होगा, केवल एक विश्व होगा। लगभग ऐसा हो ही चुका है। जो लोग देख सकते हैं, जिनके पास पैनी और निष्पक्ष दृष्टि है वह देख सकते हैं कि ऐसा हो ही चुका है। अब एक संश्लेषण की आवश्यकता होगी, समूह और एकल, दोनों तरह की विधियों की आवश्यकता होगी। प्रारंभ में तुम एक समूह में कार्य करते हो और अंत में तुम पूर्ण रूप से स्वयं के साथ हो जाते हो।
समाज से प्रारंभ करो और स्वयं तक पहुंचो। समुदाय से पलायन मत करो, भागो मत, संसार में रहो, लेकिन उसमें फंसो मत। संबंध बनाओ, लेकिन तब भी अकेले बने रहो। प्रेम करो और ध्यान करो। ध्यान करो और प्रेम करो।
प्रश्न यह नहीं है कि प्राथमिक रूप में और गौण रूप में क्या घटित होता है? समस्या यह नहीं है कि पहले और बाद में क्या घटित होता है? यदि तुम एक पुरुष हो तो ध्यान और प्रेम करो और यदि तुम एक स्त्री हो तोप्रेम और ध्यान करो, लेकिन चुनाव मत करो। "प्रेम एवं ध्यान" यही मेरा नारा है।
"प्रेम एवंध्यान"-यह मेरा संदेश है-- और यही आशीष भी है।
आज इतना ही।

सफेद बादलों का मार्ग
पंद्रहवां प्रवचन

वर्तमान में जीना ही संन्यास है

पहला प्रश्नः
ओशो! आपने कहा है कि हमें दूसरों के साथ संबंध नहीं जोड़ना चाहिए, लेकिन हममें से अधिकतम लोग जो पश्चिम से हैं, वहां हमारे मित्र और संबंधी हैं, हमने यहां जो कुछ पाया है, उसे उनके साथ बांटकर हम उन्हें अपना सहभागी बनाना चाहते हैं।
संन्यास के बारे में हमें उन्हें क्या बताना चाहिए? आपके बारे में हमें उन्हें क्या बताना चाहिए? और जो स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता है, उसे हम कैसे अभिव्यक्त कर सकते हैं?

कुछ बातें ऐसी हैं, जिन्हें बताया नहीं जा सकता, तुम मौखिक रूप से उन्हें नहीं बता सकते। पर ऐसी बातों को बांटने का एक उपाय है और वह है तुम्हारे स्वयं के अस्तित्व के द्वारा।
लोगों को यह बताने के लिए कि संन्यास क्या होता है, केवल एक ही उपाय है
कि तुम स्वयं एक सच्चे संन्यासी बनो। यदि तुम एक संन्यासी हो तो तुम्हारा पूरा सन्यस्त अस्तित्व ही वह सब कुछ कहेगा, जोशब्दों में नहीं कहा जा सकता है। यदि तुम वास्तव में एक संन्यासी हो तब तुम्हारी पूरी जीवन-शैली इतनी प्रेरणादायक बन जाएगी कि जिसका विचार भी नहीं किया जा सकता है।
जो जीवंत है, उसे कहा नहीं जा सकता। भाषा उसे अभिव्यक्त करने में शक्तिहीन है। भाषा केवल मृत तथ्यों को ही बतला सकती है। तुम संन्यास के बारे में कुछ बातें बता सकते हो, लेकिन वह सत्य न होगा। तुम संन्यास के बारे में कोई बात कैसे बता सकते हो? संन्यास तो एक आंतरिक खिलावट है, वह तो एक आंतरिक स्वतंत्रता है, वह तो भीतरी परमानंद है और वह एक वरदान है। निश्चित रूप से तुम संन्यास के बारे में बता सकते हो, लेकिन यह बताना तुम्हारे शब्दों से नहीं तुम्हारे अस्तित्व के द्वारा होगा, तुम्हारे प्रामाणिक अस्तित्व के द्वारा, तुम कैसे चलते हो, तुम कैसे बैठते हो, तुम कैसे देखते हो, तुम्हारी आंखें, तुम्हारा पूरा शरीर और तुम्हारी श्वास... अपने प्रामाणिक अस्तित्व द्वारा ही तुम उसे बांटोगे। तुम्हारे चारों तरफ का मौन, तुम्हारा निरंतर बढ़ता हुआ परमानंद ही सब कुछ बता देगा। तुम्हारी प्रेम तरंगे तुम्हारे बारे में सब कुछ बता देंगी और केवल वे ही बता सकती हैं।
केवल एक ही उपाय है कि संन्यासी बनो। संन्यास क्या है? संन्यास मन की स्वतंत्रता है। यदि तुम मन को नहीं समझते हो, तोसंन्यास को समझना भी कठिन होगा। मन, अतीत का संग्रह है।
वह सब जो तुमने अनुभव किया है, वह सब जो तुमने जाना है, वह सब जो तुमने अभी तक जिया है, वह सब जिससे अब तक तुम गुजर कर आए हो, वह सब तुम्हारी स्मृति में एकत्रित हो गया है और यह संग्रहित अतीत ही मन है। चूंकि संग्रहीत अतीत ही मन है, इसलिए मन हमेशा मृत होता है, क्योंकि वह अतीत कोढोता है। वह हमेशा मुर्दा बना रहता है, वह कभी भी जीवंत नहीं होता है। जब भी कोई चीज़ मृत हो जाती है, वह मन का एक भाग बन जाती है। वह ठीक उस धूल की भांति है, जो यात्रा के दौरान एक यात्री के वस्त्रों पर जम जाती है।
तुम अभी और यहीं हो, परंतु मन हमेशा अतीत में रहता है। मन तुम्हारी छाया है जो तुम्हारा अनुसरण करती है।
संन्यासहै:अतीत से मुक्त हो जाना और इसी क्षण में जीना। अतीत का बोझ अपनी खोपड़ी में लादे हुए न चलना ही संन्यास है। क्षण-क्षण में जीना, अतीत के प्रति मृत हो जाना जैसे मानो वह कभी था ही नहीं... मानो तुम्हारा एक नया जन्म हुआ है। प्रत्यके क्षण युवा, नूतन और निर्मल बने रहो। अपने अतीत को उठाकर अलग रख दो, उसकी धूल को एकत्र मत होने दो।
यदि तुम अतीत की धूल इकट्ठी करते हो तो तुम दिन-प्रतिदिन मंद और सुस्त होते चले जाओगे, तुम्हारी चेतना का दर्पण धूल से भरता चला जाएगा और

तुम्हारा यह दर्पण रूपी अस्तित्व किसी भी चीज़ कोप्रतिबिंबित करने में समर्थ न हो सकेगा। तुम जितना अधिक अतीत के साथ रहे हो, तुम्हारा दर्पण उतना ही अधिक धुंधला हो जाएगा और वह कुछ भी प्रतिबिंबित नहीं करेगा।
तुम्हारी संवेदनशीलता क्षीण होती जाएगी। ऐसा ही होता है।
संन्यास का अर्थ है:सभी बाधाओं को पार करना... अतीत की ओर देखकर यह समझना कि वह अब नहीं है और वह व्यर्थ है, एक बोझ है... उसे हटाकर अलग रख दो। तब तुम अभी और यहीं हो, वर्तमान में हो और इस प्रामाणिक क्षण में हो।
संन्यास का अर्थ है:समयातीत होकर रहना, न तो अतीत के द्वारा प्रभावित होना और न ही भविष्य के साथ कहीं दूर बह जाना। न तो अतीत का कोई भार हो और न भविष्य के लिए कोई कामना हो। संन्यास है लक्ष्यहीन और अकारण जीवंत होकर जीना।
यदि कोई कहता है कि संन्यास परमात्मा कोप्राप्त करने का एक साधन है,
तो वह व्यर्थ की मूर्खतापूर्ण बात कहता है। संन्यास इच्छा प्राप्ति का साधन नहीं है। संन्यास का अर्थ है इस तरह से जीना जैसे मानो तुमने संसार में सबकुछ प्राप्त कर लिया हो। अब कोई भी कामना नहीं है। चाहे तुम धन, शक्ति या प्रतिष्ठा की कामना करो अथवा परमात्मा या मोक्ष की कामना करो, इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता। मूलभूत बात तो एक सी है कि तुम कामना कर रहे हो।
जब भी तुम कामना करते हो, तो भविष्य आ जाता है और जब भी भविष्य होता है
तो वह कुछ और न होकर अतीत का ही एक प्रक्षेपण होता है। जब भी भविष्य होता है, वह एक संशोधित ज्ञात की सीमा में होता है और वह कभी भी अज्ञात नहीं होता। तुम अनजाने अज्ञात की कामना कैसे कर सकते हो? जिसे तुम जानते ही नहीं, तुम उसकी कामना कैसे कर सकते हो?
परमात्मा की कामना नहीं की जा सकती। यदि तुम कामना करते हो तो वह निश्चित ही परमात्मा नहीं है क्योंकि परमात्मा तो अज्ञात है, तुम उसकी कामना कैसे कर सकते हो? परमात्मा अनुभव के भी पार है, फिर तुम उसकी कामना कैसे कर सकते हो?
तुम सेक्स की कामना कर सकते हो, तुम शक्ति की कामना कर सकते हो, तुम अहंकार की कामना कर सकते हो क्योंकि तुम इन सब को जानते हो। तुम इन्हें अनेक जन्मों से जानते हो, लेकिन तुम परमात्मा की कामना कैसे कर सकते हो? तुम प्रेम की कामना कैसे कर सकते हो? तुम परमानंद की कामना कैसे कर सकते हो? तुमने यह सब कभी जाना ही नहीं और इनकी कामना करना असंभव है।
इसी कारण समस्त शास्त्र और सभी बुद्ध पुरूष यह कहते हैं कि परमात्मा तुम्हें घटित होता है, जब तुम कामनाहीन होते हो। मोक्ष तभी मिलता है, जब तुम कभी भी मोक्ष के पीछे भागते नहीं। तुम उस ओर जा ही नहीं सकते, क्योंकि तुम उसे नहीं जानते। निर्वाण केवल तभी घटता है, जब तुम कामनारहित होते हो। संन्यास का अर्थ है:कामना रहित हो जाना। कामना रहित यानिवर्तमान में जीना। याद रखना, वर्तमान का क्षण समय का हिस्सा नहीं है, वह समय के पार है। समय केवल तभी आता है, जब तुम अतीत की भाषा में अथवा भविष्य की भाषा में सोचते हो। वर्तमान का एक प्रामाणिक क्षण समय का भाग नहीं है, और वह तुम्हारी घड़ी की पकड़ में नहीं आता है क्योंकि घड़ी हमेशा भविष्य में गतिशील होती है। वह हमेशा भविष्य की ओर दौड़ी चली जा रही है, घड़ी कभी भी "यहीं और अभी" में नहीं होती है। वह अतीत से आ रही है और भविष्य की ओर जा रही है।
घड़ी तुम्हारे मन का प्रतिनिधित्व करती है। वह कभी भी वर्तमान में ठहरती नहीं है। जिस क्षण तुम कहते हो कि अब वह यहां है, तब तक वह और आगे बढ़ जाती है। जिस क्षण तुम देखते हो कि वह कहां है, वह क्षण अतीत बन जाता है। वह लगातार अतीत से भविष्य में छलांग लगा रही है। यदि तुम अपनी घड़ी को गौर से देखो, तो तुम देखोगे कि वह चल नहीं रही, वह छलांग लगा रही है। ऐसा लगता है कि मिनट की सुईधीमे-धीमे चल रही है परंतु उसकी छलांग बहुत छोटी है, लेकिन सेकेण्ड वाली सुई की छलांग तुम स्वयं देख सकते हो। वह शीघ्रता से, अतीत से भविष्य की ओर छलांग भरती है। वह कभी भी "यहीं और अभी" में ठहरती नहीं है और यही मन का भी ढंग है।

"अभी" समय के पार है, वह समयातीत है, तुम उसे शाश्वत कह सकते हो। तुम कभी भी इससे दूर नहीं हो, वह हमेशा ही मौजूद होता है। तुम उसमें कभी भी जा नहीं सकते और न कभी तुम उससे बाहर आते हो, वह सदैव बना ही रहता है।

यदि तुम इस तरह से जीवन जी सको कि तुम्हारा पूरा जीवन "अभी" के क्षण द्वारा आच्छादित हो जाए तो तुम एक संन्यासी हो। तुम कामनाविहीन हो, तुम परमात्मा की भी कामना नहीं करते।
जिस क्षण तुम परमात्मा की कामना करते हो, तुमने परमात्मा को भी एक वस्तु बना दिया। तब पंडितों और पुरोहितों द्वारा तुम्हारा शोषण किया जाएगा, क्योंकि वे परमात्मा को वस्तु के रूप में बेचते हैं। तब मंदिरों, मस्जिदों और गिरिजाघरों द्वारा तुम्हारा शोषण किया जाएगा, क्योंकि ये सब ऐसी दुकानें हैं, जहां परमात्मा वस्तु के रूप में बेचा जाता है। एक संन्यासी का मंदिरों और पूजागृहों से कोई भी लेना-देना नहीं होता है, क्योंकि परमात्मा कोई वस्तु नहीं है।
जब तुम कामना नहीं करते हो तो क्या होता है? इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम अपनी इच्छाओं का दमन करो, इसका यह भी अर्थ नहीं है कि तुम अपनी कामनाओं को मार दो? यह बात गहराई से समझ लेने जैसी है, क्योंकि ऐसी गलती हो चुकी है।
शास्त्र तथा जिन्होंने उस परमात्मा को जाना है वे लोग कहते हैं कि जब तुम कामनाहीन होते हो तो दिव्यता तुम पर घटित होती है। तब मन एक छलांग भरता है, ठीक उसी तरह जैसे एक बिल्ली चूहे को पकड़ने के लिए छलांग भरती है और मन इस कामनाहीनता को जोर से पकड़ लेता है और कहता है कि ठीक, यदि कामनाहीन होने से परमात्मा कोप्राप्त किया जा सकता है, तब मैं कामनाहीन होने की कामना करूंगा। अब एक और कामना बन जाती है तथा पुनः तुम चूक जाते हो। तब संन्यासी कामनाविहीन होने का प्रयास करने लगते हैं और तब कामनाहीन होना ही उनके लिए भविष्य का लक्ष्य बन जाता है।
इसलिए तुम क्या कर सकते हो? तुम कामना को मार सकते हो और सोच सकते हो
कि तुम कामनाहीन हो। अपनी कामना की मृत्यु कर देना कामना से रहित होना नहीं है क्योंकि जब तुम्हारी कामना मरती है, तो तुम भी मृत हो जाते हो। यह बात बहुत रहस्यमयी, जटिल और सूक्ष्म है। यदि तुमने अपनी सभी कामनाओं को मार दिया, तो तुम भी मृतवत हो जाओगे। यह कामनारहित होने का मार्ग नहीं है। कामनारहित होना, कामना की मृत्यु नहीं है बल्कि यह कामना का रूपांतरण है। कामना का भविष्य में गतिशील हो जाना, कामना का एक ढंग है। "यहीं और अभी" में वर्तमान क्षण का आनंद लेनाकामना का दूसरा ढंग है और यह दूसरा ढंग ही कामना शून्य होने का सही ढंग है क्योंकि वह भविष्य की ओर उन्मुख नहीं है।
एक व्यक्ति जो वास्तव में कामनाशून्य है, वह मृत नहीं है। वह तुम्हारी अपेक्षा कहीं अधिक जीवंत है क्योंकि उसकी कामना "अभी और यहीं" में केंद्रित हो गई है। यदि वह भोजन कर रहा है, तो तुम सोच भी नहीं सकते कि वह अपने सादे भोजन में भी कितना अधिक प्रसन्न है क्योंकि उसका पूरा अस्तित्व वहीं उस क्षण में है, वह खाद्य-सामग्री को केवल अपने अंदर फेंक नहीं रहा है।
एक मनुष्य जो भविष्य में रहता है, कभी भी ठीक से भोजन नहीं कर पाता है।
वह केवल भोजन को अपने अंदर फेंकता है। उसकी भोजन में कोई रुचि नहीं होती है क्योंकि उसका मन तो कहीं और... भविष्य के साथ है। वह महत्त्वाकांक्षा के साथ जीता है। वह ठीक से भोजन का मज़ा नहीं ले पाता है क्योंकि हो सकता है कि उस क्षण में वह कल के भोजन को जुटाने के बारे में सोच रहा हो। वह इस क्षण भोजन का स्वाद नहीं ले सकता है। वह इस क्षण में भी, कल की कल्पना कर सकता है कि वह कल भोजन करने कहां जाएगा, वहां कितने पकवान होंगे... लेकिन उसका अभी का क्षण चूक गया और दुर्भाग्यवश आने वाला कल पुनः आज बन जाता है और इस तरह वह अपने पूरे जीवन भर चूक ही करता रहेगा।
वह जब भी प्रेम कर रहा है, वह कुछ भी अनुभव नहीं कर रहा है, वह निराश है, लेकिन उस समय भी वह किसी दूसरी स्त्री के बारे में सोच रहा है, जिससे वह भविष्य में कभी मिलेगा। प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री के साथ ठीक

ऐसा ही बहुत बार घटित होगा, क्योंकि वास्तविक मिलन तो"अभी और यहां घटित हो रहा है परंतु मन हमेशा कल की ओर गतिशील हो सकता है। वह प्रेम करने में समर्थ न हो सकेगा। वह भलीभांति भोजन करने में समर्थ न हो सकेगा। वह प्रकृति की ओर से बरस रहे लगातार परमानंद का अनुभव करने समर्थ न हो सकेगा।

जैसे पतझड़ में वृक्ष की पत्तियां चुपचाप नीचे गिर जाती हैं, वैसे ही
वह परमानंद भी प्रत्येक क्षण तुम्हारे चारों ओर बिना कोईशोर किए, शांति से लगातार बरस रहा है।
प्रकृति में सबकुछ बहुत सुंदर और मनोहारी है, प्रत्येक चीज़ एक वरदान
है लेकिन तुम ही वर्तमान के क्षण में उपस्थित नहीं हो।
इसलिए संन्यासी का अर्थ यह नहीं है कि तुमने अपनी कामनाओं को मार दिया है। एक संन्यासी का तात्पर्य एक ऐसे व्यक्ति से है, जो अपनी समस्त कामना-शक्ति को वर्तमान में ले आया है और समग्रता से जी रहा है। वह जो कुछ भी कर रहा है, वह पूरी तरह उसमें तल्लीन हो जाता है, वह इतना तल्लीन होता है कि पीछे कुछ बचता ही नहीं है। वह विभाजित नहीं है।
जब वह भोजन कर रहा है, तो वह भोजन करना ही बन जाता है। जब वह प्रेम कर रहा है तो बस प्र्रेम करना ही बन जाता है और जब वह चल रहा है, तो वह बस चलना ही बन जाता है।
बुद्ध ने कहा है और उनके कहने का अर्थ बहुत थोड़े से लोगों ने ही समझा है। बुद्ध कहते हैं:"जब चलो तो केवल चलना ही रह जाए, चलने वाला न रहे, जब तुम बात करो तो केवल बात करना ही रह जाए, बात करने वाला न बचे, जब तुम सुनो तो सुनना ही रह जाए, सुनने वाला न बचे, जब तुम निरीक्षण करो तो केवल निरीक्षण करना ही रह जाए और निरीक्षण करने वाला न बचे।"
एक संन्यासी ऐसा ही होता है। संन्यासी की क्रिया इतनी अधिक समग्र हो जाती है कि उस क्रिया में कर्ता खो जाता है। पीछे कोई नहीं बचता, वहां कोई विभाजन नहीं होता है। तुम पूर्ण रूप से आगे बढ़ जाते हो। तुम उस क्रियाशीलता में बह जाते हो, चाहे जो भी क्रिया हो। तब आनंद परिपूर्ण बन जाता है।
इसलिए एक संन्यासी वह है जो कामनाविहीन है, न कि वह जो मृत कामनाओं को साथ रखे हुए चल रहा है। संन्यासी एक ऐसा व्यक्ति है, जिसकी कामना करने वाली शक्ति और समस्त ऊर्जा जो कामना कर सकती है, वे मुड़कर वर्तमान क्षण पर आ गई हैं। वे भविष्य में नहीं दौड़ रही हैं और वे मुड़कर वर्तमान क्षण पर आ गई हैं। उसकी कामनाएं यहीं और अभी में केंद्रित हो गई हैं। वह एक विश्व बन गया है। प्रत्येक चीज़ उसी के भीतर घटित हो रही है। कुछ भी भविष्य में नहीं जाता है, क्योंकि भविष्य मिथ्या है, वह अस्तित्वगत रूप से है ही नहीं। यदि तुम्हारी कामनाएं भविष्य में जाती हैं, तो यह ऐसा है जैसे मानो एक नदी मरुस्थल में जा रही है। वह वहां मरूस्थल में ही सूख जाएगी और कभी भी सागर तक नहीं पहुंचेगी। वह कभी उस परमानंद का आनंद न ले सकेगी, जो एक नदी को सागर के साथ मिलने पर होता है। जब एक नदी सागर तक पहुंचती है तो संपूर्ण नदी सभी ओर से मिलन के सर्वोच्च आनंद का अनुभव करती है, वह परमानंद में होती है, वह नृत्य करती है, वह आशीष देती है, वह धन्यवाद देती है। यदि एक नदी सागर तक न पंहुचे और मरूस्थल में ही सूख जाए तो यह सब अनुभव खो जाएगा। वह वाष्पीभूत हो जाएगी और मर जाएगी। अस्तित्व के साथ उसका कोई भी संपर्क न बन पाएगा। जब कामना भविष्य में गतिशील होती है तो कामना रूपी नदी मरुस्थल की ओर गतिशील हो गई है। भविष्य कहीं भी नहीं है, हमेशा वर्तमान ही होता है। भविष्य मन का सृजन है:वह मिथ्या है, वह स्वप्न है। एक संन्यासी सपने में नहीं वास्तविकता में जीता है। वह वास्तविक सत्य का आनंद लेता है।
इसलिए यह स्मरण रखना-मैं बार-बार इस बात पर बल देता हूं कि एक संन्यासी जीवन विरोधी व्यक्ति नहीं है। वास्तव में वह ही एक ऐसा व्यक्ति है, जो जीवन के लिए है। संन्यासी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसने अपने अस्तित्व और अपनी कामनाओं को नष्ट कर दिया है और एक मुर्दा वस्तु बन गया है। संन्यासी तो जीवंत है, उसमें जीवन प्रचुरता में है। वह जीवंतता का एक स्रोत है।

क्या होता है? क्योंकि यह बहुत सूक्ष्म अंतर है। जैसे ही तुम भूख का अनुभव करते हो वैसे ही तुम भोजन के बारे में सोचना शुरू कर देते हो। तुम भूख को उसकी समग्रता में अनुभव नहीं करते हो, अन्यथा उसका भी अपना एक सौंदर्य होता है। एक व्यक्ति जो भूख का अनुभव नहीं कर सकता है, वह पहले ही से मृत है। जब भूख लगती है तो भूख वर्तमान में ही होती है, लेकिन तुम भोजन के बारे में सोचना शुरू कर देते हो। जब भोजन मौजूद होता है तो तुम किसी दूसरे पकवान के बारे में सोचना शुरू कर देते हो।
एक संन्यासी ऐसा व्यक्ति होता है, जो वर्तमान में जीता है। जब उसे भूख लगती है, तो वह उस क्षुधा का आनंद लेता है। वह पूर्ण रूप से भूख ही बन जाता है। उसके शरीर का प्रत्येक कोश भोजन की प्रतीक्षा कर रहा होता है, जैसे मानो बहुत दिनों से वर्षा न हुई हो और पृथ्वी आतुरता से वर्षा के जल की प्रतीक्षा कर रही हो। पृथ्वी का प्रत्येक रंध्र वर्षा होने की प्रार्थना कर रहा है, प्रतीक्षा कर रहा है, उसे आमंत्रित कर रहा है, वैसे ही पूरा शरीर भोजन की प्रतीक्षा कर रहा है, उसे आमंत्रित कर रहा है और भूखे होने का भी आनंद ले रहा है। जब भोजन सामने आता है, तब वह भोजन का आनंद लेता है और उस भोजन से जो संतुष्टि उसे प्राप्त होती है वह उसके पूरे अस्तित्व में, उसके पूरे शरीर में, मन और आत्मा में, यहां तक कि रोम-रोम में फैल जाती है। वह इस संतोष का आनंद लेता है।
एक झेन सदगुरु से पूछा गया- "ध्यान क्या है"
उसने कहा कि जब मुझे भूख लगती है तो मैं भूख ही बन जाता हूं और जब मुझे नींद आती है तब मैं सो जाता हूं।
प्रश्नकर्ता इसे नहीं समझ सका। उसने कहा कि मैं आपके बारे में नहीं, ध्यान के बारे में पूछ रहा हूं।
सदगुरु ने कहा कि ध्यान के बारे में जो मैं जानता हूं, वह बस यही है।
जब मुझे भूख लगती है तो मैं भूख का अनुभव करता हूं वहां कोई भी विभाजन नहीं होता है। जब मैं भोजन करता हूं तो मैं भोजन करता हूं और जब मुझे नींद आती है तो मैं सो जाता हूं।
जीवन के साथ कोई संघर्ष मत करो, उसमें अवरोध मत बनो-समर्पण करो, बस बहते रहो और एक श्वेत बादल बन जाओ। संन्यासी नीले आकाश में मंडराता हुआ एक श्वेत बादल है, जोप्रत्येक उस क्षण का आनंद लेता है, जो अस्तित्व ने उसे दिया है। वह अपने जीवन में प्राप्त प्रत्येक अनुकंपा से अनुग्रहित होता है। यदि यह संभव है और यह ही संभव है, ऐसा अनेक लोगों को घटित हुआ है और यह तुम्हें भी हो सकता है, केवल एक गहरी समझ की आवश्यकता है, तब कर्म-बन्ध नहीं बनते हैं। तब तुम किसी भी चीज़ का संग्रह नहीं करते हो। तुम भोजन करते हो तोप्रेम से करते हो, तुम जो भी कार्य करते हो वह इतनी अधिक समग्रता से करते हो कि कोई भी अहंकार या कोई भी स्मृति एकत्रित नहीं होती है। तुम कभी नहीं कहते कि मैंने ऐसा किया। तुम ऐसा कैसे कह सकते हो? जब वहां कार्य हो रहा था, तुम वहां नहीं थे, इसलिए यह कौन कह सकता है कि मैंने इसे किया।
यदि तुम एक संन्यासी से कहो कि तुम भूखे थे और तुमने अपना भोजन ले लिया है, तो वह कहेगा कि मैं भूखा नहीं था और मैंने भोजन नहीं लिया है बल्कि भूख वहां थी और भूख ने ही भोजन ग्रहण किया है। मैंने कुछ भी नहीं किया है, मैं वहां नहीं था। यदि तुम वहां नहीं हो, यदि कर्ता ही वहां नहीं है, तो कौन कर्म इकट्ठे करेगा?
यही बात कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, परिस्थिति के अनुसार जो भी ठीक लगता है उसे करो और कर्ता को भूल जाओ। यह मत सोचो कि मैं कर रहा हूं, वस्तुतः ऐसा सोचो कि मेरे द्वारा परमात्मा ही कर रहा है।
यह इसी बात को कहने का एक दूसरा ढंग है कि मेरे द्वारा अस्तित्व ही कार्य कर रहा है। मैं केवलनिमित्त मात्र हूं, एक उपकरण हूं, एक द्वार अथवा एक वाहन हूं। मैं तो केवल एक पोली बांसुरी हूं जिसके भीतर कुछ भी नहीं है। मुझ से गुजर कर यह अस्तित्व ही गीत गाए चला जाता है और नई-नई धुनें बनाकर, नूतन गीतों का सृजन कर रहा है। मैं केवल एक मार्ग हूं, मैं खोखले बांस से बनी एक पोली बांसुरी हूं।
संन्यासी एक द्वार जैसा ही होता है, वह बांस की पोली बांसुरी ही होता है। वह वहां नहीं है। उसके चारों ओर बहुत कुछ घटित हो रहा है, उसके द्वारा

बहुत कुछ हो रहा है, लेकिन वह वहां नहीं है। एक संन्यासी बनो क्योंकि ऐसा होना अत्यंत सुंदर है।
तुम्हारे मन में यह बात आनी चाहिए कि तुम्हें कुछ बांटना है, कुछ देना है। तुम यहां हो और तुम्हारी मां, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारा पति और तुम्हारे बच्चे घर पर प्रतीक्षा कर रहे होंगे... प्रेम सदा ही देता है। तुम वापस घर लौटोगे तो तुम अपने साथ कोई स्थूल या दृश्य चीज़ लेकर नहीं जाओगे... मां के लिए कोई उपहार या पत्नी के लिए गहना या इस देश से कोई चीज़ साथ लेकर नहीं जाओगे। तुम कुछ सूक्ष्म और कुछ अदृश्य चीज़ ले कर जा रहे हो।

इस अदृश्य के बारे में कुछ भी कहा नहीं जा सकता क्योंकि तुम कोई विचारधारा साथ नहीं ले जा रहे हो। मैं तुम्हें कोई दार्शनिक सिद्धांत नहीं दे रहा हूं, मैं तुम्हें कोई आदर्श नहीं दे रहा हूं। मैं तुम्हें एक अलग तरह का जीवन और एक अलग जीवनशैली दे रहा हूं। उन्हें इसके बारे में बताना कठिन होगा।
यदि वे प्रत्यक्ष रूप से पूछेंगे तो उन्हें कुछ भी बताना बहुत कठिन होगा। उनसे कुछ कहने का प्रयास ही मत करना क्योंकि उससे कुछ भी सहायता नहीं मिलेगी, बल्कि उससे समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। वस्तुतः उनके सामने अपने हृदय के द्वार खुले रखना, जिससे वे तुम्हारे आनंद में सहभागी बन सकें। वस्तुतः अति संवेदनशील बने रहना, उनके साथ हंसना, आनंद से भोजन करना, ध्यान करना और उन्हें बस इतना बताना कि वे तुम्हारे इस नए रूप में और नई जीवनशैली में, जिसका तुम्हें अनुभव हुआ है, सहभागी बने रहें। तुम्हारी प्रामाणिक उपस्थिति और तुम्हारा पूरा अस्तित्व, जो हंस रहा है, आनंदित हो रहा है, वह एक संक्रमण बन जाएगा और वह बनता ही है... वे उसका अनुभव करेंगे। इसमें कुछ समय लगेगा। यह इतना आसान न होगा, यह कठिन होगा। इसलिए जाने
से पूर्व तैयार रहना कि तुम्हें बांटना है और दूसरों को अपने आनंद में सहभागी बनाने के लिए पहले से तैयार रहना।
ऐसा हमेशा नहीं होगा कि वे हर बार तुम्हें समझेंगे। प्रारंभ में गलतफहमी भी हो सकती है और गलतफहमी होने की संभावना अधिक है क्योंकि उन्होंने इस बारे में कभी सोचा ही नहीं होगा। यहअनजानी और अज्ञात चीज़ है। जब कभी भी अनजान और अज्ञात की तरफ से दस्तक होती है तो मन अकारण भयभीत हो जाता है, क्योंकि मन उसे संभाल नहीं पाता है। वह उसे वर्गीकृत नहीं कर पाता है। मन को आघात लगता है, वह टूटने लगता है। यदि मन किसी चीज़ को वर्गीकृत कर सके, तो वह प्रसन्न होता है और उसे एक कोने में रखते हुए उसका नामकरण कर देता है। मन उसकी व्याख्या कर देता है और बात समाप्त हो जाती है। मन हमेशा प्रसन्न होता है, यदि वह किसी चीज़ का विश्लेषण कर पाता है या उसे विभाजित कर पाता है या चीरफाड़ कर पाता है, बस ऐसा करते ही बात समाप्त हो जाती है।
लेकिन संन्यास को किसी कोटि या श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। यह अस्तित्व का एक भिन्न गुण है जिसके लिए कोई भी कोटि या श्रेणी मौजूद ही नहीं है। संन्यास का विश्लेषण नहीं किया जा सकता। संन्यास को खंडों में तोड़ा नहीं जा सकता और उसके टुकड़े-टुकड़े कर फिर से जोड़ा नहीं जा सकता। नहीं, यह तो मूलभूत इकाई है। यदि तुम इसका विश्लेषण करोगे तो वह खो जाएगा और फिर तुम उसे वापिस प्राप्त नहीं कर पाओगे। यह असंभव है।
संन्यास एक जीवंत शक्तिहै:यह एक मूलभूत इकाई है, ठीक एक फूल की भांति। यदि फूल का विश्लेषण करोगे, उसकी हर पंखुड़ी को अलग कर दोगे और तोड़कर उसमें कुछ ढूंढने का प्रयास करोगे तोतुम्हें यह संतोष जरूर होगा कि तुमने फूल का परीक्षण कर लिया है, परंतु उसके बाद सभी पंखुड़ियों को वापस जोड़ने कर रखने का प्रयास करोगे तो वह संभव नहीं होगा, क्योंकि उस समय तक फूल मर चुका होगा। जीवित फूल तो एक मूलभूत इकाई के रूप में था, वह कोई यंत्र नहीं था।
संन्यास मनुष्य की चेतना की खिलावट है। जैसे एक वृक्ष पर फूल आने का अर्थ है कि वृक्ष संपूर्ण रूप से विकसित हो गया है और यही फूल कभी न कभी फल बन जाएंगे। फूलों का खिलना केवल एक संकेत है कि वृक्ष अब फल देने के लिए तैयार है। वृक्ष परिपक्व हो गया है। फल आने से पहले, फूलों का खिलना तो

वृक्ष के परमानंद की एक अभिव्यक्ति है। फल आने का अर्थ है:वृक्ष की परिपूर्णता अर्थात वृक्ष अपने अस्तित्व के चरमोत्मकर्ष पर है। अब वृक्ष प्रसन्न और आनंदित है कि उसका जीवन व्यर्थ नहीं गया और अब वह फल देने के लिए तैयार है।
संन्यास है फूल का खिलना और मोक्ष उसका फल है। संन्यास का अर्थ है कि
अब तुम्हारी आंतरिक सत्ता या तुम्हारा आंतरिक वृक्ष, अज्ञात में एक बड़ी छलांग लगाने के लिए तैयार है और वह उस बिंदु तक पंहुच गया है जहां एक परम विस्फोट होने जा रहा है। यह सब घटित होने से पूर्व, पूरा अस्तित्व उसका आनंद लेता है, उसका उत्सव मनाता है कि अब तुम परिपूर्ण हुए। तुम्हारा यह जन्म व्यर्थ नहीं हुआ, कई जन्मों से तुम इस पल की प्रतीक्षा कर रहे थे। इतनी अधिक प्रतीक्षा और धैर्य के बाद आखिर वह घड़ी आई है जब तुम अपने घर पहुंच गए हो, अब तुमने उसे प्राप्त कर लिया है। ऐसे में पूरा अस्तित्व खिल उठता है।
हिंदुओं ने रंग-बिरंगे फूलों के कारण ही संन्यास के वस्त्रों के लिए लाल, नारंगी और गेरुआ रंगों को चुना। हरा और लाल प्रकृति के दो मौलिक रंग हैं। हरा वृक्ष का प्रतीक है और लाल फूल का प्रतीक है।
संन्यास से तुम्हारे अस्तित्व में फूल खिल उठते हैं। शीघ्र ही फल भी लगेंगे और पुनः उन फलों में बीज आएंगे। इस संपूर्ण खिलावट को अपने साथ लेकर चलो।
यह अच्छी बात है कि तुम सोचते हो कि अपने प्रियजनों के साथ यह आनंद कैसे बांटा जाए? कैसे अपने मित्र या अपनी पत्नी या अपने बच्चों को उसमें सहभागी बनाया जाए? यह बहुत सुंदर है, इस अनुभव को बांटने के बारे में सोचना ही धर्मपरायणता है।
लेकिन तुम केवल तभी बांट सकते हो, जब तुमने वास्तव में वह अनुभव किया है। यदि तुम केवल मुझे सुनते रहे हो और खिलावट के बारे में सोचते रहे हो पर खिलावट अभी हुई नहीं है, तो तुम उसे बांट नहीं सकते।
यदि तुम मेरे शब्दों का प्रयोग करते हो तो वे सच्चे पुष्प न होंगे, क्योंकि शब्द सच्चे और प्रामाणिक नहीं हो सकते, वे प्लास्टिक के फूल हैं। तुम यह शब्द रूपी नकली फूल अपने मित्रों को दे सकते हो, लेकिन उनमें कोई सुगंध नहीं होगी। यह नकली फूल मेरा संदेश न दे पाएंगे, यह मेरी बात को न समझा पाएंगे। इन उधार के शब्दों से भीतर का संवाद न हो सकेगा।
इसलिए यदि तुम संन्यास और ध्यान को बांटना चाहते हो, तो खुद संन्यासी बनो, खुद ध्यानी बनो। ध्यान की जीवनशैली में गहराई से डूबो।
कामनाशून्य बने रहो, लेकिन फिर भी भीतर उठने वाली हर कामना का आनंद लो। जो कुछ भी घटित होता है, उसे अस्तित्व के उपहार के रूप में लो, कुछ भी मांग न करो, कोई योजना न बनाओ। अपने विचारों में उलझे मत रहो, समग्रता से जिओ।
विचारों में प्रदूषित करने की शक्ति है। वे प्रत्येक चीज़ को पूरी तरह भ्रष्ट कर देते हैं, क्योंकि विचारों में चालाकी और बेईमानी होती है। अधिक सोच-विचार करने से यह चालाकी व्यक्तिगत प्रवृत्ति बन जाती है। तुम जितना अधिक सोच-विचार करते हो, तुम उतने ही अधिक चालाक होते जाते हो। तुम्हें लगता है कि तुम्हारा सोचना एक समझदारी है, तुम्हारा सोचना बुद्धिमत्ता है। नहीं, ऐसा बिल्कुल नहीं है क्योंकि यदि बुद्धिमत्ता और विवेक है तो विचार की आवश्यकता ही नहीं है। प्रज्ञा अपने आप में पर्याप्त है और विचार आवश्यक ही नहीं है। विचारों की आवश्यकता इसलिए ही होती है, क्योंकि वहां प्रज्ञा नहीं है। यदि तुम्हारे पास प्रज्ञा है, तब तुम क्षण प्रति क्षण जीते हो... तुम सहजता से हर घटना के साथ बहते हो तुम्हें यह सोचने की और योजनाएं बनाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है कि तुम्हें अब आगे क्या करना चाहिए? क्योंकि जब अगला क्षण आता है तोप्रज्ञा वहां होगी ही और तुम्हारे अंदर से स्वतः ही प्रत्युत्तर आएगा।
एक दर्पण कभी यह विचार नहीं करता है कि जब कोई व्यक्ति मेरे सामने आएगा तो मैं क्या करूंगा? यह सोचने की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि दर्पण मौजूद है और वह हर चीज़ कोप्रतिबिंबित करेगा। यदि प्रज्ञा है तो तुम आने वाली समस्या के बारे में सोचोगे नहीं, क्योंकि जब समस्या आएगी, तो

तुम्हारा विवेक, तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारी प्रज्ञा प्रत्युत्तर देगी। तुम उस पर भरोसा कर सकते हो। चूंकि हमारे पास प्रज्ञा नहीं है, इसलिए हम लगातार सोचते हैं। सोचना एक प्रतिस्थापना है, एक विकल्प है। प्रज्ञा और विवेक जितना अधिक होगा, सोच-विचार उतना ही कम होता जाएगा। जब प्रज्ञा पूर्ण होती है, तो कोई सोच-विचार होता ही नहीं है। एक बुद्ध पुरूष कभी सोचता नहीं है, उसे व्यर्थ के सोच-विचार की कोई आवश्यकता ही नहीं होती है। जीवन उसके सामने जो कुछ भी लाता है, वह अपनी प्रज्ञा से उसका प्रत्युत्तर दे देता है। तुम बहुत सोचते हो, क्योंकि तुम्हें अपनी प्रज्ञा पर भरोसा नहीं है, इसीलिए तुम्हें पहले से योजनाएं बनानी पड़ती हैं। जब कोई विशेष क्षण आता है तो तुम पहले से ही सोच-विचार कर बनाई गई योजना का अनुसरण करते हो, यह किस तरह का जीना है? तुम अतीत के सहारे जीते हो, तुम अतीत की बैसाखी पर जीते हो। हमेशा अतीत के आधार पर कार्य करने के कारण ही तुमसे अनावश्यक रूप से अनेकानेक गलतियां हो जाती हैं और सब कुछ दूषित तथा मृत हो जाता है क्योंकि तुम सदैव ही अतीत पर निर्भर हो। जीवन नदी की भांति प्रवाहित हो रहा है, जीवन प्रतिक्षण बदल रहा है, जीवन परिवर्तनशील है, जीवन कभी भी रुकता नहीं है, परंतु तुम अतीत में ही रुक गए हो।
तुम अतीत में बनाई गई योजना के सहारे ही चलते हो। जब कभी भी जीवन तुम्हारे सामने कोई समस्या लाता है, तब तुम अपने अतीत की स्मृति में झांकते हो और पहले से बनाई गई योजना के अनुसार कार्य करते हो। इसी कारण तुम चूक जाते हो। जीवन हमेशा, हर पल में नया होता है और तुम्हारी बनाई गई सारी योजनाएं पुरानी होती हैं।
जीवन ऐसा है जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं, वे कभी कोई पदचिन्ह नहीं छोड़ते, आकाश में कोईबना बनाया मार्ग नहीं होता है। जब पक्षी वापिस अपने घोसलें में चले जाते हैं, तो आकाश वैसे का वैसा कोरा रह जाता है, जैसा कि वह पहले था। वह पृथ्वी की तरह नहीं है जिस पर लोग चलते हैं और उनके चलने से, उनके पदचिन्हों से मार्ग निर्मित हो जाते हैं। जीवन एक आकाश की ही भांति है, इसमें बना बनाया मार्ग नहीं होता है।
एक संन्यासी आकाश में उड़ते हुए एक पक्षी की भांति होता है, वह किसी मार्ग का अनुसरण नहीं करता है, क्योंकि कोई मार्ग होता ही नहीं, इसलिए वह क्षण प्रति क्षण अपनी अतीत की स्मृति के द्वारा नहीं, बल्कि अपनी जीवंत प्रज्ञा के द्वारा गतिशील होता है।
परंतु हम सब इससे विपरीत काम करते हैं, हमने प्रत्येक चीज़ की योजना बना रखी है। यहां तक कि एक पति कार्यालय से वापस लौटते हुए यह सोचता है कि अपनी पत्नी से किस तरह मिलना है। वह अपने भीतर योजनाएं बनाते हुए स्वयं से ही बातें करने लगता है। वह सोचता है कि वह उसका हाथ थामेगा या उसे चुंबन देगा या उसे स्पर्श करेगा... इस बारे में योजना बनाने की आवश्यकता ही क्या है? क्या तुम्हारे भीतर अपनी पत्नी के प्रति प्रेम नहीं है?
यदि प्रेम नहीं है, तब योजना बनाना आवश्यक है, क्योंकि तुम स्वयं पर विश्वास नहीं कर सकते, तुमभूल सकते हो। प्रेम के अभाव में यदि तुमने पहले से योजना नहीं बनाई है, तो तुम घर पहुंच कर यह भूल सकते हो कि तुम्हारी पत्नी सुबह से तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही है, तुम्हारे लिए उसने भोजन बनाया है, तुम्हारे कपड़े धोये हैं और बस तुम्हारी यादों से घिरी हुई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है और प्रतीक्षा करते करते वह अधीर हो रही है। पर शाम को तुम घर आते हो और तुम उसकी ओर देखते भी नहीं हो। तुम कुर्सी पर बैठ जाते हो और समाचारपत्र पढ़ना प्रारंभ कर देते हो या रेडियो एवं टीवी इत्यादि देखने लगते हो, जैसे मानो पत्नी का कोई अस्तित्व ही न हो। तुम्हारे इस भूलने के कारण पत्नी की जोप्रतिक्रिया होगी, तुम इसे भलिभांति परिचित हो, अतः भयभीत होकर तुम पहले ही योजना बनाने लगते हो। तुम याद रखने की हर संभव कोशिश करते हो। तुम स्वयं को याद दिलाते हो कि तुम्हें अपनी पत्नी अथवा प्रेमिका के साथ कैसा व्यवहार करना है? यह किस तरह का प्रेम है, जो बिना योजना बनाए प्रत्युत्तर नहीं दे सकता? यदि प्रेम मौजूद है, तो सोच-विचार की आवश्यकता ही नहीं होगी।
बुद्धिमत्ता और विचार के संदर्भ में भी यह सत्य है। यदि बुद्धिमत्ता है, यदि प्रज्ञा है तो ज्यादा सोच-विचार नहीं होगा। सोच-विचार करना एक

विकल्प है। अत्याधिक सोच-विचार करना एक चालाकी है, चतुरता है, जिससे वास्तविक ज्ञान का भ्रम हो सकता है और यही चालबाजी है।
तुम बिना मुस्कुराहट के मुस्करा सकते हो। तुम्हारे होंठों पर मुस्कान होगी पर वह केवल होंठों पर ही होगी, वह नकली और थोपी हुई मुस्कान होगी जिसका तुम्हारे हृदय से कोई संबंध नहीं होगा। जो तुम्हारे अंतरतम से नहीं उठी है। तुम्हारे होंठों और तुम्हारे हृदय के बीच कोई भी सेतु नहीं है। वह मुस्कान तुम्हारे अस्तित्व के केंद्र से नहीं उठ रही है। वह तुम्हारे भीतर से नहीं आ रही है। तुमने केवल उसे मुखौटे की तरह पहन लिया है। सोच-विचार द्वारा ऐसा ही होता है और धीमे-धीमे तुम नकली और झूठे बनते चले जाते हो। चालाकी का अर्थ है कि तुम स्वयं के चारों ओर एक झूठा जीवन निर्मित कर रहे हो।
एक संन्यासी असली और प्रामाणिक होता है। यदि वह मुस्कराता है, तो उसकी मुस्कान उसकी आत्मा से आती है। यदि वह क्रोधित होता है, तो क्रोध उसके पूरे अस्तित्व से आता है। यदि वह प्रेम करता है, तो वह अपनी आत्मा से प्रेम करता है। संन्यासी नकली और झूठा नहीं है। वह सच्चा है और प्रामाणिक है, तुम उस पर भरोसा कर सकते हो। यदि वह प्रेम करता है तो बस प्रेम करता है। यदि वह एक मित्र है तो बस मित्र है। यदि वह मित्र नहीं है, तो नहीं है, तुम उस पर विश्वास कर सकते हो। वह धोखेबाज नहीं है।
एक धार्मिक व्यक्ति से मेरा यही आशय है:निर्दोष, प्रामाणिक और विश्वसनीय। वह जैसा भी है, वास्तव में वह भीतर से भी वैसा ही वहां है। वह मुखौटे नहीं लगाता है, वह नकली चेहरों का प्रयोग नहीं करता है। वह सत्य के साथ जीता है।
स्मरण रहे, तुम सत्य के पास तभी आ सकते हो, जब तुम खुद वास्तविक हो, असली हो। यदि तुम नकली हो, तब तुम सत्य तक नहीं आ सकते हो। जब तुम नकली और पाखण्डी हो, तो यह संसार भी एक पाखण्ड लगेगा, भ्रम लगेगा, तुम्हारे मुखौटे के कारण ही यह संसार तुम्हें माया लगता है। यदि तुम प्रामाणिक और सत्य हो तो माया का संसार विलुप्त हो जाता है, वह दिव्य और सत्य बन जाता है।
यह माया शब्द बहुत सुंदर है। माया का अर्थ है जिसे मापा जा सके, जिसकी नाप-तौल की जा सके। मन भी एक मापक है। मन चीज़ों की नाप-तौल करता है, वह विश्लेषण करता है। मन प्रत्येक चीज़ की नाप-तौल करने का प्रयास करता है। इसी कारण हिंदुओं ने इस संसार को माया कहकर पुकारा क्योंकि मन के द्वारा इसकी नाप-तौल की जा सकती है।
तुम्हारा विज्ञान क्या है? वह केवल नाप-तौल ही है। हिंदू विज्ञान को"अविद्या" कहते हैं। वे विज्ञान को ज्ञान नहीं कहते बल्कि ज्ञान विरोधी कहते हैं, क्योंकि जो सत्य है, उसकी नाप-तौल नहीं की जा सकती है। सत्य मापा नहीं जा सकता, वह अनंत है। सत्य का न कोईप्रारंभ है और न कोई अंत है। सत्य किसी भी माप से परे है। केवल असत्य को ही मापा जा सकता है। माप के साथ ही तर्क, सिद्धांत और कारण उत्पन्न हो जाते हैं, पर जहां माप असंभव है वहां यह सारे तर्क और कारण गिर जाते हैं। यह मन बहुत चालाक और बेईमान है, इसी मन ने ही भ्रम का संसार सृजित किया है।
संन्यासी आखिर है क्या? वह मन नहीं है। वस्तुतः इसके विपरीत वह एक निर्दोषता है। वह एक नवजात शिशु की भांति निर्दोष है, जिसका न कोई अतीत है और न ही भविष्य का कोई विचार है। एक संन्यासी प्रत्येक क्षण नवजात शिशु की भांति होता है। यह एक प्रक्रिया है कि प्रत्येक क्षण वह अपने अतीत के प्रति मर जाता है। जो कुछ बीत चुका है, वह उसे फेंक देता है, वह उसका परित्याग कर देता है, क्योंकि वह एक मृत चीज़ हो गई है, केवल धूल है, जिसे साथ लेकर चलने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं को साफ करता है, वह स्वयं को निखारता है, उसका दर्पण पुनः नया हो जाता है। वह अपने दर्पण को साफ करता है। इस सफाई को ही मैं ध्यान कहता हूं।
लोग मुझसे पूछते हैं कि हम कब ध्यान छोड़ सकते हैं? तुम ध्यान छोड़ने में सक्षम न हो सकोगे। ध्यान स्वयं ही छूट जाएगा, जब तुम नहीं बचोगे। परंतु तुम उसे छोड़ने में सक्षम न हो सकोगे, क्योंकि तुम्हें दर्पण को साफ करने की आवश्यकता होगी। तुम प्रत्येक क्षण में लगातार दूषित हो रहे हो, इससे धूल इकट्ठी हो जाती है, यही जीवन की प्रकृति है। प्रत्येक क्षण

तुम्हें स्नान की आवश्यकता होती है। जब तुम नहीं हो, अथवा तुम्हारा अहंकार नहीं है, तब किसी भी स्नान की आवश्यकता नहीं है... तब वहां कोई भी समस्या नहीं है, क्योंकि तब वहां कोई है ही नहीं, जो गंदा हो सके। लेकिन तुम वहां हो, इसलिए ध्यान कीआवश्यकता है। वह निर्दोष बने रहने का एक ईमानदार प्रयास है।
यदि तुम निर्दोष हो तो तुममें कोई भी कमी नहीं है। यदि तुम निर्दोष आंखों से नीले आकाश की तरफ देखते हो तो इसी निर्दोषता के कारण तुम स्वयं भी आकाश ही हो जाते हो। मन के साथ तुम नाप-तौल करने लगते हो। तुम हिसाब किताब लगाने लगते हो कि यह सुंदर है और वह सुंदर नहीं है, आज आकाश में बादल छाए हुए हैं और कल आकाश साफ होगा या बीते हुए कल में आकाश ज्यादा साफ लग रहा था। तुम नाप-तौल करना प्रारंभ कर देते हो।
लेकिन यदि तुम निर्दोष हो, एक चालाक मन नहीं हो, केवल एक चेतन सत्ता की भांति उपस्थित हो तो कुछ भी कहने का औचित्य ही नहीं है, कुछ भी सोचने की आवश्यकता ही नहीं है। आकाश वहां है और तुम भी आकाश ही हो। भीतर तथा बाहर का सुंदर मिलन हो रहा है। दोनों ही शून्यताएं एक दूसरे में विलीन हो जाती हैं और वहां कोई सीमा ही नहीं बचती है। दृष्टा साक्षी हो जाता है। यही बात कृष्णमूर्ति कहते हैं कि दृष्टा साक्षी हो जाता है। बाहर और भीतर की सीमाएं विलीन होकर, एक हो जाती हैं।
यदि तुम एक वृक्ष को निर्दोष भाव से, मन की नाप-तौल के बिना देखते हो
तो क्या होता है? वृक्ष और तुम-वहां दो मौजूद नहीं हो, रहस्यमयी ढंग से वृक्ष तुम्हारे अंदर प्रविष्ट हो गया है और तुम वृक्ष में प्रवेश कर गए हो। केवल तभी तुम जान पाते हो कि एक वृक्ष क्या होता है? तुम सितारों की ओर देखते हो, तुम एक नदी की ओर देखते हो, तुम नीले आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की एक पंक्ति को देखते हो... तब सीमाओं का विलय होता जा रहा है। सभी भिन्नताएं और भेद मिट जाते हैं। तब एकता उत्पन्न होती है। यह एकता विचारों द्वारा निर्मित नहीं है। यह एकता दार्शनिक सिद्धांतों द्वारा निर्मित नहीं है, यह एकता पूर्ण रूप से भिन्न है। तुम सोच-विचार नहीं कर पाते कि वहां कोई एकता है और अचानक वह घटित हो जाती है, तुम बस जान जाते हो कि सब एक हो रहा है। तुम्हारा मन भीतर यह नहीं कहता है कि यह एकता वेदों और उपनिषदों की शिक्षाओं के कारण है।
यदि तुम्हारे मन में वेद और उपनिषद हैं, तो तुम निर्दोष नहीं हो। तुम चतुर हो। हिसाब-किताब लगातार चल रहा है। तुम नाप-तौल कर रहे हो, अपना दिमाग लगा रहे हो और तुलना कर रहे हो। तब तुम चालाक और चतुर हो, परंतु प्रज्ञावान नहीं हो। तुम चाहे जितने भी ज्यादा चालाक हो जाओ, परंतु एक चालाक मन सदैव ही मध्यम श्रेणी का होता है, वह औसत मन होता है। विवेक और प्रज्ञा की आवश्यकता होती है।
एक शिशु जन्म से ही प्रज्ञावान होता है, वह कभी चालाक नहीं होता। एक शिशु संसार को अपनी निर्मल आंखों से देखता है। उसकी अवधारणा, उसकी अंतरदृष्टि बिल्कुल साफ होती है, उसमें कोई भी धुंधलापन नहीं होता है। जब मैं कहता हूं कि निर्दोषता ही संन्यास है, तो मेरे कहने का अर्थ है
कि तुम्हारे भीतर विचारों का अवरोध न बने और तुम्हारी अंतरदृष्टि स्पष्ट होनी चाहिए। तुम्हें स्पष्ट रूप से अवलोकन करना चाहिए। तुम्हें निरीक्षण करना चाहिए, पर उस निरीक्षण के पीछे नियंत्रण करने वाला चालाक मन नहीं होना चाहिए। यह निर्दोषता संभव है और केवल यही निर्दोषता समय और स्थान के पार ले जाती है। केवल यही निर्दोषता संन्यासी को मोक्ष, परम स्वतंत्रता और परम लक्ष्य तक पहुंचा देती है। एक संन्यासी बनो-निर्दोष, नवजात, स्वच्छ और स्पष्ट। ऐसा संन्यासी जो हर क्षण वर्तमान में जीता है, जो हर क्षण अज्ञात में जाने को तैयार है। तभी तुम इस अनुभव को बांटने में समर्थ हो सकोगे।
मनुष्य की पूरी शिक्षा प्रणाली, संस्कृति और सामाजिक ढांचा ठीक विपरीत है, वह निर्दोषता न सिखाकर तुम्हें चालाकी और बेईमानी करना सिखाता है। वह तुम्हें तर्क-वितर्क सिखाता है। वह तुम्हें स्वचालित और यांत्रिक बनाता है। इस शब्द को याद रखना, वह तुम्हें स्वचालित यंत्र बनाता है,

क्योंकि तुम जितना अधिक स्वचालित यंत्र जैसे बन जाते हो, तुम उतना ही अधिक कुशल हो जाते हो।
तुम कार चलाना सीखते हो, शुरू में यह कठिन होता है। कठिनाई चलाने में नहीं है, कठिनाई तुम में है क्योंकि शुरूआत में तुम्हें खतरे के प्रति बहुत सचेत और सजग रहना पड़ता है। तुम जो कुछ भी कर रहे हो, तुम्हें निरंतर उसके प्रति सचेत रहना होता है:ट्रैफिक के प्रति, गुज़रते हुए लोगों के प्रति, कार की यंत्रप्रणाली के प्रति, क्लच, गिअर और प्रत्येक चीज़ के प्रति निरंतर सजग और सचेत रहना होता है। तुम्हें अनेक चीज़ों के प्रति सचेत बनना पड़ता है। इस सजगता के कारण तुम्हारा मन अपनी नियमित बक-बक को जारी नहीं रख पाता है। उसे सचेत होना पड़ता है और इसी से कठिनाई उत्पन्न होती है।
लेकिन बाद में, कुछ दिनों बाद तुम यंत्रवत हो जाते हो, स्वचालित हो जाते हो। अब हाथ पैर स्वयंमेव कार्य करने लगते हैं। कार और तुम एक यांत्रिक इकाई बन जाते हो। अब तुम्हारा मन कार चलाते हुए भी भीतर ही भीतर अपनी बक-बक जारी रख सकता है। अब कोई समस्या नहीं होती है क्योंकि अब सीखने के बाद, मन की कोई आवश्यकता नहीं है। स्वचालित होने से मेरा यही अर्थ है कि अब तुम्हारा शरीर यंत्रवत स्वयंमेव कार्य करता है। केवल कुछ विशिष्ट और दुर्लभ मामलों में ही तुम्हारी आवश्यकता होगी। यदि कोई दुर्घटना घटने लगी है, तब अचानक तुम्हारी आवश्यकता पड़ती है। तब तुम्हारी विचार प्रक्रिया को रुकना होगा। उस समय तुम्हारे पूरे शरीर कोझटका लगेगा, तुम्हारा पूरा शरीर तंत्र कांप जाएगा, तुम्हें वहां उपस्थित होना पड़ेगा और सजग होना पड़ेगा। परंतु ऐसा कभी-कभी ही होगा। साधारण तौर पर तुम कार चलाते हुए सिगरेट पी सकते हो, गाना गा सकते हो, किसी से बात कर सकते हो, रेडियो सुन सकते हो अथवा मन ही मन में स्वयं से बात करना जारी रख सकते हो। फिर वहां तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। तुम स्वचालित यंत्र बन गए हो, इस यांत्रिकता से कार्यकुशलता और कार्यक्षमता अवश्य बढ़ जाती है। परंतु यदि तुम्हें निरंतर सजग बने रहने की आवश्यकता हो तो तुम बहुत अधिक कार्यकुशल नहीं हो सकते। तुम बहुत तेज़ी से कार नहीं चलाते हो, क्योंकि तुम नहीं जानते कि सजगता कैसे लानी है? इसी कारण... क्योंकि लोग सजग और सचेत नहीं हैं, वे अचेतन में जीते हैं। समाज ने एक चाल सीख ली है कि प्रत्येक व्यक्ति को अधिक से अधिक स्वचालित बना दिया जाए। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों की पूरी शिक्षा तुम्हें स्वचालित बनाने की ही एक कोशिश है। भाषा, गणित आदि... प्रत्येक चीज़ स्वचालित बन गई है। तुम बिना सजग हुए, बिना किसी चिंता के सबकुछ कर सकते हो। सब कुछ यंत्रवत बन गया है।
मैं जब कहता हूं निर्दोष बनो तो उसका अर्थ है:स्वचालित मत बनो और जो कुछ भी करो उसे पूरी सचेतनता से करो। यदि तुम कार चला रहे हो तो केवल कार ही चलाओ, कोई अन्य कार्य मत करो, भीतर मन की बातचीत को बंद कर दो। सजग बने रहकर इतनी गहराई से कार चलाने में डूब जाओ कि चालक न बचे केवल वहां कार का चलना ही बाकी रह जाए। यह कठिन होगा। इसी वजह से समाज इस बारे में फिक्र नहीं करता है। केवल व्यक्तिगत रूप से कुछ साहसी लोग ही इस कठिन मार्ग से गुज़र सकते हैं। प्रत्येक कार्य सचेत रहकर करो और धीमे-धीमे तुम्हारे शरीर का स्वचालित और अचेतन रूप से यंत्रवत होना मिट जाएगा। तुम स्वचालित और यंत्रवत नहीं रहोगे और तब निर्दोषता की खिलावट होगी।
एक बच्चा निर्दोष होता है, क्योंकि अभी वह स्वचालित और यंत्रवत नहीं है। अभी उसने कुछ भी नहीं सीखा है। उस पर समाज की पूर्वधारणाओं की परत नहीं चढ़ी है। लेकिन कभी न कभी हम उसे यह सब सिखा देंगे। जैसे ही वह यांत्रिकीकरण सीखेगा तो मन ज्यादा से ज्यादा विकसित होगा और उसका मूलभूत स्वरूप क्षीण हो जाएगा। तब वह स्वचलित यंत्र बन जाएगा-कार्यकुशल, कर्मठ, समाजसेवी परंतु वह मृतवत हो जाएगा।
समाज की सहायता करो, समाज की सेवा करो, लेकिन स्वचालित यंत्र मत बनो। तुम पहले से ही एक यंत्र हो, अब स्वयं को बदलो। धीरे-धीरे अपने भीतर ज्यादा से ज्यादा सजगता और सचेतनता लाओ, तुम जो कुछ भी कर रहे हो, उसमें सजगता लाओ, क्योंकि यदि सजगता नहीं होगी तो तुम स्वचालित यंत्र बन जाओगे।

जितना अधिक सजगता होगी, जितना कम यांत्रिकीकरण होगा, उतनी ही चेतनता
की उपस्थिति होगी, तब निर्दोषता की खिलावट होगी और वह निर्दोषता ही सबसे महत्त्वपूर्ण उपहार है, जो एक मनुष्य कोप्राप्त हो सकता है।
तुम निर्दोष हो, तभी तुम दिव्य हो।
तुम निर्दोष हो, तो तुम परमात्मा हो।
आज इतना ही।